

**THE BOOK WAS
DRENCHED**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_178834

UNIVERSAL
LIBRARY

चील और चट्टान

समालोचनार्थ

करतारसिंह दुग्गल

माहिनी प्रकाशन

५७, एस्प्लानेड रोड, दिल्ली-६

लखक की अन्य रचनाएँ

हिन्दी

१. अमानिशा : कहानी संग्रह
२. नया घर : कहानी संग्रह
३. चोली दामन : उपन्यास

पंजाबी

कहानी संग्रह

१. सवेर सार
२. पिप्पुल पत्तियाँ
३. कुड़ी कहानी करदी गई
४. डंगर
५. कच्चा दुद
६. अग्न खाण वाले
७. नवां घर
८. नवां आदमी
९. खरींड

उपन्यास

१. आंदरां
२. नौं ते मास

नाटक

१. इक सिफर १९५२
२. तिन नाटक

कविता

१. कंठे कंठे

समालोचना

१. नवीं पंजाबी कविता

उद्धृ

१. दिया बुझ गया (नाटक)

कृष्णा बिजौर के प्रति

दो शब्द

‘चील और चट्टान’ के लेखक श्री करतारसिंह दुग्गल की गिनती पंजाबी के प्रसिद्ध साहित्यकारों में है। उनकी रचनायें काफी लोकप्रिय हुई हैं। उनका दृष्टिकोण प्रगतिशील है, पर साहित्य पहले साहित्य है, इस बात को उन्होंने कभी नहीं भुलाया। उनकी लेखनी में रस है पर वे इस बात को जानते हैं कि संयम के अभाव में कला खंडित हो जाती है। नाटक कहानी, उपन्यासादि साहित्य के अनेक अंगों को उन्होंने छुआ है। इधर उनकी कुछ रचनाएँ हिन्दी में भी आई हैं। उनकी कहानियों ने हिन्दी पाठकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है। अब वे अपने दो अनुदित उपन्यास लेकर आये हैं। ‘चोली दामन’ कुछ पूर्व प्रकाशित हो चुका है। वह विभाजन से ठीक पहले के पंजाब का सजीव मर्मात्मक चित्र है। उस में कथाकार जैसे इतिहासकार भी बन गया है। इतिहासकार भी वह जो चितेरा है, जिसकी दृष्टि से कुछ बच नहीं पाता।

प्रस्तुत उपन्यास, ‘चील और चट्टान’ उनका दूसरा उपन्यास है। इसमें ‘जमींदार’ की कहानी है। जमींदारी-प्रथा अब मिट रही है। उसे मिटना ही था, क्यों मिटना था इसी का विशद, गहन और सजीव चित्रण इस उपन्यास में हुआ है। बीमक जैसे धीरे-धीरे भीतर ही भीतर सब कुछ को ग्रस लेती है उसी प्रकार स्वयं जमींदार की अपनी वासना

धीरे-धीरे कैसे उसको ग्रसती है, कैसे उसका अपना दूषित रक्त-मानव का रूप धरकर उसी पर प्रहार करता है और उसे ग्रस लेता है, यही संक्षेप में इस उपन्यास की आधार-भूमि है ।

उपन्यास पंजाबी से हिन्दी में आया है । इसी लिए उसकी भाषा और उसकी शैली पर पंजाबी का गहन प्रभाव है । शैली तो मूलतः वही है, वर्णनात्मक और चित्रमय । हृदय का सूक्ष्म से सूक्ष्म मूर्त भाव वस्तु का सूक्ष्म से सूक्ष्म भाग लेखक की दृष्टि में विशद होकर उभरा है । बेशक यह उपन्यासकार की आदर्शशैली कार्टूनिस्ट की शैली नहीं है पर यह मात्र फोटोग्राफर की शैली भी नहीं है । फिर भी हो सकता है हिन्दी का पाठक पढ़ते-पढ़ते उतावला हो उठे पर इस शैली का अपना स्थान है और वह हिन्दी में घुल-मिल जायगी तो उसे शक्ति ही देगी ।

निश्चय ही हिन्दी जगत उनका स्वागत करेगा ।

विष्णु प्रभाकर

बोभिल बोभिल !



१

उसे ऐसे लगता था जैसे धरती के घुरे के साथ बांध दिया गया हो । भोर की उभरती हुई किरणों से उसे आंच आती थी, सांभ की धुँध-लाती हुई लालिमा उसे जलाती थी । वह मर जाने के लिए जितना तड़पती, जीवन पर उसकी पकड़ उतनी ही गहरी होती जाती ।

भागभरी पहले ही एक डेढ़ वर्ष के शिशु की जननी थी ।

जब वह दालान के धुँधलके में से बाहर निकली तो उसके अंग कांप रहे थे । वह पाँव रखती कहीं और पड़ता कहीं, उसका शरीर भीगा-भीगा, गीला-गीला, पसीने-पसीने था, उसकी पलकें उसकी आँखों की पुतलियों तक दुलक आई थीं । उसकी भवें उतभी हुई थीं । पीठ पर पड़ी हुई एक दो खराशें उसे अनुभव नहीं हो रही थीं । किन्तु उसके ओठों पर, उसके गालों पर एक क्षीण-सी पड़ड़ी स्पष्ट दिखाई दे रही थी ।

भागभरी को ऐसे अनुभव हुआ जैसे उसके चारों ओर कीचड़-ही-कीचड़ उछाल दिया गया हो । उसका आस-पास जैसे दुर्गंध और घृणा-स्पद वस्तुओं से भर गया हो, जैसे सड़ते हुए कूड़े की टोकरी उस पर किसी ने उड़ेल दी हो; दुर्गंध की घासी सड़ाँद से, वह कटी-कटी, दबी-दबी जा रही थी । उसका जी चाहा कि उसके पेट में जो कुछ भी है, उसे उगल दे । खेत वाले मकान के दालान में उसके घिसटते हुए चरण-चिह्न सबेरे की पहली किरण की रोशनी में उभर आए थे । उसका दिल चाहा कि कय कर-कर के सारा दालान भर दे । फिर उसे ऐसे

अनुभव हुआ जैसे सारी-की-सारी धरती कय से लिपी-पुती हुई है और उबकाइयों की लेसदार सफेदी में लोग चल रहे हैं, जी रहे हैं, खा रहे हैं। फिर उसने अनुभव किया— इस लेस में सफेद-सफेद पीले-पीले कीड़े कुलबुलाने लगे हैं, फिर उसने देखा, वे कीड़े काले पड़ गए हैं, फिर उसने देखा, वे कीड़े लाल हो गए हैं।

खेत की मेंढ़ों पर बिखरा सरसों का साग उसे यों दिखाई दिया जैसे किसी कंकाल की अस्थियाँ छिटक कर बिखर गई हों। भागभरी ने एक-एक करके साग की पत्तियों को बटोर लिया। फिर अपना मुँह-सिर लपेट कर वह गाँव की ओर चल दी।

खेत की मेंढ़ों पर लड़खड़ाती हुई भागभरी जब पगडंडी पर पहुँची तो मँले-कुचैले कपड़े पहने एक पुरुष चीथड़ों में लिपटे हुए एक अंधे की बाँह पकड़े सामने से आता दिखाई दिया। जब वे निकट आ गए तो उसे पता लगा कि वे भिखमंगे थे।

“ओ साईं फकीर, ईश्वर कहाँ है ?” उसने लाख-लाख चाहा कि वह न बोले, किन्तु भागभरी के मुँह से अनायास यह प्रश्न निकल गया।

“बहन, मैं तो आँखों से लाचार हूँ। उससे पूछ जो आँखों वाला है ” उसने अपने आगे चलते हुए साथी की ओर संकेत किया।

भागभरी ने और आगे बढ़ कर देखा—दूसरा फकीर गुँगा था।

गाँव के पास नदी के एक सुनसान तट पर भागभरी ने वस्त्र उतारे और अपने थलथलाते शरीर को पानी में छिपा लिया। गीली बालू में उसके पाँव धँसते जाते—“आज मैं कितनी बोझिल हो गई हूँ।” उसने अनुभव किया और तत्काल ही उसके ओठों पर एक व्यंग्यात्मक मुस्कान दौड़ गई। मोतियों से साफ-स्वच्छ जल में उसका हृदय उछल-उछल कर छाती से बाहर आने की करता। भागभरी ने अपने बाल भिगोए, किनारे की चिकनी मिट्टी से अपना भंग-भंग रगड़ा, खुदरे पत्थर के साथ अपने पाँव मले, कितनी देर वह पानी में पट लेटी रही; किन्तु

फिर भी जब वह बाहर निकली तो ज्यों-की-त्यों बोमिल और भारी ही रही। उसके पाँव बालू में घँस रहे थे, जहाँ-जहाँ रेत में उसके पाँव घँसते, वहाँ-वहाँ से पानी सिमट आता।

नदी की ऊँचाई चढ़ कर जब वह बाहर आई, भागभरी ने देखा कि नवोदित सूर्य का पीलापन लाल हो रहा है और तेजी से बढ़ती हुई लाली रुधिर ऐसे रक्त-वर्ण में बदलती जा रही है। फिर उसके देखते-देखते यह लाली सारे आकाश पर फैल गई, सूर्य एक कोने में टिकिया बन कर रह गया। गगन पर विस्तृत-लालिमा और फैलती गई और गहरी होती गई। भागभरी ने सहसा अनुभव किया, जैसे पवन रुक गई हो, घर की ओर तेज-तेज डग भरते हुए उसकी साँस घुट रही थी। एक आँधी-सी छा गई थी, गर्दों-गुबार की आँधी जो आकाश पर छाई तो उसने सम्पूर्ण-प्रदेश को अपनी लपेट में ले लिया था।

गाँव के लोग सहमे और आतंकित-से, गर्दन उठा-उठा कर ऊपर की ओर देखते, घबराए हुए पशुओं ने खूँटे तोड़ने आरम्भ कर दिये, पंछी शोर मचाने लगे, बालक किसी अज्ञात भय के कारण अपनी माताओं के गले लिपट-लिपट जाते, मंदिरों और मस्जिदों के रक्षक इसका कोई कारण न बता पाते।

“प्रलय आ गई है” आखिर एक सफेद बालों वाली, झुरियों से भरी बुढ़िया ने अपनी रूखी लटों को पकड़ कर आकाश की ओर देखा तो स्वयमेव यह बात उसके मुँह से निकल गई।

“नहीं-नहीं, भगतसिंह के साथ जो दूसरे दो व्यक्ति कोल्हू में पड़े गए हैं, यह आँधी उन निर्दोषों का रक्त बहाने पर ईश्वर का प्रकोप है। स्कूल के मुन्शी ने एक अखबार में यह बात पढ़ी थी……।” एक स्वस्थ-युवक ने कहा, और फिर आकाश की ओर आँखें फाड़-फाड़ कर देखना आरम्भ कर दिया, उसकी टांगों के ऊपर का घड़ एक कँप-कँपी बना हुआ थरा रहा था।

“धूल है धूल—यह धूल ईश्वर ने उसके पीछे उड़ाई है, गुफा में

बैठ कर बड़ा आया था कहीं की साधना करने वाला, चार दिन भी नहीं गुजरे और कहीं खिसक गया है," मंदिर के एक पुजारी ने अपने साथ के भयभीत जटाओं वाले साधु से कहा और उसने सिर हिला कर इस बात को स्वीकार कर लिया ।

बहादुर के दालान में जलती हुई आग का धुआँ सीधा ऊपर चढ़ता गया । एक सीधे स्तम्भ के समान, जैसे वह आकाश की आग में जाकर मिल रहा हो ।

जब धीमे से ड्योड़ी का द्वार बंद करके भागभरी दालान में आई, तो दीवार के साथ लग कर खड़े हुए बहादुर ने उसकी भोली में साग की ढेरी देख कर उसे कुछ न कहा ।

"साग तोड़ते-तोड़ते इतना समय हो गया !" भागभरी ने अपनी व्यग्रता छिपाने के लिए कुछ कहना चाहा ।

"ओ भगवान् ! इतना साग क्या करना था ?" पति ने अपनी पत्नी से समवेदना जताने का प्रयत्न किया ।

"जभी मैं कहूँ आज मैं इतनी बोझिल-बोझिल क्यों हूँ !" कुछ समय के बाद भागभरी ने अपने मन-ही-मन में सोचा ।

वह अभी दालान में पाँव रखने न पाई थी, सामने सोए हुए बच्चे ने हिलना आरंभ कर दिया । जितने समय वह भीतर पहुँची, बच्चे ने अपने-आपको मल में लथपथ कर लिया । उसने छोटे-छोटे नाखूनों में, पलकों में, बालों में, नथुनों में, न जाने किस प्रकार लोट-पोट होकर हाथ-पाँव मार कर गंदगी भर कर अपनी दुर्दशा कर ली । माँ ने बच्चे की गंदगी को अंगुलियों के पोरों से मल-मल कर धोया, निखारा, चमकाया, चूमा-चाटा और जब उसे गोद में उठाया, उसे ध्यान आया कि वह एक लोरी का बोल "बच्चे की बूँदें बूँद कर लार्डी" गाए, किंतु उसका मन न माना ।

चाहे कुछ भी क्यों न कर दे, भागभरी अपने बच्चे पर कभी गुस्सा नहीं होती थी । उसके ललाट पर जन्म-जात त्रिशूल था और उसे विश्वास था कि वह जीवित नहीं रहेगा । जब उसे अवकाश होता,

वह सदैव यही चाहती कि बच्चे को जी-भर दुलराए। जैसे कभी कोई पंखी दालान में आकर बैठे, तो पता नहीं होता कि कब उड़ जायगा। जब रात को बच्चा उसकी छाती से लगा होता तो भागभरी की चीखें निकल जातीं।

किंतु आज उसे अपना बच्चा भी मर्द मालूम हो रहा था, मर्द, जो स्त्री को तोड़-फोड़, और भिभोड़ सकता है।

पत्नी को अपने काम में संलग्न देख कर पति अपने काम पर बाहर चला गया। भागभरी ने जब बड़े कमरे से बाहर भाँका, तो क्या देखती है कि चौके में चूल्हे की आग दहक कर उसके बैठने वाले पटड़े को जा लगी है और आवे से अधिक पटड़ा जल चुका है। तेजी से दौड़ कर घड़ा उसने उस पर उलटना चाहा तो घड़ा खाली था।

“दुर-दुर” करती हुई भागभरी ने देखा कि बरामदे के कोने में एक कुत्ता टांग उठाए चक्की के एक पाट पर पेशाब कर रहा था।

रसोई में जब वह दाखिल हुई, एक छिपकली छत से गिर कर मरी पड़ी थी, और चीटियाँ उसे चिमट रही थीं, उन्होंने छिपकली को औंधा कर दिया था। उसका पीला धड़ ऊपर की ओर था और खुदरी पीठ नीचे। फिर भागभरी के पेट में सहसा दर्द उठा, बड़े कमरे में आ कर वह अपनी चारपाई पर बैठ गई, फिर लेट गई।

सामने कोठरी में से म्याऊँ-म्याऊँ करता हुआ बिल्ली का एक पतला-दुबला बच्चा भिभकता हुआ निकला। उसके बाद एक और, एक और, फिर एक और ! बड़ी देर से बोभिल-बोभिल पेट उठाए बिल्ली ने बच्चे दिये थे। एक बिल्ली ने चार बच्चे दिये थे। कुछ समय बाद बिल्ली कोठड़ी से अकड़ी और ऐंठी हुई बाहर आई। बड़े कमरे में बिखरे हुए बच्चों की ओर उसने ललचाई हुई दृष्टि से देखा।

लेटे-लेटे भागभरी को नींद आ गई। उसने स्वप्न में देखा कि बिल्ली के सारे बच्चे उसके पेट में घुस कर बैठ गए हैं और उसका शरीर फूलता जा रहा है, फूलता जा रहा है ?

हाँपती हुई वह जाग उठी, किंतु अभी तक उसे ऐसे ज्ञात होता था जैसे उसके नीचे चारपाई दबती जा रही हो और वह स्वयं बोझिल होती जा रही हो। जिस करवट वह लेटी थी, वह करवट सुन्न हो गई थी।

“सचमुच में बोझिल-बोझिल होती जा रही हूँ !” भागभरी ने सोचा।

कीचड़

२

शेरे को कुएँ की मेंढ़ पर बिठा कर जहाने को बाग में गए काफी देर हो गई थी, किंतु वह अभी तक नहीं लौटा था। आखिर उसकी राह देखते-देखते शेरे ने उसे आवाजें देनी आरंभ कर दीं; जब उसका पसीना बह निकला तब कहीं जहाना गाजरोँ और मूलियों से भोली भरे खट्टों की ऊँची बाड़ के पीछे से निकला।

“अबे ओ ससुरी के, क्यों दिमाग चाट रहा है?”

किंतु गाजरोँ और मूलियों से उसकी भोली भरी हुई देख कर शेरे की बाँछें खिल उठीं और वह अपनी सारी भल्लाहट भूल गया।

जहाने ने कुएँ की मेंढ़ पर गाजरोँ और मूलियों का ढेर लगा दिया, और शेरा एकदम उन पर टूट पड़ा। थोड़ी-बहुत मिट्टी जो उसके टाट-ऐसे पाजामे के साथ लगती, उसे उतारता, साफ़ करता, और खाए जाता।

“ओ भूखे इन्हें धोकर तो खा, तुझसे इतना भी संतोष नहीं होता ! पेट-दर्द से मर जायगा !”

“अबे इन्होंने पेट में कहाँ रहना है !” तत्काल शेरे ने जहाने के नेफे की ओर कनखियों से देखा और फिर दोनों हँस पड़े।

“बदमाश, तूने आखिर देख ही ली, तेरे फटे हुए नथुने तो दारू की छाया तक सूँघ लेते हैं !”

“जभी तो मैं कहूँ, यह लफंगा कहाँ जाकर छिप गया है !” और फिर दोनों बोतल से ही मुँह लगा पीने लगे। देर तक पीते रहे, गहरे

लाल रंग की शराब, जिसका एक-एक घूँट उन्हें मदहोश कर रहा था, चकरा रहा था, झँझा कर रहा था । जहाने ने बताया कि रियासत जींद से उसके एक लंगोटिये मित्र ने यह बोतल उसे उपहार स्वरूप भेजी थी, और उसकी एक-एक बूँद उसने अपनी आँखों के सामने निकाली थी !

दोनों निरन्तर पी रहे थे । और तब, बाग की सुनसान संध्या रात के सन्नाटे में बदल गई, आसमान पर कहीं-कहीं तारे टिमटिमाने लगे, कुएँ के भीतर के जल में मेंढक टरनि लगे और फिर उनके टरनि के स्वर ऊँचे होते गए । आस-पास के गांवों से उभरता हुआ धुआँ अंधकार में विलीन होता गया । दूर गाँव की मस्जिद में 'अज़ा' आरंभ हुई और समाप्त हो गई, किंतु वे पीते रहे, पीते रहे !

आखिर पीते-पीते जहाना लेट गया और वह फूट-फूट कर रोने लगा, रोता जाता और कुएँ की मेंढ पर बिछता जाता ।

शेरे ने उसे समझाया, ढारस बँधाई और बालकों की तरह उसे उठा कर अपने पास बिठा लिया और बड़ी देर तक वह उसका दिल बहलाता रहा ।

“अबे तुझे कौनसी गद्दी याद आ गई ? ससुरी के, वह तेरे किस काम की ? पिछले हफ्ते वह मुझे शहर में मिली थी, नजाकत आ गई है सूअरनी में ! काम-काज के वक्त, दिन को भी दूधिया सफेद उजले कपड़े पहने हुए थी । ऐसी नखरे वाली औरत तेरे किस काम की ?”

जहाने की बस एक अभिलाषा थी । शेरा जिस प्रकार तेज और अड़ियल घोड़ों को सीधा कर लिया करता था, वैसे, यदि वह दो मास भी उसके पास टिक जाती तो वहाँ से कभी हिलने का नाम न लेती । किंतु वह तो दसवें दिन ही किसी परदेसी-पथिक के साथ चल दी ।

“एक तो यह जी चाहता है” जहाने ने आह भर कर फिर बोलना आरंभ किया—“किसी रात जाऊँ और उसे निकाल लाऊँ !” और फिर उसकी आँखों में आँसू डबडबा आए ।

“फिटकार है तुझ पर !” शेरा फिर उसे समझाने लगा, किंतु जहाने से कौन सी बात छिपी हुई थी !

एक पत्नी अभी जहाने के घर में थी, जहाने के दो बच्चों की माँ थी, किंतु जहाने ने उन्हें कभी मुँह नहीं लगाया था। उसका विचार था कि जैसे गाय अथवा भैंस कुछ समय तक बाँध रह कर समाप्त हो जाती है, इसी प्रकार पत्नी भी यदि उसे छोड़ दे तो किसी काम की नहीं रहती। और जिस चमारिन के साथ उसे प्यार हुआ वह खाना-बदोशों के एक छरहरे शरीर वाले लड़के के साथ शहर चली गई।

जहाना आजकल अकेला था।

जहाने ने जब दोबारा आह भरी, शेरे ने आँव देखा न ताव, एक तमाचा उसके मुँह पर जड़ दिया—“अबे ओ, मेरी ओर तो देख !” और फिर उसने अपनी दशा बयान करनी आरंभ की।

उसकी पहली पत्नी, जिसका भेद अभी तक किसी को मालूम नहीं था, वास्तव में जमींदार की नज़रों में जँच गई। उसने शेरे से उसे छीन लिया। आठ-दस दिन अपने पास रखकर न जाने उसने उसे क्या किया, फिर उसकी खबर न मिली। शेरे ने अनुनय-विनय भी की, जैसे उसके डोर-डंगर कभी बाहर रह कर फिर अपने-रेवड़ में आ मिलते हैं, वैसे ही वह अपनी पत्नी को भी घर में बसा लेगा, किंतु जमींदार ने उसकी एक न सुनी, उसकी पत्नी को कहीं खिसका दिया। शेरे की दूसरी पत्नी बड़ी ईर्ष्यालु थी, उससे अच्छी तरह से कोई काम नहीं हो सकता था। एक दिन उसके हाथ से मक्खन की कटोरी छूट गई, शेरे ने उसे ठोकर मारी; वह एक क्षण के लिए घायल पक्षी की, तरह फड़-फड़ाई और फिर वहीं उसका दम निकल गया। उसके पेट में शेरे का आठ महीने का बच्चा था। उसे अभी तक अपने बच्चे का दुःख था, स्त्रियाँ तो मिल ही जाती हैं। उसकी तीसरी पत्नी का हर बार गर्भपात हो जाता, उसने उसे उसके मायके भिजवा दिया कि “यह माल हमारे किसी काम का नहीं !” और अब यह उसकी चौथी पत्नी

थी जिसे उसने कभी चैन से न बैठने दिया ।

“अबे ओ, मुझे देख, मैं कभी नहीं रोया, चाहे वह आठ महीने का मेरा लड़का पेट में लेकर चली गई.....।”

“क्या मालूम कि वह लड़की ही होती, कौन जाने !” जहाने ने चिढ़ाने के लिए कहा—

“मैं तेरे पेशाब से अपनी दाढ़ी मुँडा दूँ यदि वह लड़की होती । किसी को मालूम नहीं होता कि लड़की पैदा होगी या लड़का ?” शेरे को क्रोध आ गया ।

शेरे की क्या बात थी—एक बार उसकी घोड़ी जब बच्चा देने वाली थी, तो उसने कहा कि बछेरी होगी, और जब घोड़ी ने बच्चा दिया, बछेरी ही पैदा हुई । उसने अपनी एक पत्नी से कहा—“ससुरी, तू भी एक जोड़ा पैदा करके दिखा । अपनी गाय की ओर देख.....”

और उसके घर उस वर्ष जुड़वाँ बच्चे हुए ।

शराब की बोटल समाप्त हो चुकी थी । हल्के-हल्के शीत की ठंडक में मदमस्त होकर नशे में चूर दोनों कुएँ की मेंढ़ पर बैठ गए, बैठे रहे ।

स्त्रियों की बातें करते-करते उन्होंने पशुओं की चर्चा छेड़ दी । शेरे ने जहाने को बताया कि जमींदार की सफेद घोड़ी आजकल उससे बिगड़ी हुई है । एक मास हुआ, उसके बछेरे की दशा खराब थी, और शेरे ने उसे रात को अहाते में बाँध दिया तथा माँ को भी बाहर ही बँधा रहने दिया ।

उस दिन से जब-कभी वह अस्तबल में जाता, घोड़ी उसकी ओर मुँह उठाकर न देखती, न कभी हिनहिनाती । अब शेरा सोचता था कि उसे स्वयं मना ले । कुछ दोष तो उसका अवश्य था—“और फिर इन सुन्दरियों का क्रोध मुझे बिल्कुल नहीं भाता,” उसने कहा ।

पिछले वर्ष इसी प्रकार उसने एक बार जमींदार के एक बाज को

सलाम न किया, और जब उसका दाँव लगे उसके कबूतरों को आदबोचा करे, देखते-ही-देखते उनकी गर्दन मरोड़ कर फँक जाया करे। उसने बाज़ को कई लालच दिये, कई घमकियाँ दीं, किन्तु वह न माना। आखिर सरकार ने खुद बीच-बचाव करवाया, सुलह हो गई और शेर के कबूतरों की जान बची।

शेर की आँखें अब थक कर मुँदी जा रही थीं।

फिर शेर ने ज़मींदार की एक कुतिया के बारे में उसे बताया, जिसका एक बच्चा ज़मींदार ने किसी अतिथि को उपहार-स्वरूप भेज दिया था। कुतिया चुपचाप यह सब कुछ देखती रही। सांभ को उसने कुछ न खाया। सबने सोचा कि उसके विरह का दुख अगले दिन ही मिट जायगा, किन्तु रात को उसने अपनी लोहे की जंजीर को बल दे-देकर अपने-आपको फांसी लगा ली।

शेर की अपनी एक गाय उसकी पत्नी को बहुत प्रिय थी। एक दिन उसके सामने वह अपनी पत्नी को बुरा-भला कहने लगा; फिर उसने लाख प्रयत्न किये। गाय ने दूध न दिया, और दोनों समय उससे बिगड़ी रही। जबतक शेर ने अपनी पत्नी को मना न लिया।

शेरा यूँही कितनी देर किस्से-कहानियाँ सुनाता रहा, सुनाता रहा। आखिर, जब उसने मुँह फेर कर ध्यान से देखा तो जहाने की आँखों से अश्रुधारा बहती हुई उसे दिखाई दी। शेरा सहसा चुप हो गया, जहाने की चीख निकल गई।

“अबे ओ जहाने, तुझे क्या हो गया है। तूफ़ पर यह क्या फिटकार पड़ गई कि तू बच्चों की तरह रो रहा है !”

जहाना बिल्कुल चुप था, बिल्कुल गुमसुम !

शेर ने झुंझला कर उसे तनिक जोर से, ज़रा निर्दयता से झिझोड़ा, किन्तु जहाना निश्चल ज्यों-का-त्यों पड़ रहा। आखिर उसे सख्त क्रोध आया और शेर ने अपने सिर से पटका उतार कर उसकी मुश्कें कस

दीं तथा उसे अपने कंधों पर डालकर घर की ओर चल पड़ा। शेर का घर बाग के दूसरे किनारे पर था।

मार्ग में एक गहरी खाई देखकर शेर का क्षणभर के लिए जी चाहा कि वह अपने उस अनावश्यक बोझ को उसमें फेंक दे !

आखिर जब वह घर पहुँचा, तो शेर ने देखा कि ड्योढ़ी का द्वार खुला पड़ा है। उसने सोचा कि द्वार खटखटाने की मुसीबत से भी छुटकारा मिला। शेर सीधा अपने भूसे वाले कमरे में गया और अपने कंधों पर उठाए हुए बोझ को उसने खींचकर घासफूस के ढेर पर पटक दिया। जहाने को उसने उसी प्रकार बँधा रहने दिया और बाहर से साँकल लगा कर अपने कमरे में आ गया।

शेर की पत्नी अभी अपनी चारपाई पर करवटें बदल रही थी—
“ओ भागवान, तू अभी तक सोई नहीं ?” शेर के कुछ बच्चे माँ की चारपाई पर और कुछ उसके पलंग पर सिकुड़े हुए पड़े थे।

देसी शराब से उनींदा शेर शीघ्र ही सो गया।

सबरे जब शेर जागा, उसने देखा—भूसे वाले कमरे की साँकल ज्यों-की-त्यों बाहर से बंद थी, किन्तु जहाना वहाँ नहीं था। भूसे पर खड़ा शेर ताज्जुब कर रहा था कि उसने कमरे के एक कोने में गुलाबी रंग की काँच की चूड़ी टूटी हुई पाई।

शेर हيران था कि उसके घर तो कभी चूड़ियाँ नहीं आई थीं।

“ससुरी का ! पटका भी साथ ले गया और चूड़ियाँ भी यहाँ तोड़ता रहा !”

शेर जहाने के घर की ओर चल पड़ा।

दुर्गन्ध-सुगन्ध

३

“सरकार आ गए” हाँपते हुए एक नौकर ने बाहर से आकर ड्योढ़ी में ऊँघते हुए चौकीदार को बताया और आन-की-आन में यह समाचार हवेली में फैल गया। शरफू ने अपनी भोली में मचलती हुई बिल्ली को परे फेंका और शीघ्रता से ज़मींदार के कमरे में दृष्टि डाली—सब वस्तुएँ ठीक रखी थीं। उसके सामने आधीवूप आधीछाया में बैठी हुई उसकी स्त्री ने बच्ची की जुएँ निकालनी बंद कर दीं और जल्दी में बच्ची के सिर का चुटीला वहीं छोड़कर भाग गई। जुम्मे ने चुटीला उठा कर अपने नेके में टाँग लिया और एक बड़ी-सी गाज़ी उसने अपनी स्त्री को दी। ज़नानखाने में कहार की इस्पात जैसे रंग की पत्नी कपड़े दे-ले रही थी। ज़मींदार के आने का समाचार सुनकर बेगम स्वयं अहाते में निकल आई। उसने स्त्री को एक नजर देखा—फिर एक पल देखने के बाद उसे पिछली ओर से बाहर भेज दिया। बेगम की आँखों में सम-वेदना छलक रही थी। वह भीतर चली गई, और जब उसने दर्पण में झाँककर देखा, उसे ऐसा लगा जैसे उसकी परछाई काँप रही हो, फिर उसकी आँखों में आँसू आ गए।

अभी उसने अपने आंचल का पल्लू आँखें पोंछने के लिए उठाया ही था कि उसने दर्पण में देखा—ज़मींदार दरवाजे पर आ पहुँचा था, उसका तुर्रा चौखट को छू रहा था। उसके पीछे एक चौड़े मुँह वाला ‘बुली’ कुत्ता था, उसके पीछे एक दुबला-पतला लंबे नोकदार मुँह वाला शिकारी कुत्ता था, उसके एक हाथ में बाज़ था और दूसरे हाथ में हँटर था,

जिससे वह घोड़ों को इशारा करता था, नौकरों को मारता था। ज्यों-के-त्यों अपनी आँखों में आँसू लिये बेगम ने मुड़ कर देखा और वहीं-की-वहीं खड़ी रही जैसे उसे ललकार रही हो—“मैं अभी मुश्किल से पंद्रह वर्ष की हूँगी।” उसका काँपता हुआ रोम-रोम जैसे कह रहा था, “और एक तेरा बच्चा पहले ही मेरे पेट में है। तीन पत्नियों को तू पहले ही खा चुका है, मैं चौथी हूँ। न जाने मेरे माँ-बाप क्यों अंधे हो गए—मैं अच्छी-भली पढ़-लिख रही थी और तूने मुझे इस गाँव में ला फँका, तूने मेरे माँ-बाप की गरीबी खरीद ली, तुझे अपने खुदा की क्रसम ! तनिक अपनी ओर देख और मेरे शरीर की ओर देख, मेंहदी से लाल किये हुए तेरे बाल काले तो नहीं हो सकते। तेरे माथे पर, तेरी सूरत पर, तेरी उम्र के निशान कितने खोफनाक हैं, तेरे हाथों पर तेरी नखें दिखाई देती रहती हैं !

“तेरी पहली बीवी से तेरा एक लड़का पैदा हुआ, तुझे बेटा देकर बे-चारी खुद चल बसी। दूसरी बीवी को भी तूने न जाने किस तरह जान से मार दिया, लोग तो न जाने क्या-क्या बातें करते हैं। तीसरी बीवी सड़-सड़ के, सुलग-सुलग के, जल-जल के तेरी बातों के कारण सती हो गई। तूने उसकी लड़की को कैदी किया हुआ है और अब मेरी बारी है। मुझे यों महसूस होता है जैसे मेरी मौत दहलीज़ पर खड़ी हो—कल पंडितायन को हाथ दिखाया था तो उसने भी यही कुछ कहा था।

“तुम जैसे लोगों का रहन-सहन अजीब-सा है। जबान भी पराई-सी है और रंग-ढंग भी अलग हैं; यहाँ तेरे नौकर और नौकरानियाँ सारा दिन पड़ी सूखती रहती हैं। उन्हें कोई काम नहीं, कभी सिर जोड़ के बैठते हैं, आपस में, कानों में न जाने क्या-क्या फूँकते रहते हैं। जैसे चोरो-आकुओं की कोई टोली हो। मुझे यों जान पड़ता है जैसे हर वक्त कोई मुझ पर नज़र रख रहा हो, मैं कभी-भी अपने-आपको अकेली नहीं ससभ सकती।

“इतनी बड़ी यह हवेली, मुझे काट खाने को दीड़ती है; और इस

उलट-पलट, इस शान-शीकत और इस हवेली के मारे, मेरा दम घुटा जा रहा है। तेरे फ़ानूसों, तेरे क़ालीनों और तेरे पलंगों के नीचे में दबी-पिसी जा रही हूँ। तेरे मखमली-गद्दों पर मुझे नींद नहीं आती। तेरे झरोखों में से जब-कभी झाँकती हूँ तो मुझे चारों ओर गरीबी और बीमारी के पिंजर दिखाई देते हैं, जैसे उनका माँस किसी ने नोच लिया हो !

“तुझे शायद ऐसा कभी महसूस नहीं हुआ। मेरा खयाल है कि जान-वरों और बाज़ों के साथ रहते हुए तेरा, अन्दर का इन्सान मर चुका है।”

न जाने वह झाँखों-ही-झाँखों में और क्या कुछ कह जाती, लेकिन ज़मींदार ने अपना बाजू उसके कंधों के गिदं डालकर उसे अपने बाहुपाश में ले लिया ! एक सहमी हुई फ़ास्ता जैसे किसी बाज़ के पंजों में सिकुड़ गई हो।

ज़मींदार ने समझा शायद वह सवेरे का बाहर गया हुआ अब आया है और बेगम इससे नाराज़ है। कितनी देर तक वह उसके लिए बहाने लगाता रहा; बिल्कुल ऐसी ही बातें वह हमेशा किया करता था। जिन पर दूसरे को यकीन न आता और खुद उसे भी तसल्ली न होती।

ज्यों-ज्यों ज़मींदार बेगम को अपने पास खींचने का प्रयत्न करता, त्यों-त्यों वह और दूर होती जाती। उसे ज़मींदार में से एक भयानक दुर्गंध आती हुई महसूस होती। यह दुर्गंध उसे कभी दूसरे और कभी चौथे दिन, और कभी हर रोज़ हर घड़ी आती रहती। उसे जान पड़ता जैसे उसकी बोटी-बोटी नोची जा रही हो, गल-सड़ रही हो। कोई भी वस्तु, जो उसकी है, उसे कोई छीन रहा हो, या वह अपने-आप किसी की गोद में जा गिरी हो। कोई वस्तु जिसके अपनाने में न उसे कोई रस अनुभव होता और न उसके खो जाने पर उसे कोई दुःख होता था।

ज़मींदार ने कुल्ले पर बैठी डोरिया पगड़ी उतार कर बेगम को ढकड़ा दी, उसे उसमें से दुर्गंध आ रही थी। फिर उसने जूता उतारा,

बेगम को उसमें से भी उसी प्रकार की दुर्गंध आई। फिर उसने अपना कोट उसे दिया, उसमें से भी वही सड़ांध उठ रही थी। बेगम एक मशीन की तरह ये वस्तुएँ पकड़ती गई और उन्हें उनके स्थान पर रखती गई। ज़मींदार को अपनी भरपूर जवान कली की-सी नाजुक बीवी से काम करवाते बड़ा आनन्द मिलता था। कभी-कभी बेगम से अनुरोध किया जाता कि वह उसके सिर में तेल मल दे, कभी-कभी वह अपने हाथ दबवाता था, मेंहदी उससे चोरी छिपे लगाता था, कभी-कभी गोलियाँ भी उसकी नज़र बचाकर खा लेता।

ज़मींदार की आयु इस समय लगभग साठ वर्ष की थी, और अपनी बीवी को हमेशा अपनी आयु चालीस वर्ष की बताया करता था। पन्चीस-तीस वर्ष का तो उसका जवान बेटा था !

जब कभी वह अपनी बीवी के पास बैठता, अपने हाथ की रेखाएँ देखता रहता, बीवी की हस्त-रेखाओं से उनकी तुलना करता।

“ओ भागवान देख ! यह जो रेखा मेरे हाथ पर पड़ी है, जीवन की रेखा है, यह कहीं समाप्त ही नहीं होती, मिटती ही नहीं।”

जब बेगम उसकी फिज़ूल की बातों से उकता जाती, वह मदिरा-पान आरंभ कर देता, वह दिन भर पीता रहता, रात भर पीता रहता।

वर्षों के पुराने नौकर थे जो घर का सारा धंदा चलाते जाते, चलाते जाते। उसकी लड़की रेशमा के लिए अलग कमरा था, अलग नौकरानियाँ थीं। उसके लड़के नव्वाब का लगभग एक अलग हवेली ही में घर था, जहाँ वह अपनी बीवी के साथ रहता था।

साँझ को ज़मींदार कई बार अपनी बीवी को अपनी हवेली की छत पर ले जाता और पोछोहार की पुखराज ऐसी हरी-भरी धरती दिखाता। अपनी लंबी-लंबी भुजाएँ फैला कर बताता कि कहाँ-कहाँ तक ज़मीन उसकी अपनी थी। एक ओर ‘सुहाँ’ तक, ‘सुहाँ’ के पार के भी कुछ गाँव उसके अपने थे। दूसरी ओर मोरगाह और मोरगाह के

पीछे जो गाँव थे, वे भी उसके अपने थे। उस ओर उसकी जागीर की सीमा रावलपिंडी की छावनी से लगती थी और पश्चिम की ओर उस का अंतिम-गांव 'कोट' था, जो वहाँ से दिखाई न देता, जहाँ वे खड़े होते। उस गाँव तक पहुँचते-पहुँचते शाम हो जाती थी। (173)

ऐसी शाम को कभी-कभी छत पर खड़े-खड़े बेगम अपने-आपको भूल जाती, उसे एक मादकता-सी घेर लेती। एक ओर 'सुहां' इस प्रकार फैल-फैल कर बह रहा था जैसे उसका दिल न चाहता हो कि वह उस प्रदेश को छोड़ कर चला जाय। दूर-दूर तक वह एक सफेद चादर-सी होकर रह जाता। दूसरी ओर चट्टानें थीं, टीले थे, नन्ही-नन्ही पहाड़ियाँ थीं, पहाड़ियाँ भाड़ियों से भरी हुई थीं, भाड़ियों के साथ गहरी सुखं बेरियाँ थीं, जिन्हें चरवाहे दिनभर नोंचते-खाते रहते, जिनकी पतियों से भेड़-बकरियाँ चिमटी रहतीं। किसी ओर चश्मे थे, किसी ओर पेड़ों के झुण्ड थे, जिन पर फ़ास्ताओं की कतारें-की-कतारें आकर बैठतीं। खरगोश, लोमड़ियाँ और हिरण भागते फिरते। किसी ओर लहलहाते हुए खेतों में कदावर पोठोहारने और सुहाँ का पानी पी-पी कर उन्मत्त पोठोहारी युवक गीत गाते और अपने दिलों की कहते-सुनते।

बेगम का जी चाहता कि वह चारों ओर फैले हुए सौन्दर्य में समा जाय, उसका यह स्वप्न कभी न टूटे, किंतु भिन्नोड़ कर जैसे उसे कोई जगा देता। वह थर-थर कांपने लगती। जमींदार से उसे तीव्र दुर्गन्ध आने लगती, उससे गहरी घृणा हो जाती—उसे चक्कर आ जाता, उसका दिल चाहता कि हवेली की भीत उसे स्थान दे दे और वह धरती पर जा गिरे तथा टुकड़े-टुकड़े हो जाय। जमींदार के अंक में कभी-कभी वह चीखने लगती और बेसुब होकर गिर पड़ती।

“इन दिनों यूँही हुआ करता है, फिकर की कोई बात नहीं,” जमींदार की बूढ़ी नौकरानियाँ उसे ढास देतीं।

जमींदार कभी-कभी रेशमां के कमरे की ओर जाता। तीन वर्ष की

एक कोमल काली एक सुघड़ नौकरानी के हवाले थी। बच्ची को कभी-कभी जमींदार छाती से लगा कर खूब रोता और नौकरानी के हाथ जोड़ता कि वह उसे उस हवेली की हवा न लगने दे। हवेली का कोई व्यक्ति रेशमां से नहीं मिल सकता था, रेशमां ऊपर चौबारे में रहती थी। वह और उसकी दासियाँ—दरवाजे बंद रहते थे, खिड़कियाँ बंद रहती थीं।

अपनी बच्ची के साथ जमींदार कभी-कभी छोटी-छोटी बातें किया करता, देर तक उसे खिलाता रहता। कभी-कभी वहीं उसके साथ बैठ कर दलिया और खिचड़ी ऐसी हल्की-हल्की वस्तुएँ खाता, रेशमां के मुँह में चमचे से कौर डालता, बच्ची की कठिन-से-कठिन माँगें पूरी कर देता, उसे झूला झुलाता, उसे देर तक झूला झुलाने के लिए सेवा में खड़ा रहता।

कभी-कभी अपने हाथों से उसे नहलाता, उसका हाथ, मुँह, नाक, कान साफ करता, उसे कपड़े पहनाता और अपने सामने उसकी आँखों में काजल डलवा कर उसके बाल सुलभाता, और फिर थपक-थपक कर उसे सुला देता।

और इस प्रकार जब कभी वह अपनी बच्ची के कमरे में कुछ समय रह कर बाहर निकलता, तो उसे अपना-आप हल्का-हल्का लगता, जिस प्रकार कोई नहाने के बाद साफ-साफ महसूस करता है।

इसी प्रकार, एक शाम को जब रेशमां के कमरे से लौट कर वह अपने कमरे में आया, तो बेगम ने उससे कहा—“आज तुमसे यह सुगंधि कैसी आ रही है?”

इस बात को छः मास बीत चुके थे।

चीरपड़ !^१

४

जुम्मे को 'चीरपड़' की कहानी पर कभी विश्वास न आता, उसने कई बार यह कहानी रावेल से सुनी थी। दूसरे लोगों ने भी उसे यह कहानी सुनाई थी, उसका मन इस कहानी को कभी स्वीकार न करता। बहुत से लोग जब उससे तर्क करते तो उसके पट्टे फड़कने लगते, उसकी छाती और-भी तन जाती और उसके दाँत कटकटाने लगते।

नदी के पार उसके सामने 'चीरपड़' थे, और इस पार नदी के किनारे बैठ कर रावेल ने जुम्मे को आज फिर यह कहानी सुनाई।

चीरपड़—पत्थर का एक घोड़ा, जिस पर पत्थर का एक सवार बैठा था। पत्थर की एक शिला पर घोड़े की टापों के चिह्न—सामने पथरीले-टीले में एक-एक बारीक-सी दराड़ थी जो आरपार हो गई थी। पिछली पहाड़ी सारी-की-सारी पत्थर की थी, पत्थर-ही-पत्थर, गोल-गोल शिरों ऐसे लम्बे-लम्बे श्वेत-श्वेत खम्बों के समान, जहाँ तक दृष्टि पहुँचती, वे स्थिर किर्मची रंग के पत्थर यों खड़े हुए दिखाई देते जैसे खून जम कर इस्पात बन गया हो।

फिर रावेल ने दाईं ओर संकेत किया—पहाड़ी के तीन टीले यूँ पड़े थे, जैसे कोई चूल्हा बना हुआ हो, यह उस चुडैल की रसोई थी।

प्रतिवर्ष यह चुडैल खून माँगती, एक जान का बलिदान चाहती; चाहे वह पुरुष हो या स्त्री, युवक हो या वृद्ध। एक जान लेकर फिर वह कभी किसी वस्तु को न छोड़ती। चुडैल की इच्छा थी कि आसपास

१. पोठोहार में एक पथरीली चट्टान

के गाँव वाले एक-न-एक को अपने-आप भेज दिया करें। कई वर्षों तक यूँ ही होता रहा। कई शताब्दियाँ यूँही व्यतीत हो गईं। यदि कभी किसी गाँव वाले देरी करते तो चरवाहों का कोई लड़का, उसके साथी बताते, पहाड़ी पर से ढोर-डंगरों को हाँकता हुआ फिसल पड़ता और वहीं तड़प कर उसके प्राण निकल जाते। अथवा पास कहीं नदी में नहाती हुई स्त्री डूब जाती। पहाड़ी के आँचल में कहीं किसी पथिक को कोई कत्ल कर देता। एक बार एक पागल स्त्री ने चून्हीं में खड़ी होकर छलाँग लगा दी और टुकड़े-टुकड़े हो गई। चुडैल किसी-न-किसी प्रकार अपनी प्यास बुझा लेती।

लोग प्रायः चैत के महीने में चुडैल को मुँह माँगा बलिदान स्वयं जाकर दे आते और एक वर्ष के लिए संपूर्ण प्रदेश बे-फिकर हो जाता। और यदि कहीं सुस्ती अथवा देरी हो जाती तो चुडैल अपना काम आप निकाल लेती। फिर चाहे कोई जवान लड़का हो या कोई सुप्रसिद्ध धनाढ्य हो, चुडैल के हत्ये जो कोई भी चढ़ जाता, वह उसे कुचल कर रख देती। वह वर्ष में एक का खून अवश्य बहाती।

फिर लोगों ने मिल कर सोचा, शायद चुडैल गाय, भैंस अथवा कोई दूसरा जानवर लेकर मान जाय। पंचों को पत्थरों की ओर भेजा गया। वे कितनी देर चुडैल का इन्तज़ार करते रहे, आखिर पत्थरों में हलचल हुई और चुडैल ने उत्तर में सिर हिलाया, पत्थर हिले और उसमें से 'हाँ' की गूँजती हुई प्रतिध्वनि आई। पंच चुडैल से डरते-काँपते लौट आये।

फिर राजा रसालू का इस प्रदेश पर अधिकार हुआ तो उसने चुडैल को ये भेंट देने से लोगों को रोका और आदेश दिया कि पत्थरों के समीप कोई न जाय। उसने अपने पौजी-दस्ते की एक चौकी वहाँ बिठा दी। फौज के सिपाही गोले छोड़ते रहते, शराब पीते रहते और हर बड़ी कौलाहल मचाये रहते। चौरपड़ में से चिंघाड़ने की ध्वनियाँ गूँजती रहतीं, फुंकारने के स्वर सुनाई देते रहते, किंतु ये लोग जरा

भी न डरते, जरा भी भयभीन न होते। एक बार आंधी में एक पत्थर लुढ़कता हुआ उनकी चौकी की ओर आ गया किंतु सिपाहियों ने मिल कर उसे रोक लिया—इस प्रकार कितने वर्षों तक कोई घटना न हुई।

लोग कहते कि चुड़ैल अब भाग गई थी। जहाँ गोले चलते थे, राक्षस कहाँ ठहर सकते हैं, पोठाहार का संपूर्ण-प्रदेश राजा रसालू को आशीष देने लगा।

समय बीते राजा रसालू ने अपना विवाह रचाया। 'ढेरी चकरी' की ओर बरात ने जाना था। ढोल, शहनाइयों और बाजे-गाजों के साथ बरात निकली, और जब 'चीरपड़ों' के पास से गुजरी तो घोड़ों ने मुँह मोड़ लिये। लोग बहुत भयभीत हुए और काँपने लगे ? राजा रसालू ने यह देखा तो अपना घोड़ा सबसे आगे बढ़ा दिया और उसे एड़ी लगा कर पत्थरों पर चढ़ गया। ढोल बजने लगे, शहनाइयों ने ऊधम मचा दिया, सारी बरात राजा रसालू के पीछे-पीछे चलने लगी। इतने में चूल्हों में से धुआँ उठने लगा, पलक-भपकते आंधी आ गई, बिजली कड़की। राजा रसालू ने अपनी तलवार म्यान से खींच ली और हवा में लहराई, किंतु अगले ही क्षण राजा रसालू सारी-बरात सहित वुत बन चुका था। राजा की तलवार जिस पत्थर पर बरसी—उस पर अभी तक उसकी काट की दराड़ मौजूद है।

रावेल कहानी सुनाता गया, सुनाता गया। जुम्मे ने हाथ में एक पत्थर पकड़ा हुआ था, जब कहानी समाप्त हुई, उसकी मुट्ठी में छोटे-छोटे टुकड़े थे, जिनमें से बहुत से पिस गए थे। जुम्मे ने उन्हें दूर फेंक दिया और फूँक मार कर अपनी हथेली साफ़ की।

“अबे ओ रावेल यार ! आज तो मैं चीरपड़ों की ओर जाकर ही रहूँगा,” वह दृढ़ संकल्प करके उठ खड़ा हुआ।

“अबे बैठ के बात तो सुन ले फाटेखाँ के बच्चे ! बिना कारण ही गर्म हो रहा है।”

जुम्मे का जी चाहता था कि चलकर अपनी आँखों से देखे।

चुड़ल कैसी थी। उसमें कितनी शक्ति थी, लोगों के साथ उसे क्या बैर है, और वह वहाँ रहती क्योंकर है ?

“आमने-सामने होकर उससे बातें करूँगा। यदि कुश्ती लड़नी पड़ी तो कीलदार छड़ी मेरे पास है।” जुम्मे ने तय कर लिया, उसकी लाल आँखों की पुतलियाँ बाहर निकल आईं और वह खम्बे के समान जमकर खड़ा हो गया।

“मैं कहता हूँ—शेरे और जहाने को भी पुकारते चलें,” रावेल ने धीरे से राय दी।

“अबे किससे डर रहा है, मदद माँग रहा है ?” जुम्मे को ताव आ गया।

रावेल उठ कर उसके साथ चल पड़ा। किन्तु मार्ग में धीरे-धीरे जुम्मे को सुनाकर खबरदार भी करता गया। भूत-प्रेतों की कुछ बात ही और होती है। किन्तु चुड़ैलें, राक्षस-राक्षसिनें तो बड़ी भारी मुसीबत खड़ी कर देते हैं ! ये कोई मुजारे थोड़ा ही थे कि सरकार के हाँसले पर उनसे जो-जी चाहता काम ले लेता !

अंधेरा बढ़ता जा रहा था। फिर उनके पास कोई हथियार भी तो नहीं था। चाहे रावेल यह जानता था कि उसने अपने नेफ्रे में पिस्तौल छिपा रखा है, जिसमें एकदम सात गोलियाँ थीं। एक गोली उसने महरी के पति पर यूँही गँवा दी थी। वह यदि उसे धमकाता तो भी उस बेचारे का दम निकल जाता।

उस महरी का पति तो अब पेड़ों के झुंड में पड़ा हुआ ठंडा हो गया होगा। अपनी ओर से बड़ा पति बना फिरता था। जुम्मे को यह बात कभी अच्छी नहीं लगती थी कि कोई किसी पर अधिकार जमाकर बैठ जाय। फिर उसने तो जुम्मे को घूरकर देखा था। सरकार के विशेष-चहेते जुम्मे को इस प्रकार कोई नहीं दबा सकता था। फिर जुम्मा सोचता कि अभी तो उस चतुर स्त्री से उसने कई काम निकलवाने हैं। वह क्यों एक मँले-कुचँले पुरुष की स्त्री बन कर रह गई थी।

चीरपड़

अच्छी स्त्रियाँ अच्छे पुरुषों के साथ मिल कर ही अच्छे बच्चे पैदा करें, जुम्मा सदैव ये बात किया करता था। उसने जमींदार को कई बार राय दी—“यदि आप आज्ञा दें तो इन दुबले-पतले नीकरो को एक रात भर में कहीं गायब कर दूँ !” खेत वही अच्छा होता है, जिसमें से भाड़-भंखार और अन्य फिजूल की चीजें निकाल दी जाँय। उसकी इस बात पर जमींदार तथा उसके अन्य साथी हंस दिया करते थे।

नदी के पार चीरपड़ों तक कोई विशेष कठिनाई नहीं थी। लग-भग आध घंटे के बाद अपने ध्यान में, बातें करते हुए जुम्मा और रावेल चट्टानों के समीप पहुँच गए थे। जुम्मे ने सोचा कि पहले पिछली ओर से निरीक्षण आरंभ किया जाय। राजा रसालू की बरात देखता हुआ वह आखिर उसके घोड़े तक पहुँच गया। पहले उसने घोड़े की पूँछ पकड़ कर अपने मुँह से ऐसी आवाज़ निकाली जैसे उसे चलने के लिए कह रहा हो ! घोड़ा ज्यों-का-त्यों खड़ा रहा। फिर उसने राजा रसालू के कंधे पर हाथ रख दिया।

“राजा साहब—राजा साहब ! मैं चीरपड़ों की चुड़ैलों का बाप हूँ, तनिक ऊपर की ओर देखो, अब जाग पड़ो,” उसने जोर-जोर से चिल्ला कर कहा।

किन्तु पत्थर में जान न आई।

“अगर मुझे वह आज कहीं मिल गई.....” जुम्मे की कीलदार छड़ी जैसे चुड़ैल को धमकी देने के लिए तड़प रही थी।

फिर वे चूल्हों की ओर गए। जुम्मे ने पहले उनमें झाँक कर देखा। फिर नीचे आकर चूल्हों के भीतर घुस कर देखा। दीवारें जालों से अट्टी पड़ी थीं। मोटे-मोटे काले जाले, जिनमें चिड़ियों और पंछियों के पंजर लटक रहे थे। कानों में, नुक्कड़ों में चमगादड़ उल्टे लटक रहे थे। नीचे घुटनों तक सूखी हड्डियाँ थीं, जानवरों के पंख थे, आदमियों की खोपड़ियाँ थीं, टूटे हुए अंडे थे। कई रंगों और कई तरह के साँपों की कंचुलियाँ थीं। पैरों की आवाज सुनकर नेबलों का एक

जोड़ा चुपके से दौड़ गया। छिपकलियों ने अपनी आँखें फाड़-फाड़ कर उन्हें देखना आरंभ कर दिया।

“यहाँ से तो वह सूअरनी भाग गई!”—आखिर जुम्मे ने नाउम्मीद होकर कहा और मुड़ने लगा, किन्तु देखता क्या है कि उसके पीछे रावेल नहीं था।

जुम्मे ने सामने सदियों के तने जालों को देखा। जालों में लटकते हुए चमगादड़ देखे, साँपों की केंचुलियाँ देखीं, एक आदमी की बड़ी-सी खोपड़ी देखी, एक बच्चे की छोटी-सी खोपड़ी देखी, तो उसने सोचा—कहीं ये वस्तुएँ, बुत और पत्थर न बन गई हों। पसीना जुम्मे के बालों से धार बन कर बह रहा था।

इतने में जुम्मे ने पिस्तौल चलने की आवाज सुनी, इकट्ठी तीन गोलियाँ। वह चौंक कर मुड़ा, क्या देखता है कि रावेल ने एक अजगर को ढेर कर दिया है।

कुटनी

५

ढेरो कछुए के समान बैठती तो फिर उससे उठान जाता। ढेरो बंठी-बंठी सलवार में जुएँ निकालती रहती, फटे-पुराने कपड़े सीती रहती, रफू करती रहती—“डोह-डोह, शी-शी, दुर-दुर” करती कन्वों और कुत्तों को दूर से भगाती रहती। उसे इतना साहस न होता कि उठ कर चौके में पड़ी हुई वस्तुएँ ढक दे। जहाँ ढेरो बैठती वहाँ मोटे-मोटे लेसदार खँखार छोड़ती रहती, नाक मुड़कती, नाक के छिछड़े निकाल कर मोढ़े के साथ पोंछती जाती। उसकी छोटी-छोटी मैली-कुचैली जटाएँसदैव के उसके मुँह पर पड़ती रहतीं। मक्खियाँ उसके खँखारों पर बैठतीं, उसकी नाक की गंदगी पर बैठतीं और फिर वहाँ से उठ कर उसकी नाक और उसके मुँह पर आ बैठतीं। जो मक्खियाँ ढेरो की मुट्ठी में आ जातीं, उन्हें वह मसल कर रख देती, अन्य मक्खियों के वह पीछे पड़ी रहती।

ढेरो के चेहरे की खाल झुरियों में पलट कर उसकी काया छोड़ चुकी थी। उसका हड्डियों का पंजर अलग मालूम होता और उस पर ढँकी हुई उसकी खाल अलग दिखाई देती थी। उसके कानों में बालियों के छेद अब गुफाओं के मुँह के समान हो गए थे, उसकी आँखें धँस गई थीं और हर समय जाले से भरी रहती थीं।

ढेरो को इस बात पर बड़ा गर्व था कि ज़मींदार बचपन में उसके साथ खेला करता था। कई बार उसने उसे जान-बूझ कर जिता दिया था, और अपने कंधों पर चढ़ा कर उसे सवारी कराई थी। कई बार

वे आंखमिचौली खेलते हुए एक-दूसरे से सट कर बैठते। ज़मींदार की दी हुई कई चीजें उसने आज तक संभाल कर रखी हुई थीं। कई बार ज़मींदार को ढेरो वे चीजें लाकर देती जिन्हें ज़मींदार को घर में खाने की आज्ञा नहीं थी। वे मिल कर छिप-छिप खाते। सब से बड़ी बात तो यह थी कि ज़मींदार को अभी तक ये सब बातें याद थीं।

कछुए की तरह अकेली बैठी ढेरो कुछ-न-कुछ सोचती रहती। कभी-कभी आप-ही-आप मुस्करा उठती, कभी-कभी उसके ऊपर के बाकी दो दाँत उसके निचले ओंठ में आ चुभते।

ढेरो का एक बिल्कुल मरियल-सा सड़ा-गला कुत्ता था—हड्डियों को चाट-चाट कर फिर चाटने लगता, जहाँ ढेरो बैठती उससे चार कदम हट कर वह भी लेट जाता और ढेरो की ओर टकटकी बाँध कर देखता रहता, देखता रहता। उसका सारा खून कीड़ों ने चूस लिया था, उसकी खाल खुजली से उधड़ रही थी, फिर भी वह अभी तक जीवित था। ढेरो जब बाहर निकलती, 'मोती' कभी उसके आगे चलता और कभी पीछे, मुड़-मुड़ कर उसकी सलवार सूँघता।

गाँव के लोग अभी तक ढेरो से आँखों में चुटकी डलवाने आते और सोचते कि उनकी आँखें ठीक हो जाती थीं। जिन्हें चीथे का ज्वर आता, वह उनके नाखुनों पर दालान में उगे हुए थोहर का दूध लगाती और ताबीज बना कर देती। चंबल के रोगियों का मंत्र भी उसके पास था। पहले वह मंत्र पढ़ती और फिर चंबल पर थूकती, अन्य भाड़-फूँक वाले तो केवल मंत्र ही पढ़ा करते। काली खांसी के लिए अजवाइन पीस कर देती, यदि पीठ में बोभा इत्यादि के कारण दर्द उठने लगता तो पीठ पर लात मारती। बच्चों का टेंडुआ और बड़ों के गले यदि खराब हो जाते तो मालिश करती। गर्म-गर्म चूरी कूट कर खाने के लिए कहती। नज़र लग जाती, तो उसे उतारने के लिए उसके पास कई ढंग थे। आग में लाल मिर्चें भोंक कर भट पहचान लेती कि नज़र लगी है या नहीं। प्रेम के रोगी

उसके पास दूसरे रोगियों से अधिक आते, वह सबको भरमाए रहती। कँवारी लड़कियाँ साँझ-सबेरे उसके घर आती-जाती रहतीं; लड़कों के साथ यह गली में और नुक्कड़ों पर खुसर-फुसर करती रहती। कँवारियों को विवाह के वचन देती, जो विवाहिता होतीं उन्हें बेटों के वचन देती, विरह को मिलन में बदलने की जिम्मेदारी लेती और मिलन को विरह में बदलती। कहीं कुछ बनाती कहीं कुछ बिगाड़ती।

घर के एक कोने में उसने दीवार पर कुछ रेखाएँ खींची हुई थीं, कुछ चित्र बनाए हुए थे, जिनके आगे आठों पहर घी का दीपक जलता रहता था। उसी कोने में कहीं कुछ नाखून कटे हुए पड़े थे, कहीं कुछ बालों की लटें थीं, कहीं रंग-विरंगे चीथड़े थे और कहीं कुछ मोम पड़ी थी, कहीं सुइयों का ढेर था, काले धागे की गोलियाँ थीं, सीपियाँ थीं—सीपियों में कहीं नमक था, कहीं लाल मिर्चें थीं, कई प्रकार की कौड़ियाँ थी, सात टके थे और न जाने क्या-क्या अल्लम-गल्लम पड़ा था।

उसी कोने में एक शंख पड़ा था जिसे कभी-कभी वह फूँकती। एक ढोलक थी, जिसे वह कई बार द्वार बन्द करके पीटती हुई बेसुध होकर गिर पड़ती। उस समय वह कहा करती कि उसमें देवी उतरती है। जिसे कुछ प्रश्न पूँछने होते, उनके उत्तरों का उसे आप-ही-आप पता लग जाता।

एक बार गर्मियों के दिनों में वर्षा न हुई। फसल सूखती जा रही थी, ढोर-डंगर मरने लगे। प्रत्येक गाँव में कई दुर्घटनाएँ होने लगीं। ढेरो ने ढोलक बजाई, शँख फूँका, चिमटे बजाए और जब देवी उसमें उतरी तो उसने लोगों को अपनी बाँह दिखाई। कहने लगी कि बादलों को घसीट-घसीट कर उसकी यह दुर्शशा हुई है, किन्तु बादल आते ही नहीं, वह क्या करे?

अभी मुँह अँधेरा ही था कि एक दिन नन्वाब जमींदार का लड़का

ढेरो के दालान में दाखिल हुआ। ढेरो ने उसे देखा तो उसके होश गुम हो गए। नव्वाब उसे सलाम करके धीरे से भीतर चला आया और न जाने कितनी देर तक वे बड़े कमरे में बैठे हुए खुसर-फुसर करते रहे। कोई बात थी जो वह ढेरो से मनवा रहा था, किन्तु ढेरो मान नहीं रही थी। नव्वाब ने उसे लालच भी दिया, उसे डराया भी, धमकाया भी, किन्तु उसने एक ही 'नहीं' अपनाए रखी। ढेरो कह रही थी—“हाय, मैं उसके साथ खेल कर बड़ी हुई। यह अत्याचार मुझसे नहीं हो सकेगा।”

आखिर नव्वाब ने पैतरा बदला, और यह बात ढेरो के लिए कठिन नहीं थी—“पराई बेटी है, स्त्रियाँ क्या और कम हैं उसके लिए, यदि उसकी इच्छा हो तो……”

ढेरो इस बात के लिए सहमत हो गई। उसने उसे दूसरे दिन आने के लिए कहा और अपने काम में व्यस्त हो गई।

ढेरो दिन भर सोचती रही कि अब उसके सम्बन्ध सबसे बड़े घर से होते जा रहे हैं। नव्वाब ने उससे कहा था कि वह उसे मुँह माँगी मुराद देगा, उसकी हर बात पूरी कर देगा। ढेरो ने सोचा कि सारी आयु चूल्हा फूँकती रही, अन्तिम समय अच्छा कट जायगा। सायंकाल उसने अपने कुत्ते मोती को कानों से पकड़ लिया। उसके मुँह के पास मुँह ले जाकर उसकी आँखों-में-आँखें डालकर उसे समझाया कि वह क्या करने वाली थी—“रजवाड़ों को मेरी जरूरत पड़ गई है, तुझे मेरा कुछ पता भी है, मोती?” आँखें फाड़-फाड़ कर उसने—दानवी-ढेरो ने कहा—“कल की रात—कल की रात सब कुछ समाप्त, समझा……”

दूसरे दिन सवेरे नव्वाब पहुँच गया। ढेरो ने उसे नहलाया, स्वयं नहाई। नव्वाब अपने और उसके लिए नये वस्त्र लाया था। दोनों ने वस्त्र बदले। फिर उसने उसे एक पीढ़े पर बिठा दिया, जहाँ दीवार पर रेखाएँ खिंची हुई थीं, चित्र बने हुए थे, जहाँ आठों पहर घी का दीया जलता रहता था।

ढेरो कितनी देर आँखें बन्द करके कुछ पढ़ती रही। नव्वाब सुनता रहा, सुनता रहा। आखिर उसने कागज के चार टुकड़े लिये, प्रत्येक पर कुछ रेखाएँ खींची, उनमें से प्रत्येक पर चित्रांकन किया और फिर उनमें बबूल के कांटें, सुइयाँ, पिसा हुआ काँच और मिर्चें डालीं। फिर पुड़ियाँ बनाईं। ये पुड़ियाँ नव्वाब ने अपने बैरी के पलंग के चारों पायों तले रखनी थी। “ज्यों-ज्यों पुड़ियों पर बोझ पड़ेगा” ढेरो ने बताया, “त्यों-त्यों उसके सोने में कांटे चुभेंगे, मिर्चें लगेंगी, सुइयाँ और काँच के टुकड़े उसकी छाती को छलनी कर देंगे। उसके हृदय में टीसें उठेंगी, पीड़ा होगी, और वह सिसक-सिसक कर तड़प-तड़प कर प्राण दे देगी।”

तीन दिनों के बाद नव्वाब फिर आया। उसने कहा कि वह पलंग पर आकर बैठी, बैठते ही उसके दिल में टीस उठी और वह लेट गई, जैसे वह लेटी थी वैसी-की-वैसी पड़ी रही। जैसे उसका अन्तर बींध दिया गया हो—इलाके का कोई हकीम, कोई भाड़ फूँक वाला, कोई जादूटोना करने वाला ऐसा नहीं जो उसके पति ने इकट्ठा न कर लिया हो। आखिर ‘पीलो’ से एक फकीर आया, बीमार पर एक नजर डाल कर पलंग के पाए उठा कर देखा, और पुड़ियाँ को बाहर निकाल कर सबको चकित कर दिया। नव्वाब ने बताया कि वह स्वयं वहीं था—पुड़ियों के निकालने की देर थी कि बीमार को सब सुख मिल गया और उसके पेट के सारे दर्द जाते रहे।

ढेरो ने क्रोध में अपने ऊपर के दाँतों को अपने सूखे हुए ओठों पर जोर से दबाया, उसकी आँखें और अधिक जोर से खुल गईं। उसका मुँह भाग से भर गया, राल टपकने लगी, फिर वह नव्वाब को पकड़ कर दीवार के कोने में ले गई।

नव्वाब पटड़े पर बैठ गया। अत्यन्त क्रोध में आकर ढेरो ने ऊँचे-स्वरों में कुछ पढ़ना आरम्भ किया, पढ़ती गई, पढ़ती गई, साँभ हुई फिर रात हो गई। पढ़ते-पढ़ते उसका सिर और उसका मुँह लाल हो गया।

आखिर उसने आँखें खोलीं और नव्वाब की ओर देख के उसके ओठों पर एक भयानक दानवी हँसी दौड़ गई। उसने चिपड़े लिये, रुई ली और गुड़िया बना ली। फिर उसने मोम से उस पर एक स्त्री की सूरत बनाई, फिर उस गुड़िया को उसने एक स्लेट पर बिठा दिया। और फिर ढेरो ने कुछ पढ़ना आरम्भ कर दिया। पढ़ते-पढ़ते आधी रात हो गई, अमावस की काली-अँधेरी रात ! केवल घी का दीपक जल रहा था। नव्वाब ने देखा कि ढेरो ने घूर कर स्लेट पर पड़ी हुई गुड़िया की ओर दृष्टि की। गुड़िया जैसे तड़प उठी। वह अपने स्थान से हिल गई।

ढेरो ने चुड़ैलों जैसा एक भयानक नारा लगाया। उसके माथे, उसके हाथों पर पसीना आ गया। क्रोशिये की नोंक को उसने दीये की जोत में गर्माया, और जब वह लाल हो गई तो उसने उसे गुड़िया की छाती में घोंप दिया—“अब बोल, तूने मेरा जादू उतरवा लिया था ?”

दोनों दांतों को अपने सूखे हुए निचले ओठों पर दबाती और जबड़े भींच-भींच कर नोंक गुड़िया के सीने में घोंपती जाती। सुई घोंप-घोंप कर ढेरो ने खिलौने की छाती छलनी-छलनी कर दी। फिर निढाल होकर जैसे वह गिर पड़ी। ढेरो ने फिर एक दानवी-अट्टहास किया और नव्वाब के माथे को उचक कर चूम लिया। “जा बेटा ! तेरा काम हो गया !” उसने कहा और मोड़ा उठा कर आँधा कर दिया।

नव्वाब मुँह-अँधेरे घर पहुँचा, वहाँ पहले ही कुहराम मचा हुआ था, नव्वाब की सौतेली माँ मर चुकी थी।

नव्वाब की बीवी ने उसे बताया कि किस प्रकार तड़प-तड़प कर उसने जान दी थी, जैसे कोई उसके सीने में सुइयाँ घोंप रहा हो, बेगम चीख-चीख उठती, सुइयाँ चुभो-चुभो कर जैसे किसी ने उसके सीने को नोच-नोच लिया हो। वह रात को अच्छी-भली सोई थी। सोते-सोते बस चीखने लगी और सीने को पकड़-पकड़ कर तड़पती। और इससे पहले कि बाहर से आकर कोई उसकी खबर लेता, बेचारी ठंडी हो चुकी थी।

नव्वाब हक्का-बक्का रह गया।

सुहाँ !

६

पोठोहार की धरती पर पहुँच कर सुहाँ की गति धीमी पड़ जाती है, फँल-फँल कर बहता है, रुक-रुक चलता है, मुड़-मुड़ कर भाँकता है । कभी जैसे गहराइयों में जाता हो, कभी कुओं में छिपता है, कभी चट्टि-यल मैदानों में लंबी तान के लेट जाता ।

सुहाँ स्वतंत्र और बेपरवा दरिया है । कहीं-कहीं इसका पाट मीलभर चौड़ा है । इसकी इच्छा होती है तो उधर बहता है, इसकी इच्छा होती है तो इधर बहता है । यदि जी चाहे तो सारी जगह समेट लेता है ।

सुहाँ के सीने पर कभी किसी पोठोहारी ने नाव नहीं चलाई । ये लोग पानी के साथ अधिक नहीं उलझते । सुहाँ तो पोठोहार में एक मेहमान की तरह आता है और मेहमान की तरह वैसे-का-वैसा चला जाता है । कहीं-कहीं कोई जाट चर्खी से दो घूँट पानी निकाल ले तो दूसरी बात है, वरना सुहाँ में से कोई नहर नहीं निकाली गई, इस पर कोई बाँध नहीं बाँधा गया ।

सुहाँ पर लोगों को अभी तक्र पुल बनाने की आवश्यकता अनुभव नहीं हुई । दरिया पर कुल मिलाकर दो पुल हैं, एक जरनैली सड़क का, दूसरा रेल का । पोठोहारियों के जीवन में सुहाँ इतना रच गया है कि वे उसे अपने जीवन का आवश्यक अंग समझते हैं, उसकी रग-रग पहचानते हैं । जब यह खुशी में आता है तो अपने साथ लोगों को बहा कर ले जाता है । जब यह क्रोधित होता है तो किसी की नहीं सुनता, और कभी यह रुक कर लाड़ भी करने लगता है । सुहाँ के द्वारा खाजा

खिज़र को मनातें भेजी जाती है, बकरे और भेड़ें मार कर लोग इसमें बहा देते हैं। इसमें सेंदूर, चावल और पैसे फेंके जाते हैं। इसके तट पर बैठ कर स्त्रियाँ अपने ऊपर से छाया उतारती हैं। छोटी-छोटी भाड़ियों में अपने जादू-टोने के चिह्न चीथड़े बाँधकर छोड़ जाती हैं। जब कभी वर्षा न हो, और तेज गर्मी पड़नी आरम्भ हो जाय, तो लोग ढोलक और चिमटे लेकर गाते-गाते सुहाँ के तट पर पहुँचते हैं। वहाँ एक कुआँ खोदा जाता है और घुँघनियाँ^१ बाँटी जाती हैं जिनमें शक्कर पड़ी होती है। फिर सब नहाते हैं और जवान लड़के एक-दूसरे को कपड़ों समेत दरिया में फेंकते हैं और खेलते हैं। इस प्रकार आँधी के साथ वर्षा आ जाती है। किसी पोठोहारी के जीवन में ये घुँघनियाँ कभी व्यर्थ नहीं गईं।

श्रावण मास में सुहाँ चढ़ता है, तो उस पार जाना काफी दिनों तक बन्द रहता है। जब पानी उतरना है, लोग सलवारें और लहंगे उठाए उसे पार करना फिर आरम्भ कर देते हैं। कई बार पानी अचानक बढ़ जाता है और कई बार पथिक धोखा खा जाते हैं। कई ढोर-डंगर मर जाते हैं, कई बार तो अच्छे-अच्छे तैराक और इसके किनारे पर कूदने वाले चरवाहे भी फँस जाते हैं।

कहते हैं—एक चरवाही एक बार सुहाँ के तट पर अपने ढोर-डंगर चरा रही थी कि बाढ़ आ गई। सायँकाल कहीं बाढ़ का जोर कम हुआ। मुसाफिरों का एक परिवार जो सवेरे से रुका पड़ा था, बहुत तँग आ गया। किन्तु उनमें इतना साहस नहीं था कि पार जा सकें। उनके स्त्रियाँ थीं, बच्चे थे, उनके साथ एक नव-विवाहित दम्पति था। चरवाही ने बड़ा समझाया, स्वयं पानी में जाकर उन्हें दिखाया, मुसाफिरों का फिर भी साहस न हुआ। उसने उनसे यह भी कहा कि पानी यूँही कभी चढ़ जाता है और कभी उतर जाता है, किन्तु वे बिल्कुल न माने। शाम होगई

थी — चरवाही के सारे ढोर-डंगर घर पहुँच गए, किंतु उससे यह नहीं हो सकता था कि वह व्यक्ति में कैसे एक परिवार को छोड़ कर स्वयं चली जाय। आखिर उसने लहंगा उठाया, पार जाकर उन्हें गहराई का अनुमान बताया, कहीं पानी घुटनों तक था और कहीं कमर तक; मुसाफिर हैरान थे, कोई निर्णय न कर पाते। ज्यों-ज्यों समय गुजरता लड़की व्यग्र होती जाती। जब यात्रियों ने उसकी कोई बात न मानी, चरवाही एक-एक का हाथ पकड़ कर पार पहुँचाने के लिए तैयार हो गई। छोटे-छोटे बच्चों को वह साथ ले गई। यह देखने के लिए कि उनकी कोई वस्तु रह तो नहीं गई, चरवाही अकेली फिर आई, जरा-जरा अधेरा हो चुका था। थकी-हारी चरवाही अपनी थकावट को अपनी चमेली के समान खिलती हुई हँसी में छिपाने का प्रयत्न कर रही थी। पानी घुटनों से ऊपर कमर तक चढ़ता गया और फिर कम होता गया। सहसा एक भँवर वाली जगह पर पहुँच कर उन चरवाही को जो, तेरह फेरे लगा चुकी थी, चक्कर-सा आया। वह फिसली और न जाने कहाँ खो गई। सामने खड़े हुए परिवार ने कुहराम मचा दिया। एक बार आँखों से ओझल हो कर चरवाही दोबारा ऊपर न आई। गाँव से बड़े-बड़े तैराक आए। वे ढूँढ़-ढूँढ़ कर थक गए। उन्होंने सुहाँ का कोना-कोना छान मारा। उन्हें कहीं भी शबनमाँ न मिली। दूसरे दिन लगभग दो मील दूर सुहाँ के तट पर एक लड़की की लाश पड़ी हुई मिली। जैसे चुपके से वहाँ जाकर लेट गई हो। उसके चेहरे पर नाचती हुई हँसी वैसी-की-वैसी खिली हुई थी। मुसाफिरों और गाँव वालों ने मिलकर उसकी कब्र सुहाँ के तट पर बना दी। “नकड़ाली” के पास आज तक जो यात्री उस ओर जाता है वह एक पत्थर उस कब्र पर अवश्य रख जाता है। उसे ‘बीबी’ पाकदामन की कब्र कहते हैं—शबनमाँ को दफना कर यात्रियों के परिवार ने जिस प्रकार ईश्वर से प्रार्थना की, उसे देखते हुए सुहाँ कांप उठा। कब्र में जब मिट्टी डाली गई तो मंद-मंद फुहार पड़ने लगी। पुरवाई के शीतल भोंके आने लगे।

सुहाँ से निकलने वाले पथिक आज भी कहते हैं कि जब कभी बाढ़ आई होती है और भयानक वेला हो जाती है, तो उस समय कोई चरवाही आती है और सबको एक-एक करके पार ले जाती है। जहाँ-जहाँ वह पाँव रखती है, वहाँ-वहाँ पानी उतर-सा जाता है, चरवाही सबको किनारे से लगाकर स्वयं कहीं अन्तर्ध्यान हो जाती है। वही चरवाही—जिसकी नाक के पास एक तिल है, जिसकी ठोड़ी के पास एक और तिल है।

सुहाँ मरी की पहाड़ियों में से निकलता है। पहाड़ियों के तंग दहाने में से सिकुड़ा हुआ, सँभला हुआ और सिमटा हुआ, पथरीले और रेतीले मैदानों में से होता हुआ पोठोहार के मैदान में आकर सुस्ताने लगता है। यदि वह कभी ऊपर से अधिक तेजी से आए तो बड़े गर्व के साथ गुजर जाता है। अपनी गति सँभालने का उसे अवकाश नहीं होता, इस प्रकार बहता हुआ अटक में जा मिलता है।

सुहाँ की गहराइयों और थोड़े पानी में कही-कहीं मछलियाँ बहुत होती हैं, किन्तु लोग मछलियों को व्यापार के लिए नहीं पकड़ सकते। चोरी-छिपे कभी-कभी चरवाहे एक-दो मछलियाँ पगड़ी फँलाकर पकड़ लें तो और बात है। मरी की पहाड़ियों से निकलते ही सुहाँ की सारी मछलियाँ जमींदार के अधिकार में आ जाती थीं। कही-कहीं उसने मछलियों के जखीरे भी इकट्ठा कर रखे थे। जब कभी जमींदार का दिल चाहता तो वह शिकार खेलने आ जाता।

इलाके भर में उस दिन चिड़िया तक पँख न मार सकती, कोई जाट अपनी फसल पँछियों से बचाने के लिए “हो-हो हो-हो” न कर सकता। पोठोहारनों के गीतों के बोल उनके कण्ठों में ही दब कर रह जाते। ढोर-डंगर तेज न दौड़ पाते। सहमे-सहमे कुत्ते दुबक कर बैठे रहते। हवा में सरकार के बाज और शिकरे उड़ते रहते। घनी भाड़ियों में सरकार के घोड़े, खाइयों और खँदकों में सरकार के बिल्ली-कुत्ते और शिकारी-कुत्ते चक्कर काटते और पानी में मछली का शिकार हो रहा होता। यदि बहुत-सी मछलियाँ फँस जातीं, तो जमींदार हँसता

खेलता चला जाता और यदि मछलियाँ हाथ न लगतीं तो गाँववालों पर विपत्ति टूट पड़ती ।

जुम्माँ और रावेल अक्सर जमींदार के साथ शिकार के लिए आते । कभी-कभी शेर भी साथ हो लेता । जहाने को जान-बूझकर पीछे छोड़ जाते । एक बार बंसी में फँसी हुई मछली को तड़पता देखकर उसके हाथ से बंसी छुट गई थी, और एक बार उन्होंने हिरणी का शिकार किया, जिसके पेट में बच्चा था । गोली खाकर पहले जहाने की आँखों के सामने हिरणी ने दम तोड़ा और फिर उसके पेट का बच्चा ठँडा हुआ । जहाना उसे देख-देख के रोता जाता और उसकी आँखों से थिरते हुए आँसू धमने में न आते ।

शबनमा की घटना के बाद जब जमींदार एक बार शिकार के लिए आया, तो लोगों की पंचायत उसके पास आई । अभी उनके घाव हरे थे— सरकार से कहा गया कि दरिया पर एक पुल बना दिया जाय, ताकि सारे इलाके को आर-पार जाने की सुविधा हो सके । दूसरी बात जमींदार से यह कही गई कि जहाँ से दरिया पोठो-हार में दाखल होता है, वहाँ से नहरें निकाल ली जाँय । इस प्रकार एक तो दरिया का पानी कम हो जायगा, बाढ़ का भय मिट जायगा, और नहरों से खेतों को लाभ भी बहुत होगा ।

दोनों बातें उचित थीं । जमींदार को ये बातें पसन्द आईं किन्तु जुम्मे ने बीच में टाँग अड़ा दी । उसने जमींदार को अकेले में ले जाकर कहा—यह अवश्य किसी बाहरी आदमी की शरारत है । कहीं ऐसा न हो कि उन्हें आकर कोई उकसाता रहा हो, ताकि आपको इन बातों के लिए तैयार किया जाय । और यदि इसी प्रकार इन लोगों की माँगें पूरी की गईं तो कठिनाई का सामना करना होगा ।

जमींदार ने पंचायत के लोगों को बुरी तरह फटकारा और शेर को संकेत किया कि वह उनको जैसे बन पड़े सजा दे । जमींदार के खुशामदी उसके संकेत भली-भाँति समझते थे ।

सुहाँ उसी प्रकार निर्बाध बहता रहा। लोग उसके किनारे पर खरबूजे, ककड़ियाँ, खीरे बोते, और भी बहुत-सी सब्जियों की खेती करते, दरिया की इच्छा होती तो उन्हें पकने देता, वरना उन्हें पका हुआ होने पर भी उजाड़ कर चलता बनता। कई बार फ़सलों की देख-भाल करने वाले जाटों के परिवारों के परिवार बहा कर साथ ले जाता। सत्तर-अस्सी मील दूर मरी में वर्षा होती, किंतु तबाही सुहाँ यहाँ आकर फैला देता। कई लोगों ने पानी निकालने के लिए चखियाँ बनाई हुई थी, जो आए दिन नई बनवानी पड़तीं, अनाज-से भरी हुई बोरियों-की-बोरियाँ बह जाती।

लोग मन्तें मान-मान कर, प्रार्थनाएँ कर-कर के, चढ़ावे चढ़ा-चढ़ा कर बाढ़ के दिन निकाल लेते, किंतु प्रतिवर्ष नए सिरे से यह विपत्ति टूट पड़ती। जिन दिनों सुहाँ चढ़ा हुआ होता, लोगों को अक्सर ऊपर से बहती हुई आने वाली लाशों को संभालना पड़ता। अपनी लाशों को ढूँढ़ने के लिए आगे जाना पड़ता।

एक बार श्रावण-मास में जहाना ज़मींदार के साथ शिकार खेलने के लिए आया। शिकार खेलते-खेलते उसका घोड़ा अकेला कहीं निकल गया। एक ऊँचे टीले पर से जहाने ने नीचे देखा कि सुहाँ के किनारे पर एक लड़की लेटी हुई है, जहाने ने घोड़े को वहीं छोड़ दिया। धीरे-धीरे बड़ी कठिनता से नीचे आया। लड़की घास की शय्या पर वैसी-की-वैसी लेटी हुई थी। एक निहायत जवान और सुंदर पोठोहारन ! जहाना दौड़ता-दौड़ता सहमा हुआ आगे बढ़ा। क्या देखता है कि वह एक लाश थी। चौंक कर पीछे हट गया। पसीने में नहाया हुआ दौड़ता-दौड़ता टीले पर चढ़ता गया, और ऊपर पहुँच कर उसने साँस ली। जब उसके साँस ठिकाने आये तो उसने सोचा कि कहीं वह लड़की सो न रही हो। उसने एक बार फिर टीले से नीचे देखा। लड़की वैसी की वैसी उसी अदा से लेटी हुई थी। जहाना घोड़े को बाँध कर फिर नीचे उतरा। उसने कई वार काटे। कई बार फिसला और कठिनता से बचा। थका--हारा

जहाना जब नीचे पहुँचा तो उसने देखा कि किनारे पर कोई लड़की नहीं है ! घास की शय्या सूनी है—इस सोच पर कि वह दरिया की फँसी हुई एक लाश थी, उसने अपने-प्रापको बड़ा धिक्कारा ! जहाना दुःख से इधर-उधर भाँकने लगा—इतनी जल्दी लड़की जा कहाँ सकती थी । सहसा उसकी दृष्टि दरिया की लहरों पर पड़ी । बिल्कुल वही चितकबरी चुन्नरिया गले में लिपटी हुई पानी के ऊपर आती और फिर लहरों के नीचे समा जाती ।

जहाना बेसुध होकर गिर पड़ा ।

दूध के दाँत !

७

तरुतपड़ी के गाँव में सबसे बड़ी हवेली जमींदार की थी। हवेली के एक ओर अस्तबल थे और दूसरी ओर बाग ! जमींदार के पश्चान् उसके कर्मचारियों की हवेलियाँ भी काफ़ी खुली-फैलीं थी, किंतु अक्सर लोग भूखे थे, बिलखते रहते, चीथड़े पहनते थे, आधे नंगे और आधे ढँके थे, अत्याचारों से भयभीत थे। यह पैसे हुए, दुबके हुए, मरे हुए लोगों की बस्ती थी। यह लोग जी नहीं रहे थे बल्कि जैसे-तैसे जीवन के दिन पूरे कर रहे थे। लोगों के लिए जीवन मुसीबत बन गया था और वे भंग-चरस आदि के सस्ते नशों के शिकार थे। स्त्रियाँ हर साल बच्चे जनतीं रहतीं !

पुरुषों की अपनी पत्नियाँ भी थीं। दूसरों की माताओं, बहनों और पत्नियों पर भी पशुओं की भाँति मुँह मारते रहते। स्त्रियाँ जिन बातों से डरतीं और काँपती थी, वही बातें बार-बार उनके साथ हो जाया करती थीं। अपने चलन पर, अपनी अभिलाषा पर, अपने स्वप्न पर किसी की पकड़ दृढ़ नहीं थी। पुरुष और स्त्रियाँ सोचते कुछ और, उनसे हो जाता कुछ और, अच्छे रूपरंग की कोई शकल ढँकी-छिपी न रह सकती। ऐसा कोई स्थान नहीं था जहाँ कोई छिप सकता; कोई स्थान ऐसा नहीं था जहाँ कोई अपने को सुरक्षित अनुभव कर सकता। सात पदों में छिपे हुए लोग नंगे जान पड़ते। किसी की कोई बात ऐसी नहीं थी जो उसका पड़ोसी अथवा उसके पड़ोसी-का-पड़ोसी या उसका जमींदार नहीं जानता था। लोग टोलियों में बैठ कर पुराने समय की

बातें किया करते । पोठोहार में आर्य-जाति सर्वप्रथम आबाद हुई, भारत के वेदादि धर्मग्रंथ यहीं लिखे गए, यहाँ तक्षशिला का भारत भर में सबसे प्रसिद्ध विद्यालय स्थापित हुआ ।

चट्टानों में से पत्थर निकाल-निकाल कर शिल्पियों ने वस्तु-कला को इस प्रदेश में उन्नत किया । पत्थरों की शिलाएँ और उनकी स्लेटें बना कर उन पर पुस्तकें लिखी गईं । पोठोहारी-भाषा में “अच्छना” “गच्छना” जैसे शब्द सीधे संस्कृत-भाषा के बच्चे-खुचे मालूम होते हैं; किंतु ये सब बातें व्यर्थ थीं जिन पर किसी को विश्वास नहीं होता था, उनके बड़ों ने उन्हें ये बातें बताई थी । आपस में बैठकर ये लोग भी कभी-कभी उन बातों को दुहरा लिया करते । किसी की दुर्बलता की यदि कोई चर्चा छेड़ता तो हँस कर टाल दिया करते, सुनी-अनसुनी कर देते । ऐसी दुर्बलताएँ तो प्रत्येक में थीं, सारे-का-सारा प्रदेश और सारे-का-सारा गाँव छाज और छलनी के समान था; कोई किसी को ताना नहीं दे सकता था । किसी के चोट लगती, चोट लगने की आवाज होती, चोट सहने की तिलमिलाहट होती, तो फिर चारों ओर स्तब्धता फैल जाती । कोई उसकी छानबीन न करता, कोई पूछताछ की दोबारा हिम्मत न करता । अपनी पत्नी का सतीत्व लुटते देखते तो पुरुष आँख बंद कर लेते, अपने पुरुषों के अपमान पर स्त्रियाँ सँतोष के घूँट पी जाती ।

प्रतिवर्ष बच्चे टिड्डी दल के समान जन्म लेते और उनमें से प्रतिवर्ष आधे मर जाते । आखिर माताओं के इतना दूध कहाँ से आता ? घर; घर, गली-गली, गाँव-गाँव भूख, गँदगी और रोग फैले हुए थे ।

एक जमींदार था, जमींदार के चार गुंडे कर्मचारी थे—शेरा जहाना, जुम्मा और रावेल ! और उनके पश्चात् जमींदार का बेटा नव्वाब था; जवान, जैसे साँड़ किसी ने छोड़ रखा हो ! गली-गली में मूँघता फिरता, चूहों की भाँति कुतरता और काटता ।

मस्जिदों, गुरुद्वारों और मंदिरों में सन्नाटा छाया रहता, उनमें

कोई भी न जाता । जैसे ईश्वर-स्मरण किसी को न आता हो, अल्ला को उन लोगों ने इस प्रकार भुला रखा था, कि वह भी अपनी प्रजा को भूल चुका था ।

“तरुतपड़ी”—वैसे तो नाम का गाँव था किंतु शहर जितना बड़ा एक कस्बा था । जमींदार और मालदारों की हवेलियाँ छोड़ कर सब-के-सब घरों के लिए एक ही कुआँ था जिस पर सदा भीड़ लगी रहती । सर्दियों में रो-पीट कर यह कुआँ काम चला देता, किंतु गर्मियों में सदैव इसकी कमर टूट जाती और दम तोड़ देता । लोग झुंडों-के-झुंड चश्मों की ओर जाते । लगभग डेढ़ मील दूर एक और कुआँ था, वहाँ से पानी लाते । लोग प्यासे बैठे रहते, तेल ऐसा गर्म पाती पीते, चश्मों का खौलता हुआ पानी पीते; लेकिन किसी की समझ में यह बात न आती कि एक और कुआँ भी खोदा जा सकता है ।

कड़कती चिलचिलाती गर्मी में भागभरी का लड़का जो सात वर्ष का हो चुका था, एक दोपहर को मर गया । उसे गर्दन-तोड़ बुखार हो गया था, पति-पत्नी ने कई जोड़-तोड़ किये, किंतु बच्चे के माथे पर जन्मजात त्रिशूल था । भागभरी जानती थी कि वह बच नहीं सकता, आखिर वह मर के रहा । भागभरी की आँखों से एक भी आँसू न टपका और जब उसे दफनाने लगे, भागभरी का पति कब्र पर चक्कर खाकर गिर पड़ा । अड़ोस-पड़ोस वालों ने उसे धैर्य दिया, अभी तो उसका एक और लड़का था !

“ओ मेरे शेर ऐसे बेटे !” बहादुर अपने लड़के के लिए विलाप कर रहा था और फूट-फूट कर रो रहा था । चिल्ला-चिल्ला कर उसका गला रुँध गया, उसने सिर के बाल नोच लिये, कभी-कभी अपने-आप उससे बातें करने लगता ।

“बहादुर ! अभी तो ईश्वर की दया से तेरा एक और लड़का भी है !” लोग उसे समझा रहे थे किंतु बहादुर को शांति न मिलती ।

“भागभरी, तू ही इसे समझा !” भागभरी की सहेलियाँ उसे आ-

आकर कहतीं ।

भागभरी दिल-ही-दिल में सोचती कि किस मुँह से वह उसे धैर्य बँधाए । वह उससे क्या कहे ? सोचते-सोचते इसका दिल बैठने लगा ।

एक दिन लोगों ने देखा कि बहादुर नाखूनों से अपने बच्चे की कब्र खोद रहा था—“उसने मुझे कब्र में से अभी आवाज दी है !” वह यह कहता और किसी की बात न सुनता । आखिर बड़े दिलासों और मित्रता के पश्चात् वह घर आया ।

गर्भी का ताव भागभरी के दूसरे बच्चे को भी लग गया । प्रतिदिन वह दुर्बल होता गया, दुर्बल होता गया । भागभरी का जी न चाहता कि वह बहादुर से उसके दवा-दारू के लिए कुछ कहे । गली में धरेक की छाया-तले अकेली बैठी बच्चे की देखभाल करती रहती । बच्चे को पेचिश थी, पानी के अतिरिक्त उसे कुछ और न पचता । भागभरी उसे दिनभर लिये बैठी रहती और ईश्वर के आगे हाथ फैलाए रहती । अब जब कि वह आ गया था, ईश्वर करे उसे मौत न आए ! वह था भी तो बहुत गोरा चिट्ठा ! मोटी-मोटी उसकी आखें थीं, भरा हुआ शरीर था । लोग भागभरी की छेड़ते—“अरी तू तो किसी का लड़का छीन लाई है !” और भागभरी के हृदय में एक खलबली-सी मची रहती । जो कोई भी उसके बच्चे को देखता वह उसकी बातों पर अवाक् रह जाता । बार-बार यही वह कहता कि वह कोई सूरमा अथवा सरदार बन कर रहेगा । माँ ये बातें सुनती तो उसे बच्चे से भय लगता । समय से पहले उसने बैठना सीखा, समय से पहले उसने खड़ा होना सीखा, समय से पहले उसने चलना आरंभ किया, समय से पहले वह बातें करने लग गया था, और अब सयानों के समान कुछ इस प्रकार मीन-मेख निकालता कि भागवरी काँप उठती । जब से बीमार पड़ा था, वह अपने पिता को बहुत याद करता और जब हठ करता तो भागभरी के आँसू न रुकते । “क्या करें उन्होंने काम पर भी तो जाना ठहरा करना पेट कैसे भरे ?”

एक दिन वह प्रातःकाल इस प्रकार का हठ कर रहा था कि

जमींदार घोड़े पर सवार उधर आ निकला। भागभरी उठ कर धरेक के पीछे छिप गई। घोड़ों और कुत्तों की आवाज सुन कर उसे अपना बच्चा तक भूल गया और जब वे दूर निकल गए तो भागभरी ने उसे कहानी सुनानी आरंभ कर दी—एक था राजा, और न जाने क्या-क्या कुछ.....

दूसरे दिन जहाने की पत्नी फज्जो भागभरी के घर आई। भागभरी हैरान थी कि यह किधर आ गई। कितनी देर तक फज्जो बैठी हुई बच्चे की दशा पूछती रही, बच्चे से तोतली-तोतली बातें करती रही और बच्चे की ओर से हर बात को तड़ाख-पड़ाख उत्तर पाकर हैरान रह जाती रही।

“अरी तेरा बच्चा किस पर है?” भागभरी से बार-बार पूछती।

और भागभरी कभी हँस पड़ती कभी कोई अन्य बात छेड़ देती।

अगले दिन बहादुर को ढूँढ़ता हुआ जहाना स्वयं आया। बहादुर घर में नहीं था। जाते समय वह बच्चे की हथेली पर पाँच रुपये रख गया और कह गया कि जब बहादुर घर पहुँचे तो वह उसकी हथेली की ओर आ जाय।

जहाने की पत्नी और जहाने के ऊपर-तले घर में आने से भागभरी के पैरों-तले से जमीन निकल गई। उसके बच्चे को अब आराम आ रहा था किन्तु अब वह दिनभर स्वयं चिंता में डूबी रहती। न कुछ खाती न कुछ पीती। बच्चे को चूम-चूम कर चाट-चाट कर उसका हृदय न भरता। जहाने ने बहादुर को जमींदार के बागीचे में नौकर हो जाने के लिए कहा। उसने उसे वहाँ रहने के लिए एक कोठी भी देने का लालच दिया। बहादुर स्वीकृति दे आया। भागभरी ने सुनते ही अस्वीकार कर दिया। बहादुर ने लाख तर्क लड़ाए किन्तु उसने एक न सुनी।

फिर जहाने ने तह किया कि जहाँ बहादुर नौकर था, वहाँ से उसे जवाब दिलवा दिया। और जहाँ भी बहादुर जाता उसे कोई काम न मिलता। एक दिन के लिए उसे यदि कोई रख भी लेता तो अगले दिन

निकाल दिया जाता । बहादुर तंग आ गया । पहले तो उसने अपनी पत्नी को कुछ न बताया । आखिर थक-हार कर घर बैठ गया ।

बेकार बहादुर धरेक के पेड़-तले से उठ कर बेरी-तले जा बैठता बेरी तले उसे घबराहट-सी अनुभव होती, वहाँ से उठ कर बड़े कमरे में जा लेटता । सारा दिन मेहनत-मजदूरी करने वाले के लिए यह बहुत बड़ा दण्ड था कि उससे काम छीन लिया जाय । उसके पट्टे ऐंठते, उसकी भुजाएँ जैसे उसे ललकारती, उसकी नस नस जैसे किसी वस्तु की कामना करती, किसी-न-किसी वस्तु को बनाने या बिगाड़ने के लिए व्यग्र रहतीं । बहादुर ने घर का छोटा-मोटा काम करना आरंभ कर दिया, किन्तु उसकी तसल्ली न होती । बैठे-बैठे उसे यूँही ध्यान-सा आ गया और उसने दालान में लगा हुआ पेड़ काट दिया और निरंतर दो दिनों तक उसकी जड़ें खोद कर निकालता रहा—फिर बेकार हो गया । अकेला बैठा बहादुर न ज्ञाने क्या क्या कुछ सोचता रहता । उस का बहुत जो चाहता कि कोई उसे थोड़ा-बहुत काम ही दे दे । मुँह अँधेरे उठता और अड़ोसियों-पड़ोसियों को काम पर जाते देखकर बहादुर कसमसाने लगता । अभी काफी सबेरा होता कि डोर-डंगरों के गले में पड़ी हुई घंटियाँ बजनी आरंभ हो जातीं और हल चलाने वाले खेतों की ओर चल पड़ते । मुहल्ला, मकान और दीवारें उसे काट खाने को दौड़ते ।

इतने दिन घर बैठे-बैठे बहादुर की पूँजी भी समाप्त होने लगी । उसने जो कुछ इकट्ठा कर रखा था धीरे-धीरे कम होने लगा । बहादुर अपनी पत्नी से कभी नाराज नहीं हुआ था । आजकल वह बात-बात पर उससे उलझ पड़ता । उसकी समझ में न आता कि भागभरी आखिर उसे जहाने के यहाँ नौकरी क्यों नहीं करने देती थी । वे बात-बात पर एक दूसरे को काट खाने को दौड़ते ।

बहादुर के घर कितने दिनों से एक समय कुछ पकता, दूसरे समय कुछ न पकता । और अब दोनों समय कुछ पकना बंद हो गया—पति-

पत्नी तो भूखे सो रहते किंतु बच्चे का पेट भरना तो आवश्यक था । भागभरी बच्चे को बिलखता हुआ न देख सकती । अड़ोसियों-पड़ोसियों और गली-मुहल्लों वालियों से भी वे माँग माँग कर तंग आ चुके थे । लोगों ने आखिर अपने हाथ खीच लिये ।

आज चौथा दिन था कि भागभरी और जहाने के मुँह में खील तक उड़ कर न गई थी । सबेरे से बच्चा हठ कर रहा था और रो-रो कर बुरा हाल कर चुका था । तंग आकर भागभरी ने उसे एक तमाचा भी जड़ दिया था । बच्चा चिल्ला रहा था कि जमींदार फिर उधर से निकला । उसने उनके दालान की ओर एक दृष्टि फेंकी और बहादुर को सकेत से बुला कर अपने साथ ले गया ।

गाँव के बाहर एक पुरानी हवेली थी । मरम्मतें हो रही थीं । जमींदार ने बहादुर को वहाँ काम पर लगा दिया । शाम को जब वह घर लौटा तो उसने भागभरी को उस बारे में कुछ न बताया । भागभरी ने उससे कुछ पूछा ।

भागभरी ने अपने बच्चे का अभी तक कोई नाम नहीं रखा था । सब उसे काका काका कह कर पुकारा करते । एक दिन काके ने भागभरी से पूछा कि बहादुर किस काम पर जाया करता था ।

“इमारतें बनाता है-हवेलियाँ बनाता है !” उसकी माँ ने उत्तर दिया । काका चुप हो गया, सोचने लगा ।

“तू कौन-सा काम करेगा बेटा ?” भागभरी ने ममता-भरे स्वर उससे पूछा

“माँ...मैं उसकी हवेलियाँ गिराया करूँगा !” काके ने मुँह-तोड़ उत्तर दिया ।

भुरा !

८

मुहाँ की दसि दक्षिण में भूतों का जंगल था और बाईं ओर एक 'भुरे' का बीहड़ था । मीलों तक आदमी और आबादी के चिह्न दिखाई नहीं देते थे । ग्रीष्म-काल में इस जंगल के चट्टयल-मैदान पर चिलचिलाती धूप पड़ती थी । शीत-काल में मणाले की शीतल हवाएँ नसों में रुविर जमा देती थी ।

जंगल में खाइयाँ थी, खंदकें थी, टीले थे, गार थे, और उनके बीच में नदी बहती थी, जिस पर मुर्गाबियाँ पक्षियाँ बाँध कर मँडगाती और फिर इस जंगल में विलीन हो जातीं । नदी 'भुरे' से लगभग आध फर्लांग दूर गहराई में बहती थी, और यह सारी-की-सारी ढलवान कंटिले लबे पत्तो वाली भाड़ियों से अटी रहती । नदी के किनारों पर बेजों के समान झुकी-झुकी शाखाओं वाले पौधे थे । उड़-उड़ कर जैसे नदी पर पानी पीते रहते । नदी का पानी नीरव और स्तब्ध यों जान पड़ता, जैसे उसे इस हरियावल में जड़ दिया गया हो ! जब कोई मेंढक बोलता या फिर कोई पत्ता टूट कर गिरता, तो वह उस पानी की सतह पर छोटी-छोटी लहरें पैदा करता । या फिर साँझ-सबरे जंगल के जानवर यहाँ पानी पीने आते, खरगोश किनारों पर बैठ कर अपने मुँह धोते, हिरण पानी में घुस कर एक-दूसरे के साथ अपने शरीर रगड़ते ! और उसी प्रकार लोमड़ियाँ, गीदड़ और भेड़िये भी किया करते । नदी के शीतल गोद में कछुए थे, उसमें मछलियाँ थीं । मछलियाँ न बहुत बड़ी होतीं थीं न बहुत छोटी । छोटी-सी नदी थी, इसलिए दम्पनि

डीलडौल की मछलियाँ इसमें होतीं । मछरे या उन्हें पकड़ ले जाते थे या बाढ़ के कारण वह बह जाया करती थीं । फूल जैसी हलकी मुर्गाबियाँ पानी की लहरों पर जैसे पवन के भोंकों से इधर-उधर फिसलती रहतीं । किनारों की भाड़ियों और खाइयों में छिपे हुए शिकारी अपनी बंदूक ताने बैठे रहते । बंदूक चलती तो बेहद शोर मचता, पंख फड़फड़ाते तथा सरिता जैसे काँप उठती । फिर भूरे रंग के पतले और लंबे कुत्ते दौड़ पड़ते और पानी में से शिकार इकट्ठा कर लाते । निरीह मुर्गाबियाँ वहाँ से उठतीं और कहीं दूसरी जगह जा बैठतीं ।

नदी-पार 'भुरे' का जंगल था । चप्पे-चप्पे पर पथरीली-धरती जैसे उचक-उचक कर भाँक रही होतीं । चारों ओर कंकर बिखरे रहते, टीलों पर से तेज-तेज गिरते हुए कंकरों की फिसलन शिकारियों को बहुत तंग करती । कई लोग उन पर से फिसल कर हाथ-पाँव तुड़बा लेते । कई बार शिकारी गुच्छमगुच्छा हो कर 'गेंद की तरह' लुढ़कते हुए भाड़ियों में जा अटकते ।

शिकार अक्सर खाइयों की ढलवानों में मिलता, नुकीली-कंटीली और घनी भाड़ियों में छिपा हुआ होता । तीतर, बटेर और खरगोश यहाँ से निकलते और हिरणों की टोलियाँ उछलती-कूदती बाहर आती और नौ-दो ग्यारह हो जातीं । नए-नए शिकारियों को बेहद कठिनाई का सामना करना पड़ता । कई बार तो जंगल के चतुर-जानवर बड़े-से-बड़े शिकारी को खूब नाच नचाते ।

जंगल में हर प्रकार के शिकार का अपना समय होता था । खर-गोश साँभ-सबरे निकलते । उस समय अभी भोर होने ही लगती । कई बार खरगोश यूँ सिर निकालते जैसे धरती में कोई चश्मा फूट पड़ा हो, या जैसे श्रावण की भीगी शाम को कीड़ों से आकाश अट जाता है । वे शिकारियों के कदमों में उछल-उछल पड़ते । कोई दाईं ओर, कोई बाईं ओर, कोई आगे और कोई पीछे—सामने की एक भाड़ी से दूसरी भाड़ी में जा रहे होते, नदी की ओर दौड़ रहे होते, किनारों पर चढ़

रहे होते, नीचे जा रहे होते, काले-भूरे और चितकबरे खरगोश ! बंदूक पकड़े हुए शिकारी बोखला-सा जाता, जंगल में खरगोश का शिकार वही लोग कर सकते जो छलाँगें मारती हुई वस्तु का लक्ष्य बाँध सकें । H83/D86C G.H.999

हिरण दोपहर को निकलते । हिरण और हिरणी तथा कई बार उनका परिवार उनके साथ होता । कई बार उनके साथ अड़ोसी-पड़ोसी भी होते; कई बार यों जान पड़ता कि हिरणों की सारी बिरादरी इकट्ठी होकर बाहर निकल आई है । उनके आगे उनका सरदार होता, उसके पीछे बाकी हिरण धीरे-धीरे चलते । कुछ समय के लिए कान खड़े करके संतोष कर लेते कि कहीं भय की आशंका तो नहीं है; फिर संतुष्ट होकर घूमने-फिरने लगते । बड़े-बड़े हिरण कई बार पेड़ों के तनों से अपने शरीर खुजलाते, उछल-उछल कर उन पेड़ों के पत्ते तोड़ते, और कई बार उनके तने पर अपनी पतली टाँगें रख कर टहनियों पर चढ़ने का व्यर्थ-प्रयास करते । जिनका पेट भरा होता वे खेल कर रहे होते, हिरणों की माताएँ कही बच्चों को खेलना-कूदना सिखा रही होतीं; ऐसे समय में शिकारी जितना समीप प्रतीक्षा में बैठा हुआ हो उसे उतना ही आराम रहता, किन्तु कई बार तो हिरण आदमी की गंध सूँघ लेते हैं । हिरण फिर उस ओर कदम नहीं रखते, जहाँ कोई छिप कर बैठा होता ।

मुर्गाबियाँ अक्सर साँझ की वेला में नदी पर आकर बैठती, पंक्तियों-की-पंक्तियाँ, झुण्डों-के-झुण्ड । जहाँ एक की इच्छा होती वही सब चक्कर काट कर पान, की सतह पर फूलों के समान बैठ जातीं, चोंच धोतीं, पंखों पर जल के छीटे डालती; किन्तु कई बार जल्दबाज़ शिकारी वेचारी मुर्गाबियों को इतना भी अवकाश न देते । मुर्गाबी बैठी भी मारी जा सकती है किन्तु उड़ती हुई अधिक काबू में आ सकती है, यदि किसी को ढंग आता हो ?

तीतरों और बटेरों के शिकार का एक और हँ, ढँग था । जहाँ

कहीं संदेह हो, जहाँ कहीं तीतर उड़ कर गया हो, पँख की जहाँ से आवाज़ आए, वहाँ सिखाए हुए कुत्ते को छोड़ दिया जाता, ताकि उस झाड़ी में गड़बड़ मचाकर शिकार को वहाँ से निकाले और इस प्रकार तीतरों और बटेगों को भी उड़ा-उड़ा मारा जाता ।

“सरकार, आपने तो कहा था कि वर्षा होगी !” रावेल ने माथे पर से पसीना पोंछते हुए ज़मींदार से कहा । रावेल एक हिरण के पीछे भागा था, किन्तु थक-हार कर लौट आया ।

“और आज तो तीसरा दिन है ?” ज़मींदार बबूल के सूखे पेड़ तले खड़ा था ।

रावेल के याद दिलाने पर ज़मींदार ने आकाश की ओर देखा और फिर दूर क्षितिज पर दृष्टि डाली ।

“मैं कोई झूठ नहीं बोला, मेंह पड़ेगा और जरूर पड़ेगा !” ज़मींदार ने दृढ़ता से कहा ।

लेकिन अभी तक रावेल को वर्षा की कोई सभावना दिखाई नहीं दे रही थी । धूप बैसी-की-बैसी थी, गर्मी बैसी-की-बैसी थी, हर घड़ी बाद पानी पीने की आवश्यकता होती, दौड़-दौड़ कर पेट दुखने लगता ।

बबूल के पेड़ तले खड़े ज़मींदार ने एक फास्ता भारी थी, जो अब उसके पैरों में पड़ी हुई थी । “फास्ताएँ तो सरकार आपके कदमों में खुद ही आकर गिर पड़ती हैं,” रावेल ने धीरे से कहा ।

दूर से शेर की सीटी की आवाज़ आई । यह सीटी उसने अगुलियों से जीभ उठाकर जोर से बजाई थी । ज़मींदार और रावेल ने उस ओर ताकना आरंभ कर दिया और फिर रावेल दौड़ कर उधर चला गया ।

कुछ समय यूँही बेकार खड़े रह कर ज़मींदार ने सामने पड़ी हुई फास्ता की ओर देखा । ज़मींदार सोचने लगा—यह भी फ़िसी की लड़की अथवा बहन होगी, फ़िसी बच्चे की माँ होगी । इसका बच्चा

शायद घर में चुगने के लिए इस की राह देख रहा होगा, इसके समय पर न आने से शोर मचा रहा होगा, चिल्ला रहा होगा और फिर उसे बहादुर की गली में से निकलते हुए एक बच्चे के रोने की आवाज की याद आ गई। उसे धरेक-तले चारपाई पर पड़ा हुआ एक गोरा-चिट्टा गोल-गोल मोटी-मोटी भूरी आंखों वाला! जमींदार की अपनी आंखें भी भूरी थीं, भूरी आंखें शेर की होती हैं, शेर जंगल का राजा होता है, जंगल में लेकिन कोई शेर नहीं था, एकाध भेड़िया शायद हो; और यदि मेरे यहाँ अकेले खड़े-खड़े कोई भेड़िया आ जाय, तो भरी हुई बन्दूक तो उसने पकड़ी हुई थी, किन्तु अकेली बन्दूक काफी नहीं थी। वह फास्ता मर चुकी थी; इन्सान का क्या है, साँस आया न आया; कोई फास्ता को बन्दूक से मार सकता है और किसी व्यक्ति को भेड़िया आकर दबोच लेता है। जुम्मा, जहाना, शेरा और रावेल आखिर कहाँ चले गये थे ? जुम्मा न हो तो कई काम रुक जाँय, जुम्मा बहुत अच्छा शिकारी था। जहाना तो शायद पिछले जहान में कोई ब्राह्मण था; एक बार एक घायल मैना को देख कर रोने लगा, जमींदार के किसी भी गाँव में शायद ही कोई ब्राह्मण हो। इस इलाके में यदि ब्राह्मण कभी थे तो बहुत थोड़े, सिक्ख उनसे कुछ अधिक थे, सिक्खों की दुकानें थीं। साहू-कारा भी करते थे। मुसलमान हल चलाते, खेती-बाड़ी करते और सब शौक जमींदार के थे; एक व्यक्ति का अधिकार ! उसके बाद उसकी लड़की इन गाँवों पर हुकूमत करेगी। नव्वाब को तो वह अपनी ओर से अलग कर चुका था। रेशमाँ शासन करेगी, किसी की पत्नी बनेगी, उसका पति उसे साथ नहीं ले जा सकेगा, रेशमाँ क्यों किसी की पत्नी बनेगी ? रेशमाँ के बच्चा होगा, फूल ऐसा मुस्कराता मोटी-मोटी आंखों वाला, भूरे रंग की आंखों वाला बच्चा पेड़-तले सो रहा था। उसके पास चारपाई पर उसकी माँ बैठी हुई थी जो घोड़े की टाप सुन कर पेड़ के पीछे छिप गई थी। बच्चा जब कभी रोता है तो माँ-बाप की याद

करता है ।

कबूतरों की एक पंक्ति पंख फड़फड़ाती बबूल के पेड़ के पास आ गई, जमींदार ने तत्काल बन्दूक तान कर दाग दी । कबूतर नीचे आ गिरे, और फिर जमींदार ने गले में पड़ी हुई सीटी बजाई । जहाँ कहीं शिकारी खाइयों में छिपे बैठे थे, वे सीटी की आवाज सुनकर अपना-अपना शिकार उठाते दौड़ते हुए आए ।

“आपकी वर्षा तो अभी तक नहीं हुई ?” रावेल ने जमींदार को फिर याद दिलाया ।

जमींदार ने फिर आकाश की ओर देखा—और फिर अधिक विश्वास के साथ कहा कि वर्षा होके रहेगी और इस बार उसने अपने अनुमान का प्रमाण भी दिया—सामने पहाड़ियों की ओर आँधी आई हुई थी, पंखी उड़-उड़ कर अपने बसेरों की ओर जा रहे थे, जमी तो उसने दो कबूतर मार गिराए थे । फिर सबने मिल कर जमींदार के निशाने की प्रशंसा आरंभ कर दी ।

उन्होंने कुल तीन हिरण, सात खरगोश और बीस मुर्गाबियाँ मारी थीं । एक गीदड़ बहुत मचल रहा था, जुम्मा भल्ला उठा, आखिर तंग आकर उसने गीदड़ को भी ढेर कर दिया ।

“वह देख ! वह देख रावेल, आँधी चढ़ी जा रही है !” दूर—आकाश का रंग बदल चुका था । जमींदार का विचार था कि पहले आँधी आयगी और फिर मेंह बरसेगा । गर्मियों में सदैव पोठोहार में पहले आँधी आती है और फिर मेंह पड़ता है ।

साँझ हो रही थी, खेत के मजदूरों को बुलवाया गया, शिकार को उन्होंने बाँधा, घोड़ों पर पड़े हुए भोलों में संभाला और उन्हें चलता किया । स्वयं चलने से पहले उन्होंने सोचा कि वे पाँचों-के-पाँच ज़रा एक-एक घूँट पी लें, बबूल के पेड़ तले बैठकर शेरे ने बोटल का काग उड़ाया ।

“अब मेरा क्या दोष रावेल, देखो न आँधी को क्या हो गया ?”

सामने पहाड़—पीछे की रंगत फैल कर हलकी पड़ती जा रही थी और यह रंगत जितनी फैलती उतनी कम गहरी होती जाती ।

फिर वे शराब पीने लगे । एक-एक घूँट के बाद दो-दो घूँट और फिर तीन-तीन घूँटों के बाद बोतल समाप्त हो गई । शराब का न तो कोई रग था और न कोई स्वाद, बस, जैसे किसी मादकता का रस निकाला गया हो, सबको एक मस्ती-सी एक लहर-सी आई । हवा अधिक तेज़ हो गई ।

“देखा ! कितनी शीतल पवन चलने लगी है ?” ज़मींदार ने रावेल को फिर याद दिलाया—“और अब भी यदि वर्षा न हो तो जाय भाड़ में । नदी पार माणले की ओर मूसलाधार वर्षा हुई होगी !”

शेरे ने एक बोतल और खोल ली थी, अब सभी ज़मींदार की हाँ-में-हाँ मिला रहे थे, किंतु सबकी नज़र बोतल पर लगी थीं । पीते-पीते रात हो गई, शेरे ने तीसरी बोतल भी खोल दी और बता दिया कि उसके पास वह अंतिम बोतल थी । तीसरी बोतल भी उन्होंने समाप्त कर दी और रात अब बहुत अँधेरी हो चुकी थी । फिर वे अपने-अपने घर जाने को उठे ।

गीदड़ों ने चारों ओर ‘हुँआँ-हुँआँ’ का शोर मचा रखा था, जैसे उनकी सेनाएँ उधर से इधर भाग रही हों ! पत्थरों की खड़खड़ाहट भी काफी गूँज रही थी । यदि गीदड़ चुप हो जाते तो जँगली कीड़ों का शोर अधिक स्पष्ट हो जाता, और सुहाँ की गूँज भी बड़ी भयानक थी । ‘जराही’ के समीप पानी के छोटे-छोटे पत्थरों पर से निकलने की मधुर-ध्वनि भी उन आवाज़ों में सम्मिलित थी । पेड़ यों जान पड़ते थे जैसे पिशाच खड़े हों; और जब शराब की तीन बोतलें पीकर कोई घोड़े पर चढ़े तो यों जान पड़ता है जैसे पेड़ भी उसके साथ चल पड़े हों । जहाना बार-बार अपना घोड़ा घोड़ों के बीच कर लेता ।

कभी-कभी कोई गीदड़ उनसे थोड़ी-सी दूरी पर चीखने लगता । जैसे उन्हें ललकार रहा हो । और कभी-कभी कोई बिछुड़ा हुआ पक्षी

उनके सिरों पर से सरसराता हुआ गुजर जाता। जुगनू इधर-उधर झुँडों में मँडरा रहे दे। जहाने का प्रस्ताव था कि आठ-दस जुगनुओं को इकट्ठा किया जाय तो काफी रोशनी हो सकती है। जुम्मा कहता यदि इन्हें इकट्ठा किया जाय तो उनमें रोशनी नहीं रहेगी। शेरा नशे में बदमस्त था, रावेल जुम्मे और जहाने में सुलह करवाने की कोशिश कर रहा था। और जमींदार सोच रहा था—जब कोई बच्चा रोता है तो माँ उसे दूध पिलाती है, और पिता उसे क्या देता है? एक मोती किसी सराफ से गुम हो गया और किसी पथिक को सौभाग्यवश मिल गया, पथिक को उस मोती के मूल्य का क्या ज्ञान? जब कोई रोए तो उसे प्यार करना चाहिए, चूम-चाटकर उसे छाती से लगा लेना चाहिये, आँसू यूँही व्यर्थ नहीं बहने देने चाहियें। जब मैं स्वयं ऊँची आवाज में रोने लगूँ तो फिर सम्भवतः मुझे किसी का रोना सुनाई न दे। और यह भी हो सकता है कि दूसरा रोना बन्द कर दे। अधिक रोना तो ईश्वर को भी अच्छा नहीं लगता।

“अवे ओ ससुरे जहाने ! तू रो क्यों रहा है ?” सहसा जमींदार ने नशे में चूर हुई आवाज में उससे पूछा।

“नहीं सरकार, यह वारिश की बूँद मुँह पर पड़ रही है !” रावेल ने भी मदहोशी के स्वर में जवाब दिया।

घोड़े अपनी चाल से गाँव की ओर चलते रहे, चलते रहे।

तेली मोहल्ला !

६

तेली मोहल्ले के सभी लोग तेली कहलाते, किन्तु इसके अतिरिक्त एक-एक नाम और भी था—जैसे राजो भाखड़ी, लखन माऊचाला, दिता लेफाँ वाला, धन्ना सिन्ना, मीरु डन्ना, मानू कलगा, दीना गगड़ा, शरफूबरडा सरबर मट्टू आदि । प्रत्येक छोटे-बड़े का कोई नाम रखा हुआ था, और लोगों की मिली-जुली सूझबूझ ऐसा नाम रखती जिसमें उनका सारा चलन प्रगट हो जाता, उसके चरित्र का चित्र खिंच जाता ।

तेली मोहल्ले में घर-घर कोल्हू थे । साँभ-सबेरे और दोपहर को हर समय बैल-कोल्हू चलते रहते । बैलों के गलों में पड़ी हुई घंटियाँ बजती रहतीं, जिस घर में ये घंटियाँ अधिक बजतीं वह घर अधिक सम्पन्न समझा जाता । उस घर की तेलिन के केश कम खुश्क होते, गली-मुहल्ले में गुजरते समय उसके सिर का आँचल बार-बार फिसलता, कोल्हू के दिये का काजल उसकी आँखों में सबसे अधिक गहरा होता । उसके पति के पट्ठों में मालिश के कारण तेल रचा होता ।

तेजन अक्सर साँवले रँग की होती; किन्तु शीशम के पेड़ के समान दृढ़, न उन्हें धुन लगता न उनकी आयु ठरती; जैसा उनका यौवन होता वैसा ही उनका मँजा हुआ और तरोताजा बुढ़ापा होता । तेलनें अक्सर लड़कियाँ जनतीं । उनकी बाहर रहने वाली सहेलियाँ कहा करतीं कि तेलियों के मन में हमेशा कोई-न-कोई स्त्री रहती; इसीलिए इनके यहाँ

लड़कियाँ उत्पन्न होती हैं !

किसी युग में लड़के का पैदा होना तेलियों के यहाँ बहुत बुरा समझा जाता था । एक नौजवान तेलिन कहती थी कि वह फफरों के एक लड़के के साथ भाग के ही रहेगी । उसे बहुत रोका गया किन्तु वह बाज न आई; माँ-बाप और पड़ोसियों ने उसे बहुत समझाया कि अपने से ऊँची जाति वाले लड़के के साथ यदि ऐसा कर लिया जाय तो कोई हर्ज की बात नहीं, किन्तु फफरों की जाति तो बड़ी कमीनी है । यदि वह उस लड़के के साथ भाग गई तो सारी बिरादरी की नाक बट जायगी; किन्तु उस लड़की ने एक न मानी और मुँह काला करके रही । उसके पिता ने भी आव देखा न ताव, सिर पर कफ़न बांध कर निकल पड़ा । ढूँढ़ते-ढूँढ़ते लगभग दो महीने हो गए उसे केवल इतना पता लगा कि लड़का अमुक स्थान पर है । जाते ही उसने लड़की के दो टुकड़े-टुकड़े कर दिये और वे टुकड़े बोरी में डाल कर घर ले आया । इन दिनों जितना तेल तेली ने निकाला, उसमें उस “बदजात” लड़की के माँस-मज्जा का रस भी शामिल था ।

लेकिन आजकल तेलिनों की बहुत चलती थी, जो उनके जी में आता करतीं । तेली उन्हें रोक न सकते; कोल्हू चलाते-चलाते तेली अपनी औरतों के गुलाम हो कर रह गए थे । तेलिनें बनी-ठनी रहती, तेली मँले-कुचैले चीथड़ों में त्रिपटे रहते, बैलों को गालियाँ देते ।

कोल्हू वाले कमरों की छतें अक्सर नीची होतीं । एक छोटी-सी खिड़की गली की ओर खुलती । एक नीचा दरवाजा दालान की ओर होता, जिसमें से बैल भीतर-बाहर आ-जा सकते । खिड़की से पट खोल कर तेली तेल बेचते, खली का सौदा करते, और यदि किसी ने कोल्हू के कमरे के धुधलके में आना होता तो वह उसी मार्ग से भीतर आ जाता ।

फजलां के बाप को जब खेती-बाड़ी की उमंग उठी तो उसने हल

बनवाया। बैलों की एक जोड़ी खरीदी और दिन भर खेत पर रहता। दोपहर को उसकी पत्नी छाछ के साथ भोजन लेकर उसके पास चली जाती और रानी बिटिया घर में अकेली कोल्हू का धंधा किया करती। उन्हीं दिनों मौले के साथ उसकी जान-पहचान हुई, कभी वह तेल लेने आता था कभी वह खली खरीदने आता था, वह एक सुन्दर नवयुवक था। एक बार उसने अपना हाथ जो आगे बढ़ाया तो फजलां को यूँ लगा जैसे उसने कंगन पहना हुआ हो—वह काँप-सी गई।

राजपूतों का लड़का मौला हर दूसरे-तीसरे दिन खिड़की में आकर भाँकने लगता। फजलां दोपहर को खिड़की के पट खोल के रखती। कुछ दिन यूँही होता रहा, यूँही चलता रहा। एक दिन जैसे आप-ही-आप मौले का सिर खिड़की के भीतर आ गया और फिर जैसे आप-ही-आप उसका धड़ भीतर आता गया। फिर उसकी एक टाँग भीतर आई, फिर उसकी दूसरी टाँग, और फिर कोल्हू वाले ठंडे कमरे में खड़े-खड़े वह पसीना-पसीना हो गया।

मौले की माँ तेलिन थी, मौला बिल्कुल अपनी माँ पर गया था। उसे विश्वास था कि उसका राजपूत-पिता कुछ कर, जल-भुन कर आखिर चुप हो जायगा।

फजलां जब रात को माँ के साथ एकांत में हुई तो उसके आँसू न रुके, उसका पिता बाहर तकिये की ओर गया हुआ था, वह रोती जाय, रोती जाय, आखिर उसने माँ को सारी बात बता दी और माँ ने उसे सीने से लगा लिया। उसे चूमा-चाटा और समझाने लगी—“इन बड़े आदमियों के लड़कों का विश्वास नहीं किया करते !”

किन्तु जब फजलां ने हाथ जोड़े तो वह बोली—“अच्छा, जैसी तेरी इच्छा !”

माँ ने वचन दे दिया।

और जब किसी तेलिन की माँ न मानती तो लड़की देखते-देखते कहीं खिसक जाती। राजपूतों के लड़कों के साथ तेलिनें हंसी-खुशी

भागने पर तैयार हो जातीं और उनके लिए दर्जनों बच्चे जन देतीं ।

जब नजीरां पर यौवन टूटा तो उसकी माँ बाहर जाते हुए दरवाजे के आगे एक रेखा खींच जाती । नजीरां हैरान थी कि लड़के उधर से आते-इधर गुजर जाते, इधर से आते उधर गुजर जाते, कोई उसकी ओर आँख उठा कर न देखता । लेकिन जब उसकी माँ घर आती तो लोग उनके दालान में आ घुसते, हँस-हँस कर उसकी माँ के साथ बातें करते और चोरी-छिपे नजीरां को घूरते रहते । उसकी माँ पूरे दो वर्ष तक यह रेखा खींचती रही । और पहले ही दिन जब वह यह रेखा खींचना भूल गई तो एक घंटे के बाद घर लौट कर उसने देखा कि नजीरां वहाँ नहीं थी । उसने सिर और छाती पीट कर अपनी दुर्दशा कर ली, उसके पिता ने पोछोहार का चप्पा-चप्पा छान मारा किन्तु नजीरां कहीं न मिली ।

एक बार मोचियों के एक लड़के पर पेम का भूत सवार हुआ । काम-काज छोड़ कर तेली मोहल्ले के चक्कर काटने लगा । लड़का अच्छे रूपरंग का था, लड़कियों को उसके आने-जाने पर कोई आपत्ति नहीं थी । आठ-दस दिन और बीत गए और उनमें से एक उसके साथ भाग जाने के लिए भी तैयार हो गई । तेलिनें थीं भी तो बे-शुमार । गक्खड़ राजपूत और तेली चार-चार तेलिनें ब्याहने के बाद भी उन्हें समाप्त नहीं कर सकते थे । और तेलिनें तो अभी और उत्पन्न हो रहीं थीं, जवान तेलिनों को मोची और मिरासी भी भले लगते थे, किन्तु तेली यह सहन नहीं कर सकते थे । जब उन्हें पता चला तो वे मार्ग रोक कर बैठ गए, मोचियों के लड़के को पकड़ कर कोल्हू के साथ जकड़ दिया और दो दिन तक उससे कोल्हू चलवाते रहे । तीसरे दिन जब पुरुष इधर-उधर हुए तो तेलिनों ने मिलकर एक सलाह की; मोची के लड़के को जो भी देखती वह उसके विरुद्ध कुछ भी न कह सकती ।

“यदि तुमसे कोई लड़की उसके साथ जाने को सहमत नहीं, तो

में स्वयं उसके साथ जाने को तैयार है, " एक अघेड़-आयु की चौधरानी बोली और सब हँस पड़े ।

उस दिन साँझ को जब पुरुष बाहर तकिये की ओर गए, तो स्त्रियों ने मिलकर दोनों घरों की खड़कियों के पट तोड़ दिये, मोची के लड़के को एक लड़की देकर भगा दिया, और दूसरे दिन दुःख से हाथ मल कर बातें करने लगीं कि लड़की और लड़का खड़कियाँ तोड़ कर भाग गए ।

हर पुरुष के पीछे आठ तेलिनें थीं । जो तेल खातीं, तेल मलतीं, उनके अंग-अंग में तेल रचा हुआ था । लड़कियाँ गिरोहों में बाहर निकलतीं, शाम को कोठों की मुँडेरों पर बैठ कर ऊधम मचातीं, पुरुषों से ऐसी दिल्लगी करतीं, लड़कों पर हँसती जैसे गाँव में उन्हीं का शासन हो ।

जुम्मा जाति का तेली था । कई वर्ष हुए उसने यह काम और इस मोहल्ले में रहना छोड़ कर जमींदार की नौकरी कर ली थी, और अब वह जमींदार के खास कर्मचारियों में गिना जाता था ।

कहते हैं—यौवनकाल में जुम्मा बहुत सुन्दर युवक था । वह लंबे-पंखे बाल रखता, उसका रंग गोरा था, उसका शरीर इतना गठीला था कि उस पर से दृष्टि फिसलती । जिधर से गुजर जाता तेलिनों का फिर दिनभर काम में जी न लगता । जहाँ चार लड़कियाँ सिर जोड़ कर बैठतीं, वहाँ जुम्मे की ही चर्चा होती । प्रत्येक नौजवान तेलिन के स्वप्नों में जुम्मा होता, नौजवान तेलिन के गीतों में जुम्मा होता । जुम्मे को एक बार ज्वर चढ़ा तो लड़कियाँ चुपके-चुपके रोती और मिलकर उसके लिए दुआएँ मांगती । अपनी-अपनी जगह हर लड़की जुम्मे पर जान दे रही होती, उसकी प्रत्येक दृष्टि और प्रत्येक हँसी को प्रत्येक लड़की अपने लिए समझती और छलक-छलक पड़ती ।

किन्तु जुम्मा किसी के हृत्थे न चढ़ा, उसकी मित्रता राजपूतों के लड़कों से थी । उसका अधिक समय गक्खड़ों की गलियों में गुजरता । एक दिन पाँच-सात अल्हड़ जवान लड़कियों ने सलाह की, और जब

दोपहर को जुम्मा उनकी ड्योड़ी के आगे से निकल रहा था, तो वे उसे घेर कर, बत्तपूर्वक भीतर खींच कर ले आईं और ऊपर से उन्होंने दरवाजे को संकल लगा दी। जुम्मे ने बड़े हाथ-पाँव मारे, क्रोधित भी हुआ, किन्तु दो लड़कियों ने उसके मुँह पर कपड़ा बांध दिया और शेष लड़कियों ने जी भर कर उसे छेड़ा, उसे तंग किया। उसे राजपूत-लड़कियों के ताने दिये, उसे बार-बार गर्वीला कह कर लज्जित किया। एक उठी और उसने उसके सँवारे हुए केशों को बुरी तरह उलझा दिया, दूसरी आई उसने उसके गालों को चुटकियाँ भरके उन्हें जोर से खींचा, उसके गाल लाल-सुर्ख हो गये, और फिर दोनों ने आप-ही-आप रोना आरम्भ कर दिया—कुछ लड़कियाँ उन दोनों पर हँसती, कुछ लड़कियाँ जुम्मे पर हँसती और कुछ लड़कियाँ चक्कर में थीं, उनकी समझ में कुछ न आता कि वे क्या करें और क्या न करें। आखिर एक ने कंधी लेकर उसके बाल सुलझाने आरम्भ किये, दूसरी उसके गले में बाँहें डाल कर उसके पास बैठ गई, एक और उसके दूसरी ओर आ बैठी, और फिर लड़कियों ने जुम्मे के मुँह पर बँधा हुआ कपड़ा खोल दिया। एक ने नेवाड़ी पलंग पर चादर बिछा कर उसे उस पर बिठा दिया और सब मिलकर उसके सामने गाने लगीं, गाते-गाते उन्होंने नाचना आरम्भ कर दिया, नाचते-नाचते वे लोटपोट हो रहीं थीं, जुम्मा हक्का-बक्का बैठा रहा, उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या करे और क्या न करे।

एक और लड़की थी नूरी। वह एक अमीर तेली की बेटी थी, केवल वही आज तक जुम्मे को नजरों में नहीं लाई थी। वह सौंदर्य में जुम्मे से बढ़-चढ़ कर थी, कई बार दोनों की आँखें चार हुईं और दोनों मूक-निश्चिन्त खड़े रहे; किसी का हृदय किसी के लिए न पिघला।

वे एक दूसरे की रूप की कहानियाँ सुन लेते और सुनी-अनसुनी कर देते, सप्ताह, मास और वर्ष व्यतीत हो गए। आखिर नूरी को यह शिकायत रहने लगी कि जुम्मा तो राजपूतों और गक्खड़ों के यहाँ भ्रम मार

आता है। नूरी एक अल्हड़ युवती थी, वह आखिर कहाँ जाय ? वह जुम्मे की इस स्वतंत्रता पर कुडती रहती। वह सोचती कि जुम्मा अपने मुहल्ले में रहे, अपनी बिरादरी में उठे-बैठे, और फिर वह यदि उसकी परवाह न करे, तो वह उसकी जीत समझेगी और अपनी हार मान लेगी।

कुछ समय के बाद नूरी का क्रोध बढ़ने लगा, हर घड़ी उस पर क्रोध का भूत सवार रहता, हर घड़ी जुम्मा जैसे उसके विचारों में समाया हुआ हो। नूरी अपने को घर के कामों में लगाए रहती। जितना वह जुम्मे को भुलाने की कोशिश करती वह उसे उतना ही याद आता। कई बार तंग आकर उसके आँखों में आँसू भर आते, कितने-कितने दिन नूरी से खाया-पिया न जाता, मँले-कुचैले वस्त्रों में पड़ी रहती। एक बार साँभ को द्वार की चौखट पर वह सिर डाले खड़ी थी कि जुम्मा उधर से निकला, दोनों ने एक दूसरे की ओर देखा—जुम्मा उपेक्षा से आँखों से ओझल हो गया; इसी प्रकार एक दिन और यूँही हुआ, वह अकेली छत की मुँडेर पर बैठी थी।

इस प्रकार कुछ दिन और बीत गए। एक दिन नूरी को पता लगा कि जुम्मा घर में बैठा हुआ है। उसके घर के और लोग बाहर गए हुए थे। नूरी ने अपने बाल सँवारे, मिस्सी मली, दाँत निखारे, होठों पर दंदासा मला, रेशमी जोड़ा पहना, सिर पर मलमल का डुपट्टा लिया और चुपके से अपने घर के पिछवाड़े से निकल कर जुम्मे के घर में जा घुसी।

जुम्मा मोड़ पर बैठा गुलिल बना रहा था। नूरी ने जाते ही रबड़ उसके हाथों से छीन लिया और उसे दोनों कंधों से पकड़ कर उसकी आँखों में अपनी आँखें डाल दीं—“तू बस यही चाहता था ?” उसकी आँखें जैसे उससे कह रही थी—“तू बस यही तो चाहता था कि मैं हार मान कर तेरे पास आऊँ, मैं तुझ पर कुर्बान जाऊँ—तुझसे प्यार करूँ, मैं तझसे आकर कहूँ कि तेरी याद मुझे दिन-रात रुलाती है ? खाना-

पीना, सोना-पहनना मुझे भूल गया है। तू पुरुष है, सारी तेलिनें तुझ पर जान देती हैं; तू जाकर राजपूतों के साथ मित्रता गाँठता है।” फिर नूरी ने जोर-जोर से उसे कंधों से झिझोड़ा—“मेने कहा, चलके देखूँ तो सही कितना सुन्दर है ?” अब नूरी ने बोलना आरम्भ किया—“तेरे मिजाज का ही पता नहीं लगता—तेली होकर तू गक्खड़ों की गलियों में झूख मारता फिरता है ? क्या मुझे तूने अपनी बिरादरी से बाहर जाते देखा है ? यहाँ लाख रजवाड़े अपना सिर फोड़ कर जा चुके हैं।”

क्रोध से नूरी का मुँह लाल हो गया, और कुछ समय तक वह उसे यूँहीं कंधों में पकड़े हुए आँखें फाड़-फाड़ कर देखती रही।

आखिर एक झटके के साथ नूरी ने उसके कंधे छोड़ दिये और चुपचाप ज्यों-की-त्यों वहाँ से चली आई, जुम्मा हैरान होकर उसकी ओर देखता रहा, देखता रहा।

उस दिन के बाद जुम्मे का कहीं दिल न लगता, पागलों के समान घूमता रहता। आखिर केवल रोटी-कपड़े पर उसे जमींदार के अस्त-बल में सिर छिपाने को स्थान मिल गया। जुम्मा हर घड़ी अपने काम में लगा रहता, सरकार उसपर अत्यन्त प्रसन्न थे। सरकार की बेगमें उससे बहुत प्रसन्न थीं, जुम्मा उन्नति करता हुआ सरकार के विशेष कर्मचारियों में से एक हो गया।

उस दिन से जुम्मा जहाँ तक हो सकता, तेली मोहल्ले में न जाता। अपना घर, माता-पिता, जुम्मे ने सब कुछ छोड़ दिया।

उस दिन से नूरी अपने-काम के समय काम करती, खाने के समय खाती, सोने के समय सोती, खेलने के समय खेलती, हँसती और ऊधम मचाए रहती।

तेली मुहल्ले की चहल-पहल वैसी-की-वैसी बनी रही।

तिल चावली !

१०

रेशमां तेरह वर्ष की हो चुकी थी ।

कुछ समय से ज़मींदार ने एक नौजवान-विधवा पर दया करके उसे रेशमां के लिए दासी रख लिया था । नेकां सैयदों की लड़की थी । अत्यंत सुंदर और कोमलांगी । वह रेशमां से लगभग दस वर्ष बड़ी थी । किन्तु उसके साथ उठती-बैठती, खेलती-हँसती और खाती-पीती, बिल्कुल रेशमां जैसी बन जाती । रेशमां, रेशमां की धाय और नेकां, यह एक छोटा-सा संसार था । ज़मींदार को रेशमा का किसी और के साथ मेलजोल पसंद नहीं था । जबसे रेशमां ने होश संभाला था, नव्वाब और उसकी पत्नी से भी बहुत कम मिला करती । शेष हवेली के नौकर-चाकर रेशमां के चौबारे की ओर बिल्कुल आ ही नहीं सकते थे ।

गरमी के दिनों में एक दोपहर को ज़मींदार की दृष्टि नीचे पड़ी तो उसने देखा—नेकां एक थाल में भीगे हुए कच्चे चावल बांट रही थी । हवेली की प्रत्येक स्त्री को मुट्ठी भर चावल दिये जाती और स्त्रियाँ आगे से मुसकरा कर उसे आशीष देतीं ।

चावल लेकर स्त्रियाँ चावल फाँकती, रस चूस कर फिर एक-दूसरी पर फूँकतीं । उन्होंने सारा आँगन दूधिया श्वेत कर दिया । इतने में मालिन मोतिये से भोली भर लाई । दालान में कुछ स्त्रियों ने मिल कर फूलों की एक चादर बनाई, हार पिरोए, गजरे गूँथे और रेशमां की धाय के हाथों चौबारे में भिजवा दिये । फिर वे ढोलक लेकर बैठ गईं और दोपहर भर गाती रहीं ।

शाम को रेशमां की धाय जमींदार के पास गई—क्षणभर के लिए रेशमां का ढोलक-वालियों के पास आना अत्यन्त आवश्यक था ।

“नेकां आज यह चावल कैसे बांट रही है ?” जमींदार ने दोपहर की गुत्थी सुलभाने के लिए पूछा ।

“इसे तिल-चावली कहते हैं, यह मेरी रेशमां की तिल-चावली है !” शेष सब बातें न बताते हुए भी बूढ़ी स्त्री ने अपनी भंगिमाओं से सब-कुछ बता दिया ।

कुछ समय उपरांत रेशमां नीचे उतरी, ढोलक और जोर से बजाई गई । स्त्रियाँ उच्च-स्वर में गायीं ।

आखिर धूप जला कर उसकी धूनी रेशमां के सिर पर सात बार घुमाई गई और कुछ स्त्रियों ने बारी-बारी उसका माथा चूमा । फिर उसे ऊपर भेज दिया गया ।

रेशमां सारा दिन व्यग्र-सी रही, उसे अपना-आप जैसे पराया-पराया अनुभव होता । किसी वस्तु को छिपाने के लिए उसका दिल चाहता किन्तु वह आप-ही-आप जाहिर हो जाती । उसका हृदय विकल होता, वह चाहती कि उसकी धाय चली जाग, नेकां आँख से ओझल हो जाय । अकेली अपने कमरे के अंधकार में वह पड़ी रहे, पड़ी रहे ।

सबरे जब उसकी आँख खुली तो रेशमां का उठने को जी न चाहा, वह लेटी रही, लेटी रही । फिर उसने रोना आरंभ कर दिया, आज रेशमां को माँ की आवश्यकता अनुभव हो रही थी । रोए जाती और माँ को आवाज़ें दिये जाती, उसकी धाय और नेकां दौड़ती हुई आईं । धाय ने उसे गले से लगा लिया, चूमा-चाटा और धीरज बँधाया, फिर दोनों मिल कर कितनी देर तक उसका अंग-अंग दबाती रही । धाय को नीचे किसी काम भेज कर नेकां ने रेशमां को सारी बात समझाई और उसे अपनी जिम्मेदारी से सूचित किया ।

अगली चाँदनी रात थी । आधी रात गए तक रेशमां फूलों से लदी रही, मोतिये की सोंधी-सोंधी सुगंधि में जैसे वह मदमस्त हुई जा

रही थी। फूलों की कोमलता वह छू-छू कर अनुभव करती।

भुजाओं पर और बालों में गजरो को उसने टाँका हुआ था। वह फूलों की चादर अपने अंक में भर लेने का प्रयास करती, कभी उसे नीचे बिछाती और कभी ऊपर ओढ़ लेती।

सारा दिन रेशमां का दिल चाहता कि वह लेटी रहे और नेकां उसे कहानियाँ सुनाती रहे। आजकल उसे राजकुमारों की कहानियाँ बहुत भाती थीं। शाह बहराम, जिसे परियाँ उठा कर ले गई थीं, फ़रहाद जिसने पहाड़ खोद-खोद कर नहर निकाली थी, बार-बार वह पूछती कि रांभा हीर के पलंग पर कैसे चुपके से आकर लेट गया था, और फिर जब क्रोध में लाल-पीली हीर फुंकारती आई तो—रांभे ने उठ कर कहा—“वाह सजनी” और हीर हंसती हुई उसपर मेहरबान हो गई। या फिर रानी सुंदराँ ने ‘पूरण भगत’ को मोतियों के थाल की भीख कैसे दी थी? रेशमां को ये किस्से बड़े अच्छे लगते थे; मिर्जे का पेड़-तले बैठ कर सो जाने के विषय में जब वह सोचती तो उसकी हँसी निकल जाती। नेकां को ये सब किस्से कण्ठस्थ थे और वह दिन भर इकतारे की झंकार में गाती रहती, गाती रहती।

रेशमां अब दिन-प्रति-दिन कुछ से कुछ हुई जा रही थी, अपने कमरे में रखी हुई वस्तुओं को क्रम से बदलती। उसे अपने शैशवकाल की वस्तुएँ अनावश्यक प्रतीत होतीं, वह दूधिया चादरें बिछाती, फ़र्श धुलवाती, उनपर नया लेप करवाती। जब बेकार होती तो फूलों से खेलने लग जाती, नए-नए पौधे मंगवाती, रंगबिरंगे बीज इकट्ठा करती, फूलों के गमले दालान में रखवाती।

उसे साँझ-सबरे अपना शरीर बढ़ता हुआ दिखाई देता, उसे वस्त्र अपने शरीर पर तंग अनुभव होते, सिकुड़े-सिमटे रहते। उसके हाथ जब उसके केशों से टकरा जाते तो उसे काली घटाओं और कुछ इसी प्रकार के बोल वाले गीत याद आ जाते। वह धीरे-धीरे बोलती-धीरे-धीरे चलती। अत्यन्त कोमलता से मुसकराती। उसकी आँखों से एक

शीतलता-सी, एक मादकता-सी टपकती। उसके ललाट से एक आभा-सी फूटती। वह नखशिख तक एक नशे में रहती।

रेशमां का आंचल उसके सिर पर न ठहरता। उसके बदन पर उसकी कमीज सटी-सटी-सी रहती। रेशमां अत्यंत विकल हो जाती।

अपनी धाय से उसे लाज आती, उससे दूर-दूर रहती। धाय आज-कल प्रायः उसके खाने-पकाने और पीने-पिलाने आदि में लगी रहती। नेकां उसके समीप होती जा रही थी, उसके अन्तर में समा रही थी। पलंग पर लेटे-लेटे वे दोनों कभी-कभी सारा-सारा दिन प्यारी सखियों की भांति खुसर-फुसर करती रहतीं। नेकां से रेशमां ने उसके कँवारेपने की कहानी सुनी। फिर उसके विवाह की गाथा सुनी, रेशमां जैसे एक नए संसार में बसने लगी।

फिर भी रेशमां का कभी-कभी जी चाहता कि उसे अकेली छोड़ दिया जाय और खड़ी होकर वह बिना किसी कारण के आए हुए आंसू पोंछ ले और उससे कोई यह न पूछे कि उसकी आँखें लाल क्यों हो रहीं थी।

शाम को दूर—बहुत दूर—फ़स्लों में ऊँचे स्वरों में गाए जाते हुए गीत वह कान लगा कर सुनती और कई बार उसका अंग-अंग, बंद-बंद काँप उठता।

“तिल चावली”—“तिल चावली”—बार-बार ये बोल जमींदार के कानों में गूँज उठते। रेशमां बड़ी हो रही थी, जमींदार सोचता कि वह उसका विवाह कैसे करेगा, कैसे रेशमां की बरात आयगी, और अपनी लड़की का हाथ वह किसके हाथ में देगा। रेशमां के चले जाने के बाद जमींदार को अपने जीवन का एक भाग खाली-खाली जान पड़ता और रेशमां का चौबारा उसे खाने को दौड़ता।

जिस प्रकार जंगल में शेरनी हर जानवर को खाती, मारती, घायल करती, नोचती, भँभोरती और ईर्ष्यालु होकर, अपने शिशु का मन बहलाती है, अपने कोख से निकले हुए माँस के लोथड़े के लिए जैसे उसके भीतर

एक स्वर्ग-सा बस जाता है, बिल्कुल उसी प्रकार एक हिंसक और जलील जीवन बिता कर जमींदार जब घर लौटता, सामने रेशमां की खिड़की देख कर उसे अपना-आप मँला और गंदा लगता । वह बार-बार अपने को धोता, बार-बार कपड़े बदलता । उसके अन्तर की कालिमा रेशमां की मधुर-मधुर बातें ही धो सकतीं, कई बार वह फूट-फूट कर रो पड़ता । रेशमां की आँखों में भी आँसू आ जाते । बच्चे को खेलाने के लिए जमींदार बच्चे की माँ की बात छेड़ देता, उसकी जी भर कर प्रशंसा करता, प्रशंसा करने समय वह थकता नहीं था, किन्तु जमींदार जितनी रेशमां की माँ की प्रशंसा करता उतना ही वह अपने-आपको कोसता कि किस प्रकार यातनाएं दे दे कर उसने उसे मार डाला था ! जितना समय भी वह जीवित रही, उसका व्यवहार उसके साथ कसाइयों का-सा रहा । और जब वह मर रही थी तो उसने रेशमां को चूमकर जमींदार के हवाले किया और रुकते हुए साँस के साथ जमींदार की ओर अंतिम बार देखा । जैसे उसकी आँखें कह रही हों कि मैंने तेरे सारे दोष क्षमा कर दिये, तू मेरी ओर से बिल्कुल निर्दोश है, लेकिन यह मेरी धरोहर तेरे हवाले है । इसके दिल पर कभी कोई चोट न लगने देगा । अपनी यह धरोहर मैं समय आने पर तुझसे लौटा लूँगी । और यदि तूने यह धरोहर खो दी तो तेरी बुरी दुर्दशा होगी—और फिर रेशमां की माँ ने अपनी आँखें बंद कर लीं ।

उस समय रेशमां छोटी-सी थी, बिल्ली के बच्चे के समान । उसे धार्यों ने पाला-पोसा, जमींदार ने उमे प्राणों से अधिक प्रिय समझा उसकी खुराक, उसके रहन-सहन और उसके सोने-जागने का स्वयं ध्यान रखता तथा कभी उपेक्षा न होने देता ।

उस दिन शाम को जमींदार से मदिरापान न हो सका । उसके चारों-के-चारों गुंडे कर्मचारी हैरान थे, वह बार-बार गिलास अपने होठों तक ले जाता किन्तु एक घूंट तक उसके कंठ से नीचे न उतरा । एक थाल में भोगे हुए चावल डाले—उन चावलों को बाँटती हुई एक स्त्री का चिक्क

चावल बिखेरना, फिर हारों का पिरोया जाना, फिर ढोलक का बजना फिर रेशमां का एक फूल के समान एक दालान में आकर बैठना—यह सारे-का-सारा दृश्य जमींदार को एक आनन्द में भर रहा था ।

जुआ खेलने के लिए भी जमींदार सहमत न हुआ । बाहर सैर को जाने के लिए भी उसका जी न चाहा, अच्छे-से-अच्छे मजाक पर भी उसे हँसी न आई, आखिर एक-एक करके उसके गु डे खिसक गए ।

पलंग पर अकेला लेटा हुआ जमींदार जैसे चिंता में निमग्न था—उसकी रेशमां चमेली की एक कली थी, दिन को यह गीत भी स्त्रियों ने गाया था । बहादुर की गली में धरेक वाले दालान में मोतिया कितना खिला हुआ था । पिछली बार जब वह भेस बदल कर उधर से निकला, भागभरी का बालक “सिपाही-सिपाही” खेल रहा था, और आप थानेदार बना हुआ था । यदि कहीं उसके पीछे सिपाही बने हुए बालक चोर-चोर, कह कर भागते, तो उसे कम-से-कम क्या दण्ड दिया जाता ; भागभरी के बच्चे के कंधे दृढ़ थे । उसका डीलडौल कितना सुदृढ़ था, अपनी आयु के बालकों में सरदार जान पड़ता था । रेशमां दिन भर नेकां के साथ रहती थी, नेकां नमाज पढ़ने वाले सैयदों की लड़की ! पति के मरने पर उसने विवाह न किया—यह शरीर अब किसी दूसरे को नहीं दिया जायगा ! उसने कहा था ।

रेशमां की धाय अब बड़ी आयु की हो चुकी थी, कभी कुछ और कभी कुछ, उसे कोई-न-कोई रोग सदैव लगा रहता । कहीं मर ही न जाय—जमींदार ने असंख्य स्त्रियों को मरते हुए देखा था, लोग कई प्रकार की मौत मरते हैं ।

और इस प्रकार सोचते-सोचते उसकी आँख लग गई, अभी रात कोई अधिक नहीं बीती थी ।

स्वप्न में जमींदार ने देखा—रेशमां की माँ अपनी कब्र में से निकल कर एक कली के समान फूट पड़ी है । अभी उसका जीवन अछूता है, कामिनी है, और वे दोनों जैसे कहीं दूर जा रहे थे, जहाँ

शराब की नदियाँ बहती हैं। जहाँ मखमली घास की सेज बिछी हुई है। मार्ग में जमींदार को जहाना मिल जाता है और उसके घोड़े की बाग थाम लेता है।

पसीने-पसीने होकर जमींदार की आँख खुल गई, सारी रात करबट बदलता रहा और उसके बाद उसे नींद न आई।

सवेरा होते ही उसने रेशमां को बुलवाया—“यहाँ तो चारों ओर सुगंधि-ही-सुगंधि है !” उसने आते ही पहली बात यही कही, वास्तव में सुगंधि उसे अपने आप से आ रही थी। जमींदार ने बच्ची को सम-भाया ; फिर उसने सोचा, शायद सच ही कहती हो, क्योंकि वह रात भर फूलों में बसा रहा था।

“आज मैं आपको अपने हाथ से बना हुआ पुलाव खिलाऊँगी, मुझे नेकां ने पुलाव बनाना सिखलाया है।” रेशमां ने जाते हुए जमींदार से कहा।

“चावलों का पुलाव !” जमींदार की बाँछें खिल गईं और उसने रेशमां का माथा चूम लिया।

पुल-पार

११

पुल-पार एक जोगी आया हुआ था, 'जसपाला' के गाँव में। गाँव के बाहर की ओर लगभग दो फर्लांग पर एक नदी थी, इस नदी पर एक टूटा-फूटा पुल था, पुलपार कंदराएँ थीं; इन कंदराओं में उतरे हुए जोगी की चर्चा सारे गाँव में फैल चुकी थी।

जोगी के कान छिदे हुए थे, जिनमें छोटी-छोटी बालियाँ थीं। उसने सारा सिर घुटवा रखा था, किन्तु उसने दाढ़ी खूब बढ़ाई हुई थी। गेरुए वस्त्र पहने हुए एक माला सदैव उसके हाथ में होती। उसकी आँखें अक्सर मुँदी-मुँदी-सी रहती। कभी बात करता कभी न करता, लोग प्रतीक्षा करते-करते उठ कर चले आते। उसका चेहरा अंगार के समान दहक रहा था, उसके दर्शन करके हिंदू, सिक्ख, मुसलमान सभी कृतकृत्य हो जाते। चिलचिलाती दोपहर में कभी-कभी वह धूनी सुलगा कर बैठ जाता और आग के अलाव के पास निश्चल पड़ा रहता।

वह बहुत कम खाता और नमक अथवा चीनी उसमें भी न डालने देता। एक दिन उसने बराबर पच्चीस दिन तक निराहार साधना की, हर घड़ी दिन-रात कंदरा में बैठा हुआ माला जपता रहता। मुँह अँधेरे नित्यकर्म से अवकाश पाने के लिए बाहर निकलता, फिर भी कोई उसके सामने नहीं आ सकता था। उसके लिए दूध आदि कंदरा के बाहर एक बरतन में रख दिया जाता। किसी दिन तो वह अपना खाना बर्तन से उठाकर ले जाता और किसी दिन ज्यों-का-त्यों वहीं पड़ा रहता।

इन दिनों लोगों को कई बार कंदरा के भीतर से ढोलक और चिमटों की आवाज आई। बातें करके और ऊँचे-ऊँचे हँसने की आवाज आई। लोग कहते कि भीतर देवता उतर कर जोगी के साथ वार्तालाप करते थे और उसके साथ खेलते थे।

पन्चीस दिन के बाद जब जोगी बाहर आया, जितने भी लोग उसकी प्रतीक्षा में थे—सबके सब कांप-से गए। उसके मस्तक पर एक अवर्णनीय आभा जगमगा रही थी, उसके अंग-अंग से भीनी-भीनी सुगंधि फूट रही थी।

सदावर्त लगा दिए गए, असंख्य-लोग जोगी के दर्शनार्थ आए। जोगी का चमत्कार दूर-दूर तक फैल गया। साँझ-सवेरे, दिन-रात लोग कंदरा की ओर जाते दिखलाई देते, वर्षों की बाँझ स्त्रियाँ संतान के लिए जातीं, रोगी अपनी रोग-निवृत्ति के लिए माथे रगड़ते। ग्रामीण स्त्रियाँ अपनी साधारण-सी कामनाएँ लेकर चल पड़ती, पुरुष बड़े-बड़े मुकद्दमे जीतने और शत्रु-नाश के लिए जोगी के आसीस लेने जाते। लोगों के दावों से कंदराएँ भर गईं; दर्शनार्थी वे वस्तुएँ ले लेकर जाते, किंतु श्रद्धालुओं की श्रद्धा और चढ़ावा समाप्त होने में ही न आता।

कंदरा की निचली-धरती में एक बागीचा बनना आरंभ हो गया, ऊपर एक तालाब बना; चारों ओर चहल-पहल रहने लगी। कुछ समय बाद श्रद्धालुओं की संख्या कम होने लगी। लोग कहते थे कि मार्ग में जो नदी आती थी वहाँ भूतप्रेत आ गए थे। और कंदरा की ओर जाते हुए लोगों को रोकते थे। ज्यों-ज्यों यह समाचार फैलता त्यों-त्यों लोगों का आवागमन कम होता जाता। कई स्त्रियाँ, जो अकेली-दुकेली, समय-कुसमय उधर से गुजरती उन पर भूत-प्रेत टूटने लगते। कई पुरुषों पर चुड़ैल ने आक्रमण कर दिया; एक-दो स्त्रियाँ तो चुड़ैल के आतंक से सारा दिन नदी में मूर्छित पड़ी रही; एक की गोदी में बच्चा था, जिसने दम तोड़ दिया।

आतंक इतना बढ़ गया कि गाँव से बारी-बारी एक व्यक्ति जोगी के

लिए साँभ-सबेरे खाना लेकर जाता । अक्सर लोग शिकायत करते कि भूत आकर जोर से तमाचा मारता है । एक शाम जो लड़का दूध लेकर गया, वह फूट-फूट कर रोए और लौटने का नाम न ले ; कह रहा था कि भूत ने मुझे तमाचा मारना चाहा कि वह दौड़ पड़ा और दौड़ता-दौड़ता टीले पर चढ़ गया ।

जोगी ने उसे बहुत समझाया, किन्तु उसने एक न मानी । आग्विर जोगी ने उसकी दाईं हथेली पर कालिख लगा दी और कहा कि जब भूत उसके समीप आए तो वह कालिख उसके मुँह पर मल दे, फिर वह उसे कुछ नहीं कहेगा ।

जरा-जरा अँधेरा हो चला था । डरता, भिन्नकता और काँपता लड़का कंदरा से नीचे उतर आया । थोहर, हरमल और बेरों की झाड़ियों में जो पत्ता भी हिलता तो वह चौक उठता । पानी में से सहसा एक मेंढक टरनि लगा, अभी मेंढक ने आवाज ही दी थी कि लड़के के पाँव लड़खड़ा गए और वह कठिनता से गिरते-गिरते बचा । फिर पानी के चलने का स्वर यों सुनाई देता जैसे कहीं चाँदमारी हो रही हो, किड़-किड़ फिर किड़, जैसे गोलियाँ चल रही हों । नदी-पार का प्रत्येक पेड़ उसे भूत या पिशाच दिखाई देता, प्रत्येक पत्थर और प्रत्येक शिला उसे यों मालूम होती जैसे कोई लेटा हुआ हो, कोई बैठा हुआ हो, कोई उड़ रहा हो । दूर से एक-एक अंग उसे अलग-अलग मालूम होता, किन्तु ज्यों-ज्यों वह समीप आता जाता उसे प्रत्येक अंग यों जान पड़ता जैसे झड़ रहा हो, और बिल्कुल पास पहुँच कर वह वस्तु एक पत्थर-सा होकर रह जाती ।

जोगी ने जान-बूझ कर लड़के को पुल पर से जाने की आज्ञा नहीं दी थी । पुराने पुल की दशा बिल्कुल बिगड़ी हुई थी और जोगी को भय था कि पुल में पड़ी हुई दराइयों में से कहीं लड़का नीचे न गिर जाय ।

पानी की एक छोटी-सी धारा को उलांघते हुए लड़का उसे पार

कर गया। सामने की चढ़ाई पर कदम रखते समय उसका साँस तेज होता जाता, कई स्थानों पर उसने ठोकरें खाईं, कई स्थानों पर उसके पाँव लड़खड़ाए, कई स्थानों पर उसे अपने-आप पर संयम न रहा और वह हवा में हिचकोले खाने लगा।

आखिर वह बड़ी कठिनाई से चढ़ कर ऊपर पहुँचा। अभी उसने दो-चार कदम ही उठाए होंगे कि उसे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे भूत सहसा आकर उसके आगे खड़ा हो गया हो, पलक भपकते जैसे लड़के की धमनियों से सारा रुधिर खींच लिया गया हो, उसके शरीर से पसीना बूँद-बूँद बन कर बहने लगा। उसकी आँखें फटी-की-फटी रह गईं। मुँह खुले-का-खुला रह गया। उसके रोंगटे खड़े हो गए।

खड़े-खड़े लड़के को सहसा अपनी भुजा की काली रेखा की याद आयी। हाथ पर मली हुई कालिख, जिसके विषय में जोगी ने कहा था कि वह उसे भूत के मुँह पर मल दे, फिर भूत वहाँ के दौड़ जायगा। उसने भुजा उठाने का प्रयास किया, किन्तु वह भुजा जैसे निःशक्त हो गई हो। वह अपनी भुजा हिला न सका, उसने और साहस किया किन्तु यह सब प्रयत्न भी व्यर्थ गया। एक बार और उसने जोर लगाया किन्तु भुजा फिर भी न हिली।

अंधकार और फैल रहा था, अमावस की काली और गूंगी रात थी। गाँव से दूर—बीहड़ वन में पेड़ों के झुण्ड के पास नदी का तट झिलमिला रहा था, और एक अकेला लड़का, जिसके सामने पिशाच चुपचाप आकर खड़ा हो गया था।

लड़के ने देखा कि पिशाच ऊँचा उठ कर उसे दबोचने लगा है, उसके मुँह से एक कर्ण चीत्कार निकल गया। न जाने कैसे उसकी भुजा हिली और भूत के मुँह पर जोर से तमाचा मार कर, कालिख मल कर वह दौड़ पड़ा। कालिख लगते ही भूत जैसे वहाँ से अंतर्धान हो गया। लड़के के सामने का स्थान खाली था।

हाँपता हुआ अवाक—हैरान लड़का दौड़ता हुआ बाज़ार में से

होकर और घर पहुँचा। बाजार वालों ने उसे आवाजें दीं, उस पर हँसे किन्तु लड़के ने किसी की कोई बात न सुनी। हाँपते-हाँपते घर के दालान में पहुँच कर उसने साँस लिया।

उसकी बहन ने उसकी ओर देखा तो हँसने लगी, उसकी माँ ने उसे देखा तो वह भी हँसी, विपत्ति का जैसे किसी को पता ही नहीं था। हँस-हँस कर सब के पेट में बल पड़ गए, अड़ोस-पड़ोस की स्त्रियाँ एकत्रित हो गईं, सब हँसती जाँय—सब हँसती जाँय। रात और अधिक स्तब्ध हो गई।

धक-हार कर आखिर झुंभलाया हुआ लड़का बड़े कमरे के भीतर चला गया। सामने दीवार पर एक छोटा-सा दर्पण लटका हुआ था, लैप की रोशनी में उसकी दृष्टि सहसा दर्पण पर जा पड़ी। क्या देखता है, उसके मुँह पर एक ओर कालिख लगी हुई है, बिल्कुल वही कालिख जिसे वह पिशाच के मुँह पर मल कर आया था। देखते ही वह साथ के पालने पर धडाम से गिर पड़ा और चीख मार कर बेसुध हो गया।

सारी रात उस पर भाड़-फूँक होती रही, जादू-टोना होता रहा। भूत इस प्रकार कभी किसी को नहीं चिपटा था और भूत की ऐसी छाया न कभी किसी ने देखी थी और न सुनी थी।

अगले दिन यह समाचार कँदरा में जोगी को भी मिला और वह पहली बार गाँव में स्वयं आया, जोगी के साथ गाँव के पाँच-सात व्यक्ति भी थे।

मार्ग में आते हुए एक स्थान पर पशुओं के रेवड़ के पास से जब वे गुजरे, तो एक गाय बिदक गई। जोगी और उसके साथ के पाँच-सात व्यक्ति गर्दोंगुवार में अट गए और डरे हुए पशु भगदड़ में इधर-उधर भागने लगे।

गिरते-गिरते एक ग्रामीण की दृष्टि जोगी पर पड़ी और उसने उस भगदड़ में देखा कि जोगी की लंबी दाढ़ी नीचे गिर पड़ी थी, और

जोगी के स्थान पर जमींदार का मिठू शेर उसे दिखाई दिया। जब गर्दोगुवार छट गया, जोगी की दाढ़ी फिर वैसी-की-वैसी हो गई।

ग्रामीण आवाक-स्तमित हो गया था। दूसरे दिन उससे रहा न गया और उसने अपने पड़ोसी से बात की। उसके पड़ोसी ने अपने एक मित्र से यह बात कही, बात उड़ती-उड़ती तकिये तक पहुँच गई। तकिये की बातचीत में कोई यह कहता कि यह आवाज तो बिल्कुल वही थी, किन्तु जोगी के कई श्रद्धालु कहते कि उस पर संदेह करने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता।

आखिर लड़कों की एक टोली 'तख्तपड़ी' गई और वहाँ उनको ज्ञात हुआ कि शेर कई दिनों से बाहर गया हुआ था। गाँव लौटते ही उन्होंने चुपके में जोगी की देखभाल आरंभ कर दी। जोगी और भूत-प्रेतों के सारे भय उन्होंने दिल से दूर कर दिये। वे नदी में बैठे इस तारु में रहते कि जोगी की वास्तविकता का पता चल जाय।

दो दिनों के बाद उन्होंने देखा कि रात को दो घुड़सवार कँदरा में आए। वे सब कितनी देर तक भीतर घुसे रहे। सबेरा होने से कुछ समय पहले घुड़सवार लौट गए, बिल्कुल इसी प्रकार दूसरे तीसरे दिन जोगी के पास कोई-न-कोई अवश्य आता।

एक दिन उन्होंने देखा जमींदार स्वयं आया और वे भय के मारे वहाँ से भाग गए।

गाँव में कानाकूपी होने लगी। जिन्हें पूर्ण विश्वास था वे अपनी खाना पहुँचाने की बारी टाल देते।

कुछ दिन के बाद 'कल्लर' का एक घासी इस गाँव में आया। सारी बात सुन कर उसने बताया कि पिछले साल उनके गाँव में भी बिल्कुल वैसा ही एक जोगी आया था। कहता था कि मुझे जितने रुपये दो, मैं उन्हें दुगने कर दूँगा। आरंभ में जो कोई व्यक्ति पाँच रुपए दे, दूसरे दिन उसे दस लौटा दिये जाँय, जो कोई दस दे तो उसे बीस मिल जाँय, यह देख कर लोग जोगी पर टूट पड़े। जोगी पैसे

लिये जाय, शाम को द्वार बंद करके वह बैठे, तो उसके कमरे में जैसे रूप्यों की वर्षा हो रही थी, हुए आकाश से गिरते थे ।

लोगों ने पैसे-गहने अभिप्राय यह कि जो कुछ भी उनके पास था, बेच कर जोगी के हवाले कर दिया । जो लोग उससे दुगने हुए लें, वे फिर उसे दे दें ताकि वे भी दुगने हो जाँय । बहुतों ने तो अपनी जायदाद बेच दी । इस प्रकार एक सवेरे को जब वे उठे, तो जोगी गायब हो गया था । वह सारे गाँव को लूट कर कंगाल कर गया था ।

यह कहानी सुन कर लोगों का और संदेह बढ़ता गया, लोग और विकल हुए, जोगी की चर्चा अधिक तेज हुई ।

लगभग दो दिन के बाद पता चला कि कँदरा खाली पड़ी थी । जो व्यक्ति जोगी के लिए भोजन लेकर गया, ज्यों-का-त्यों लौट आया ।

कोंपल फूटी !

१२

जिधर-जिधर नव्वाब घूमता, रज्जो की दृष्टि भी सूर्यमुखी के फूल की भाँति घूम जाती। छत की दीवार पर से वह अपने पति को देखती जाती, देखती जाती, जब तक कि वह दृष्टि से ओझल न हो जाता, वह फूट-फूट कर रोने लगती। सारा दिन उसका दिल विकल रहता, शाम को अथवा रात को जब तक वह घर न लौट आता, उसकी दृष्टि देहली पर जमी रहती। मुड़-मुड़ कर छत की मुँडेर की ओर देखती, खिड़कियाँ खोल-खोल कर एड़ियों के बल हो-हो कर देखती रहती। कई बार दो-दो तीन-तीन दिन नव्वाब बताए बिना घर से बाहर रहता। रातों को तो अक्सर बाहर रहता, किन्तु रज्जो का यह स्वभाव न बना कि वह उसके बिना जी सके। एक बार नव्वाब पूरे चार दिन गायब रहा, उसकी पत्नी ने न कुछ खाया न कुछ पिया और सूख कर काँटा हो गई।

वह 'जी-जी' कह कर नव्वाब को बुलाती, उसे देख-देख कर जैसे उसका जी भरता। अपने हाथों से उसे नहलाती, कपड़े पहनाती कितनी देर तक उसके पाँव दबाती रहती। उसके माथे, सिर, और तलुवों में तेल भिसती रहती। प्रति दिन जब वह बाहर जाता उसे आगे से पानी लेकर मिलती, जब घर लौटता उसकी नजर उतारती। रात को सोते समय धूप जलाती। जितनी देर उसका पति घर में रहता उसे एक चाव-सा रहता प्रतिक्षण, प्रतिपल वह उसे बहलाती रहती।

नव्वाब की उसे कोई बात और कोई आदत बुरी नहीं लगती थी.

घर में बैठ कर वह मदिरागान करता, रज्जो उसे स्वयं मद्यपात्र भर कर देती। उसके मित्र सब बैठे होते, वह खिड़की के छेद में से सारा समय नव्वाब को पीते और मदहोश होते देखती रहती। जैसे स्वयं नशा-सा चढ़ रहा हो ! नव्वाब जो बात कहता वह हाँ-वै-हाँ मिलाती; उसके मित्र सारी रात घर में कोलाहल मचाए रहते, गद्दी-गंदी बातें करते, मोटी-मोटी गालियाँ बकते, अजीब-अजीब हरकतें करते, किन्तु रज्जो की भवों पर बल न पड़ता। नव्वाब नशे में छोटी-सी बात पर टुनक उठता, गाली दे देता, रुष्ट होने लगता, किन्तु रज्जो बस आगे से हँस देती।

एक दिन ये लोग आधी रात तक रंगरलियाँ मनाते और खाते-पीते रहे। नव्वाब रज्जो को बार-बार यही कहे जाता कि वह जाकर सो रहे—आखिर वह ऊपर अपने कमरे में चली गई। लगभग दो घंटे के बाद जैसे वह खिची हुई अपने आप सोई-सोई नीचे आई। उसने छेद से कान लगा कर सुना तो उसे भीतर घुंघरूओं की भंकार सुनाई दी। वह बैठी रही, सारी रात उसने झिलमिल-झिलमिल करते वस्त्र भी देखे। उसने खिल-खिलाती हँसी भी सुनी, रुपयों की भंकार भी उसके कानों में पड़ी। जब सवेरे सभा समाप्त हुई, सब चले गए, नव्वाब लड़खड़ाता हुआ दरवाजा खोलकर बड़े कमरे में आया। दरवाजे की चौखट से ठोकर खाकर वह मुँह के बल गिरने ही वाला था कि रज्जो ने जैसे उसे अपनी भुजाओं में उठा लिया और फिर उसके सिर की मालिश करने लगी।

अगले दिन, और फिर उससे अगले दिन—

उसने किसी अवसर पर एक बार भी शिकायत न की। नव्वाब को पहले की तरह प्यार करती, उसकी सेवा करती, उस पर बलि-बलि जाती यदि कभी किसी को अच्छा कपड़ा पहने देखती तो रज्जो का जी चाहता कि वह अपने पति के लिए वैसे ही वस्त्र ढूँढ़ लाए। उसकी लुंगियों में वह चुन-चुन कर सिलवटें डालती, उसके वस्त्र संभाल-संभाल कर रखती, किसी का अच्छा बाज देखती तो कहती कि वह नव्वाब का हो

जाय । किसी के कुत्ते की प्रशंसा सुनती तो उसका जी चाहता कि वह उसके पति का हो जाय । किसी के घोड़े को देखती तो सोचती कि उसका नव्वाब उस पर चढ़ा हुआ कैसा फवेगा ?

नव्वाब का कोई काम नौकर न कर सकते । रज्जो अपने हाथों से उसका खाना पकाती, उसके कमरे की सफाई करती, गर्मियों में सारी-सारी रात उसके सिरहाने बैठी पंखा करती रहती, उसके इर्दगिर्द पानी छिड़कती रहती, सुगन्धियाँ छिड़कती रहती ।

नव्वाब एक बार बीमार पड़ गया । रज्जो को खाना-पीना और सोना भूल गधा । आठों घड़ी उसके समीप बैठी दवाएं मंगवाती रहती, नमाज पढ़ती रहती, अपने दोष क्षमा करवाती रहती, रो-रो के आखिर उसने अपने पति को स्वस्थ कर लिया ।

रमजान के मास में पूरे रोज़े रखती । नव्वाब उस पर हँसता । सारा-सारा दिन उससे खाने को वस्तुएं बनवाता रहता, उसके सामने खाता रहता, रज्जो फिर भी अपने ब्रत पर डटी रहती । उसने सुन रखा था कि हिन्दुओं में ब्रत अपने पति की दीर्घायु के लिए रखे जाते हैं, रज्जो वह ब्रत भी रखती, और किसी को पता न चलने देती ।

कभी-कभी रज्जो का जी चाहता कि वह नव्वाब से कहे कि वह सारा दिन घर में उसके पास बैठ कर गुज़ारे । किन्तु जब अपने-आप बाहर जाने को उद्यत होता तो रज्जो चुप हो जाती । उसकी इच्छा को अपनी इच्छा समझती, अपनी कामनाएं उसपर बिल्कुल प्रगट न करती ।

नव्वाब के शराब पी-पी कर ऐंठे हुए पट्ट, निचुड़े हुए होठों और चट्टान के समान सख्त शरीर को जब कभी रज्जो देखती तो उसे कड़-कड़ा कर टूटी हुई चारपाई याद हो आती । सिलवटें डालते हुए उसे बटा हुआ दुपट्टा याद आ जाता, वह उस समय अनुभव करती कि चक्की में किस प्रकार मैदा दला जाता है, फिर उसे कैसे गूँधा जाता है, फिर उसे कैसे मल-मल कर सूक्ष्म किया जाता है ।

रज्जो ने स्वप्न में देखा कि उसके हाथ में एक अनमोल लट्ठू आया और सहसा गिर कर चकनाचूर हो गया। कितनी देर से वह एक रस्सा बट रही थी, बटे जा रही थी, रस्सा इतना मोटा हो जाता है कि उसके हाथ में नहीं आता। रज्जो उसे और बल देती तथा बटती है, किन्तु रस्सा बीच में से दो टुकड़े हो जाता है और सारे बल जैसे फिर बँट जाते हैं। एक बार उसने फिर देखा कि “चीरपड़” लुढ़क पड़े हैं और उनके भेड़-बकरियों के झुंड-के-झुंड गिरे और कुचले जा रहे हैं।

लेटे-लेटे कई बार रज्जो के हाथ-पाँव स्वयमेव मुड़ जाते, उनमें बल पड़ जाते, और जब जागती तो सदैव उसके अग सोए हुए होते। हिलाने से हिल न पाते, कितनी-कितनी देर वह उन अंगों को हिलाती-मलती रहती और दबाती रहती।

नवाब जितना हट्टा-कट्टा और जवान था, रज्जो उतनी ही दुबली हल्की और सुकोमल थी। कोंपलों के समान खिली-खिली और फूल-पत्तियों के समान कोमलांगी थी। मोतियों के दानों की भांति उसके दाँत भिस्सी के पश्चान् झिलमिलाने लगते और देखे न जाते। उसका गोरा-गोरा रंग था, गुलाबी-गुलाबी कपोल थे, और लंबे-लंबे उसके बाल बहुत नीचे तक गिरे पड़ते। उसकी आंखें गोल और काली थीं। उसकी नाक बड़ी तीखी और सुरूप थी। नाक के नीचे अधरों के ऊपर एक अत्यन्त प्रिय तिल था। रज्जो की माँ ‘स्यालों’ में से थी। लोग कहते, रज्जो बिल्कुल अपनी माँ पर थी, उसके रंग-ढंग माँ के-से थे, एक को छिपा लो और दूसरी को दिखा दो, कोई अंतर नहीं पड़ता। जब उसकी माँ ब्याही हुई पोठोहार में आई थी, तो अब उसे ‘हीर सलेटी’ पुकारा करते थे।

पतले-दुबले और सिकुड़े-सिमटे नौकर रज्जो को घर में और भी पतले-दुबले दिखाई देते। रज्जो उन्हें देखकर प्रसन्न न होती, काश, उसके सारे नौकर षहलवान होते। उसकी धाय जिसने बचपन से, उसे पाला-पोसा था, अब बूढ़ी हो चुकी थी। उसके मरियलपन से किड़-किड़ करते

उसके पंजर से उसका हृदय अत्यंत विकल होने लगता, आखिर रज्जो ने एक दिन उकता कर उसे जवाब दे दिया ।

एक दिन आधी रात को नशे में चूर लड़खड़ाता हुआ नव्वाब घर पहुँचा । उसके वस्त्र कीचड़ और धूल से अटे पड़े थे, उसके बिखरे और उलझे हुए बाल एक अजीब भयानक रूप से उड़ रहे थे । उसका निचला होठ सूजा हुआ और लटका हुआ था । उसकी आँखें लाल-सुर्ख हो रही थीं जैसे पपोटों में से फड़क कर बाहर आ जाँयगीं । रज्जो ने उसके भीतर दाखिल होते ही उसे सँभाल लिया, पलंग पर लेटने से पूर्व नव्वाब ने रज्जो को कलाई से पकड़ लिया और उसे भयानक-दृष्टि से घूरा— “टूट जायगी” बड़ी कठिनता से बोलते हुए उसने कलाई को झटके के साथ छोड़ दिया और पलंग पर गिर पड़ा ।

सारी रात रज्जो सो न सकी, पलंग पर पड़े-पड़े उसकी आँखें खुली रही, उसका अंग-प्रत्यंग कहता—काश, वह उसे भिभोड़ता, भंगोड़ता पीटता । “ऐ मेरे भोले साजन”—रज्जो सोचती यह मेरा नख-शिख किसके लिए है । यह उसका रंग, यह उसका रूप, यह उसका यौवन— “ओ मेरे पगले साजन” और रात समाप्त होने में ही न आती ।

कभी नव्वाब जब दोपहर को घर में ही होता, रज्जो अपनी सहेली के एक बच्चे को बुलवा कर उससे दुलार करती रहती । उसे नहलाती, उसकी आँखों में सुरमा लगाती, वस्त्र बदलती । मुड़-मुड़ कर नव्वाब को हँसता हुआ, ठुमकता हुआ, स्वर पहचानता हुआ, होंठों से चुसर-चुसर करता हुआ, अत्यंत प्यारा शिशु उसे दिखा-दिखा कर प्रसन्न होती रहती । नव्वाब के साथ अकेली बैठी वह कई छोटे-छोटे कपड़े सीती रहती । स्वेटर, जुराबें और इस प्रकार की कई छोटी-मोटी वस्तुएँ बुनती-बनाती रहती । घंटियों वाला एक अत्यंत सुंदर पालना उसने बनाया और उसे अपने पलंग के साथ बिछा लिया । यही इधर से उधर जाती हुई नव्वाब के काम करती हुई वह उस खाली पालने को हिला जाती और उसके घुँघरू कितनी देर तक बजते रहते । कई बार जब नवाब ने शीघ्रता में

बाहर जाना होता और वह उसके बटन के लिए सुई ढूँढ़ रही होती, तो पालने को धीरे से अवश्य हिला जाती। पालने के घुँघरुओं की भुत्कार रज्जो को जैसे बार-बार किसी वस्तु की स्मृति दिला जाती, किसी अभाव से उसे सूचित करती, उसे अपने जीवन की एक शून्यता की अनुभूति होती, एक मधुर-सी वेदना उसके अन्तस्तल में फैल जाती, एक विकलता-सी, एक प्रतीक्षा-सी उसे रहती।

“ओ भागवान ! मैंने बहुत देखा है तेरे खुदा को, कभी उसे आराम न भी करने दिया कर !”

एक दिन रज्जो तस्वीह पकड़े वजीफा पढ़ रही थी कि ऊपर से नव्वाब शराब पिये आ पहुँचा—उसने तस्वीह को दाने-दाने कर दिया। रज्जो के नमाज वाले स्थान पर कई बार जानबूझ कर नव्वाब बैठता और उसे चिढ़ाने के लिए शराब पीता। कभी-कभी रज्जो को पकड़ कर बलपूर्वक उसके मुँह में शराब उँडेल देता। एकाध धूँट पिला भी देता, उसकी नमाज के समय उसे जान बूझ कर किसी-न-किसी काम में लगा देता और ज्यों-ज्यों उसकी नमाज बिगाड़ देता।

पहले तो रज्जो वर्ष में छः-छः मास मायके रहा करती। किन्तु गत दो वर्षों में वह नव्वाब के यहाँ से बिम्कुल न गई। वही यदि जाती तो दो या चार दिनों के लिए मिल कर लौट आती। नव्वाब ने कई बार उसे सकेतों से महीना आध महीना मायके ही मे रहने के लिए कहा किन्तु रज्जो को घर बनाने की चाह धीरे धीरे थी।

यह सोचती—उसकी सहेली, जिसका एक नन्हा-मा बच्चा था, कभी बेकार नहीं रही, कभी अकेली नहीं हुई। बच्चे के छोटे-छोटे काम दिन-रात निकलते ही रहते थे, बच्चे के साथ बातें करनी हुई माँ बच्चे के पिता से बातें कर लेती है, बच्चे के ईश्वर से बातें कर लेती है।

और यूँ सोचती-सोचती जैसे वह तड़प उठती। अपनी तस्वीह लेकर बैठ जाती, और उसकी आँखों से आंसुओं की नदियाँ बहने लगतीं, बहे जातीं। रज्जो सोचती—“यदि ईश्वर है तो कहाँ है और किस कीमत पर अपने बंदों की कामना पूर्ण किया करता है।”

एक घोर अंधेरी रात



१३

एक घोर अंधेरी रात ! हाथ-को-हाथ सुझाई नहीं देता था । आँखें फटी-फटी दर्द करने लगतीं, जैसे चारों ओर अँधेरे की दीवारों-पर-दीवारें चढ़ी हों । ज्यों-ज्यों रात गुज़रती, अँधेरा गहरा होता चला जाता, अन्धकार प्रत्येक वस्तु को अपने भीतर समेट रहा था । कंधों पर इसको बोझ अनुभव होता, हृदय पर आतंक-सा छा जाता । एक तो अँधेरा तिलपट की तरह काला था, दूसरे आकाश पर बादल उमड़ आए थे । घटाटोप अन्धकार धीरे-धीरे नीचे उतर रहा था, पानी के साथ लदी हुए बादलों की छाया शीतल थी । जाती हुई सर्दी फिर लौट आई थी ; माणले और उससे ऊपर की पहाड़ियों से ठंडी-ठंडी हवा चल रही थी । ज्यों-ज्यों रात लम्बी होती, त्यों-त्यों अँधेरा भी गहरा होता जाता, ज्यों-ज्यों बादल समीप आते, त्यों-त्यों माणले की हवा तेज होती जाती ।

कुछ समय बाद बादल गर्जने लगे, अत्यन्त भयानक गड़गड़ाहट ! यदि एक कोने में धीमी पड़ती तो दूसरे कोने से ऊँची होने लगती । बिजली बार-बार कोंदती, जैसे तड़प-तड़प कर टूट गिरने को बेताब हो रही हो । पेड़ों में पवन की फुंकार, पेड़ों के टूटने की आवाज़, पत्तों का कोलाहल एक कँपकँपी-सी छोड़ रहा था । कभी दरवाज़ों में से सिस-कियों की आवाज़ आती, कभी पेड़ों में से आहों के स्वर निकलते, कभी अत्यन्त भयानक सीटियाँ बज उठतीं ।

जहाने की पत्नी फज्जो की ज़रा-सी आँख लगती, जहाना सोया-सोया शोर मचाकर उसे जगा देता। यह उसे आवाजें ही देती रहती कि वह फिर करवट बदलकर सो जाता। शाम से ही फज्जो देख रही थी कि जहाना बहुत विकल था, बार-बार करवट बदलता। कभी कम्बल ओढ़ लेता, कभी उतार देता, टाँगें जोर-जोर से उठाकर मारता।

‘यदि नव्वाबज़ादे को चंडाल-चौकड़ी की संगति एक दिन न मिले तो उसकी रात ही नहीं कटती।’ फज्जो सोचती थी, दो-चार दिन जो जहाना जमींदार से न मिले, और मिलकर बेहूदगियाँ न करे तो जहाना विकल रहने लगता था। ज़रा-ज़रा सी बात पर भुंभुलाने लगता था, इसलिये रात भी विकलता में कटती थी।

अगली बार जब जहाना सोया-सोया बड़बड़ाया तो फज्जो की आँख फिर खुल गई। उसे बड़ा क्रोध आया—“जा भाड़ में” यह कहते हुए उसने अपनी चारपाई दूर खींच ली, हवा और तेज हो गई थी, बादल गरज रहे थे, बिजली चमक रही थी, मुंह-सिर लपेटकर वह लेट गई।

सोते-सोते फज्जो ने सोचा कि पिछली बार भी जब उसने पुलाव पकाया था, जहाना रात भर तंग रहा था। बस, खाए जाता था, खाए जाता था। फिर उसने सोचा कि चारपाई की अदवायन भी तो बहुत ढीली थी, नींद नहीं आ रही होगी बेचारे को। हर रोज फज्जो सोचती कि वह अदवायन कस देगी, किन्तु इस घर के बखेड़ों से उसे अवकाश ही न मिलता। उसका दिल एक और बात भी कहता कि जहाना जमींदार का बिगाड़ा हुआ है—‘पिये बिना यदि दो दिन कट जाँय, तो……’
……सोचती-सोचती फज्जो सो गई।

लगभग आधी रात होगी कि सोते-सोते फज्जो को ऐसा अनुभव हुआ जैसे बाहर ड्योढ़ी की संकल किसी ने खोली हो। उसने सोचा कि शायद तेज हवा के कारण यह खड़खड़ाहट हुई है, और वह लेटी रही, किन्तु उसके बाद उसकी आँख न लगी।

‘उठकर अपना सन्देह मिटा ही लूँ’—फज्जो ने कम्बल में से मुँह

निकाला। अपने बालों को पीछे की ओर फेंककर उसने द्वार की ओर भाँका—वयः देखती है कि द्वार खुला पड़ा है। घबरा के फज्जो उठी और उसके आश्चर्य की कोई सीमा न रही, जब उसने देखा कि जहाने की चारपाई खाली पड़ी है।

एकदम फज्जो को क्रोध आया, उल्टे पाँव उसी दशा में फुंकारती हुई वह बाहर चल पड़ी। अँधेरा गहरा रहा था, बादल गरज रहे थे, बिजली चमक-चमककर पागल हो रही थी, पानी की मोटी-मोटी बूँदें तेज हवा के कारण जोर-जोर से मुँह पर लगतीं।

पत्थरों से ठोकर खाती, दीवारों से रगड़ खाती क्रोध में जलती-भुनती फज्जो गली से बाहर आ गई। आँखें फाड़-फाड़ के फज्जो ने चारों ओर देखा। सहसा बिजली फिर कोंदी और उसने देखा कि कंधे पर एक फावड़ा रखे, दूसरे हाथ में बेलचा पकड़े जहाना नदी की ओर जा रहा था। फज्जो जानती थी कि नदी में बाढ़ आई हुई थी, यह विचार आते ही वह दौड़ पड़ी।

फिसलती, गिरती, कभी-कभी आवाजें देती फज्जो दौड़ती-दौड़ती गई। जब वह नदी के किनारे पहुँची, तो उसने देखा—जहाना रस्सियों के पुल पर चढ़ गया है। दिल पर हाथ रखे हैरान फज्जो निश्चल खड़ी थी, रस्सियों के उस पुल पर कठिनाई से एक व्यक्ति के चढ़ने का स्थान था, और यदि पाँव तनिक भी लड़खड़ाए तो आदमी नीचे गिर पड़ता था। उस पुल को कोई मुसीबत के वक्त में ही उपयोग करता था। नदी यदि कई दिनों तक चढ़ी रहे और डाक अथवा कोई दूसरी आवश्यक वस्तु पहुँचानी होती, तब भी कोई चतुर व्यक्ति ही इतना साहस करता।

जहाने के बाल उसके माथे के आगे-पीछे बुरी तरह से बिखरे पड़े थे, उसका गिरेबान भी खुला था। उसकी गले की कमीज़ एक ओर लटकी हुई थी। लंगोट छोड़कर उसका शेष सारा धड़ नंगा था, पैरों से नंगा था। एक कंधे पर उसने फावड़ा वैसे-का-वैसा पकड़ा हुआ था, उसके

दूसरे हाथ में बेलचा था, बेलचा धीरे-धीरे नीचे खिसकता जा रहा था।

फज्जो 'या अल्ला, या अल्ला' कहती खड़ी रही, वह अपने स्थान से न हिली न कुछ बोली—कहीं जहाना चौंक न पड़े। जहाना बे-भ्रमक चला जा रहा था, उसका प्रत्येक पग आगे बढ़ता जा रहा था। पुल उसके प्रत्येक पग पर भूले की भाँति भूलने लगता। जहाना तो भी तीर के समान सीधा जा रहा था।

नदी में कितने ही दिनों से बाढ़ आ रही थी। इस बार वर्षा जरा देर से आरम्भ हुई थी—पानी की गूँज, लहरों के थपेड़े, ऊपर से काले बादल, बिजली—जहाना फिर भी एक जोश में, एक दानव जैसे जोश में पुल पार किये जा रहा था।

ज्यों-ज्यों जहाना नदी के बीच में पहुँचता जा रहा था, त्यों-त्यों फज्जो की 'या अल्ला, या अल्ला' की पुकार ऊँची होती जा रही थी। ज्यों-ज्यों वह नदी के बीच पहुँचता जाता, त्यों-त्यों पुल अधिक काँपता और पंखे के समान डोलता। बीच में से पुल पानी की सतह से एक फुट ऊँचा था, फज्जो सोचती कि यदि एक लहर आई तो वह सिर के बल पानी में जा गिरेगा, यह सोचकर उसने कानों पर हाथ रख लिये और उसने ऊँची आवाज़ में ईश्वर को स्मरण करना आरम्भ कर दिया।

जहाना वैसे-का-वैसा चला जा रहा था, चला जा रहा था। सामने किनारे के पास जब वह पहुँचा, तो आँधी के बगूले ने पुल को समूल भिभोड़ डाला। पानी की लहरें पुल के बीच में से जैसे सहसा गुजर गईं। जहाना तब भी होश में था और चौकन्ना था। उसने अन्तिम-पग उठाया और वह दूसरे किनारे पर पहुँच गया।

फज्जो ने अभी तक यह नहीं सोचा था कि वह जा कहाँ रहा है। पार किनारे पर पहुँचकर जहाना दौड़ पड़ा और मुँह से भी उसने कुछ बोलना आरम्भ कर दिया, किन्तु आँधी और पानी के शोर में फज्जो को कुछ भी सुनाई न दिया।

जहाना दौड़ता गया, दौड़ता गया। पार का टीला चढ़ गया और फिर आँखों से ओझल हो गया। फज्जो विस्मित-सी वहाँ पसीने-पसीने

खड़ी रही, खड़ी रही। उसे तत्काल चक्कर-सा आया, उसकी आँखों-तले अंधेरा छा गया और एक पटखनी-सी खाकर वह भी दौड़कर पुल पर चढ़ गई। इससे पूर्व कि उसे कुछ पता चलता, वह उस पार पहुँच चुकी थी।

सलवार के पाँयचे एक हाथ से पकड़े फज्जो दौड़ती गई, दौड़ती गई। बिजली की चमक में उसने जहाने को ढूँढ़ लिया, वह एक टूटी-फूटी पुरानी हवेली की ओर जा रहा था। जब फज्जो उसके पास पहुँची, जहाना खँडहरों में खड़ा था।

‘आज मैं उन्हें निकाल के छोड़ूँगा’ जहाना ऊँची आवाज में चीख रहा था, उसकी आँखों की लाल पुतलियाँ जैसे फुदक कर बाहर आने को कर रही हों ! उसके चेहरे पर एक दृढ़ धारणा की छाप थी जिससे आतंक फूट रहा था। उसके पट्टे जैसे रौंदे हुए थे, अकड़े हुए थे; फज्जो ने आगे बढ़कर उसे पकड़ लिया—“आज मैं उन्हें निकाल के छोड़ूँगा !” वह ऊँची आवाज में चीखने लगा, वह फज्जो के हाथ से अपनी बाँह छुड़ाने का प्रयत्न कर रहा था।

आंधी अधिक तेज होती जा रही थी, जर्जर और पुरानी हवेली के खँडहरों में से आँधी एक भयानक आवाज देती हुई गुजरती। जब जहाना ऊँची आवाज में चीखा तो खँडहरों के एक कोने में खड़खड़ाहट हुई और खुजली का मारा एक मरियल-सा कुत्ता पूँछ हिलाता उनकी ओर आया, और फज्जो की सलवार सूँघने लगा। फज्जो ने क्रोध में उसे परे हटा दिया और वह मरियल कुत्ता चौंककर पीछे गिर पड़ा। वहीं पड़ा-पड़ा वह च्याऊँ-च्याऊँ करने लगा, और फिर उसी कोलाहल में एक उल्लू किसी कोने में से आया तथा जोर-जोर से पंख फड़फड़ाता अन्धकार में विलीन हो गया। फज्जो हैरान-सी उसे देख रही थी कि छोटे-छोटे पक्षियों की पंक्ति कोनों और नुक्कड़ों से उड़कर शून्य में शोर मचाती आवाज़ घूमने लगी। फज्जो जोर-जोर से जहाने को किन्नीड़ रही था कि उसे होश आ जाय, वह उसे पहचान ले, किन्तु जहाना वैसे-

का-वैसा ही रहा, जैसे नशे में डूबा हुआ हो !

‘आज इन्हें निकाल के छोड़ूंगा ।’ जहाना ऊंची आवाज़ में चीखता जाता, और जब वह चुप हो जाता तो घूर-घूर कर खँडहरों की ओर देखने लगता ।

फज्जो ने उसे पकड़े रखा, पकड़े रखा । आखिर वह आप-ही-आप बहकने लगा और उसने एक लम्बी कहानी छेड़ दी ।

जहाने ने बताया कि उस हवेली के खँडहरों के एक कोने में पूरा एक परिवार दफन था । परसराम, उनकी पत्नी, उनकी जवान लड़की और दो छोटे बालक; सब-के-सब जमींदार के आदेश से जीवित चुनवा दिए गए थे और अभी तक वह पुरानी दीवार वैसी-की-वैसी ही खड़ी थी ।

परसराम एक दुकानदार था । नमक, साबुन, आटा-दाल रखता और शाम को उसकी पत्नी पकौड़े तलने बैठ जाती । कभी-कभी उनके पास कोई-न-कोई सब्जी भी होती और इस प्रकार बेचारे आजीविका चलाते । उसके तीन बच्चे थे, एक बच्चा उसकी पत्नी के पेट में था ।

एक दिन शाम को परसराम की पत्नी बाहर गली में दुकान लगाकर बैठी हुई थी । उसके पास उसकी जवान लड़की भी थी ; गली में सामने उसका बच्चा खेल रहा था कि जमींदार अकेला घोड़े पर सवार उधर से निकला । परसराम के छोटे बच्चे ने गुल्ली-डंडा खेलते हुए एक टोरा जो मारा, गुल्ली जमींदार के घोड़े के नथुनों पर जा लगी । घोड़ा सहसा बिदका और फिसलने ही वाला था कि जमींदार ने उसे संभाल लिया ।

घोड़े की घबराहट और उसके सवार की विकलता देखकर बच्चे तत्काल खिलखिला कर हँस पड़े । जमींदार ने जलती हुई आँखों से उन्हें देखा और उन्हें कुचलने के लिए उसने घोड़े के एड़ी लगादी । बच्चे दौड़ते हुए दुकानों में आ गए । इधर माँ-बेटी सहमी हुई यह कौतुक देख रही थीं, दौड़कर उन्होंने भीतर से द्वार बन्द कर लिया ।

दूसरे दिन जमींदार ने आदेश दिया कि दोनों बच्चे धरती में गाड़ के कुत्तों से फड़वाए जाँय, किन्तु परसराम और उनका परिवार रातों-रात गाँव छोड़कर जा चुके थे। क्रोधित होकर जमींदार ने चारों ओर अपने आदमी भेज दिए और शाम से पहले-पहले सारा परिवार पकड़ा हुआ वापिस लाया गया।

जमींदार ने बाहर की इस वीरान हवेली में उन्हें दीवार में चुन देने का आदेश दे दिया। उस समय उन्हें यहाँ लाया गया और जहाने ने दीवार स्वयं उठाई थी, एक-एक पत्थर उसने स्वयं लगाया था। बच्चों की गड़गड़ाहट, जवान लड़की की दिल दहला देने वाली आहों और माता-पिता की प्रार्थनाओं ने जहाने के हृदय पर कोई प्रभाव न डाला। एक मशीन की भाँति जहाना पत्थर लगाता रहा, लगाता रहा; आखिर सारे परिवार की आवाज आनी बन्द हो गई।

जहाना कह रहा था—उस दिन के बाद वह कभी विश्राम न ले सका। प्रतिदिन रात को परसराम और उसका परिवार उसे भिँभोड़ता, उसके बच्चे उसकी आँखें नोचते, उसके बाल खींचते। परसराम की जवान लड़की जलती हुई आँखों से उसकी ओर देखती—उसकी एक-एक दृष्टि में सौ-सौ धिक्कार होते। परसराम और उसकी पत्नी पटाख-पटाख उसे पलंग से नीचे गिराते, उसकी गर्दन दबोचते, उसे उल्टा लटका-लटका कर पीटने लगते, अपना कुर्ता उठा-उठाकर जहाना फज्जो को पीठ दिखाता कि उस पर उन्होंने खराशें डाल दी थीं, उनकी आत्माएं भटक रहीं थीं। हिन्दू परिवार को जलाना अनिवार्य था और उस रात उन्होंने उसे आकर कहा था कि जहाना उन्हें चिता बनाकर नियमानुसार जला दे, वरना वे उसे आग लगाकर भस्म कर देंगे।

जहाना सारा समय बेहोशी में, एक पागलपन के आवेश में बातें करता रहा। मूसलाधार वर्षा होने लगी थी। जहाने ने फज्जो की पकड़ से निकल कर उस टूटी पुरानी दीवार पर फावड़ा चलाना आरम्भ कर दिया, बादल गरज रहे थे। बिजली की एक-एक चमक जलाकर राख

कर देने वाली थी। आँधी-वर्षा की बौछार को अधिक भयानक बना रही थी। रात अभी तक घोर अन्धेरी थी, जहाना उस कोने को खोदता जा रहा था, खोदता जा रहा था—“आज इन बेचारों का दाह-संस्कार करूँगा, आज इन बेचारों का मैं दाह-संस्कार करके छोड़ूँगा !” साथ-ही-साथ वह ऊँची आवाज में चीखता जाता। बादलों की गरज, बिजली की चमक, वर्षा का शोर और आँधी का तूफान, इन सबका उस पर कोई प्रभाव नहीं हो रहा था।

एक अपरिमित-शक्ति के साथ जहाना फावड़ा चला रहा था और साँस रोके उसकी पत्नी ठगी-सी वर्षा में भीगी हुई आँखें फाड़-फाड़कर उसे देख रही थी।

अत्याचार !



१४

तख्तपड़ी की नदी आजकल बिल्कुल एक जोहड़ बनी हुई थी। इन दिनों में न वर्षा होती थी, न बाढ़ आती थी। कहीं दो चट्टानों के बीच किसी गहरी तलहटी में पानी खड़ा हो जाता और निखर-निखरकर स्रोत के समान दिखाई देता। कई बार इन स्थानों पर सोते भी फूट पड़ते; इस प्रकार गर्मियों में उन दिनों का पानी अत्यन्त शीतल होता और सर्दियों में कोसा-सा; सभी नहाने के लिए यहाँ आते। स्त्रियों के नहाने का स्थान अलग और पुरुषों के नहाने का स्थान अलग था।

प्रायः इन दिनों कछुए और मछलियाँ भी होतीं, सयय-कुसमय कोई नीचे उतरता तो देखता कि कछुए बाहर निकलकर किनारों पर बैठे धूप सेंक रहे हैं। लोग मछलियों को पकड़ लेते थे, इसलिए कभी कोई बड़ी मछली दिखाई नहीं देती थी; लोग कछुओं और केकड़ों से डरते थे। हालांकि अभी तक किसी के सुनने में नहीं आया था कि कछुओं और केकड़ों ने किसी को दुःख पहुँचाया हो। लोगों का विचार था कि केकड़ा आकर मुँह मारता है और लोहलुहान कर देता है; कछुए टाँग से पकड़कर पानी के भीतर ही खींच ले जाते हैं। एक-दो लड़के जोहड़ में डूब मरे थे, सबका यही विचार था कि कछुए उन्हें पकड़कर गहराई में ले गए थे।

एक ऊँचा टीला उतरकर नदी में जाना पड़ता था। मार्ग में कई खाइयाँ थीं, पेड़ थे, झाड़ियाँ थीं; और जहाँ तक सम्भव हो पाता कोई स्त्री उधर अकेली न जाती। लड़कियों की टोलियों-की-टोलियाँ दोनों समय कितनी-कितनी देर तक नीचे उतरकर ऊधम मचाए रहतीं; कई बार मिलकर खेलने लगतीं; कई बार पत्थरों पर बैठकर किसी की चर्चा छेड़ देतीं। यदि नहाने लगतीं, तो गर्मियों में पानी के भीतर से बाहर निकलने को उनका जी न चाहता। एक-दूसरे को गोते देतीं, एक-दूसरे पर पानी के छींटे मारतीं, जो बाहर निकलतीं, उन्हें मिट्टी मल देतीं; और जब तक थक-हार न जातीं, तब तक घर न लौटतीं।

किन्तु दोपहर को यह जोहड़ बिल्कुल सुनसान होता। कई बार सूर्य ढलने तक वहाँ कोई न जाता। कभी-कभी निर्धन किसानों की स्त्रियाँ ऐसे समय वस्त्र धोने के लिए एक-दो पत्थर सँभालकर बैठी होतीं, उनके वस्त्र धोने की आवाज ऊपर खेतों में काम करते हुए किसानों के कानों तक पहुँचती।

एक जाट गुलाब ने एक बार अपनी नवविवाहिता पत्नी को नदी पर कपड़े धोने के लिए भेज दिया। अभी दोपहर ढली नहीं थी, लड़की को भय लगता था—‘ओ भागवान ! तू नीचे चली जा, मैं यहाँ हल चलाता हूँ और तेरे कपड़े धोने की थापी की आवाज सुनता रहूँगा।’ गुलाब ने पत्नी को समझाया कि यदि उसकी थापी की आवाज बन्द हो जायगी तो वह नीचे नदी पर पहुँच जायगा। उसके कपड़े फटकारने की आवाज उसके पति को सुनाई देती रही और शाम हो गई। आखिर वह थक-हारकर नीचे गया। ज्यों-ज्यों वह नदी की ओर जाता, कपड़ों के फटकारने की आवाज जैसे धीमी होती जाती। क्या देखता है, वहाँ उसकी पत्नी कहीं भी नहीं थी और कपड़े भी गायब थे। हक्का-बक्का गुलाब यह सोच रहा था कि उसके पास के जोहड़ से कपड़े पटकने की आवाज आई—वह चट्टानों पर चढ़कर ऊपर गया, आवाज धीमी पड़ गई। फिर आवाज आनी बन्द हो गई, विस्मित और पसीने-पसीने

गुलाब यह सोच रहा था कि कपड़े पटकने की आवाज फिर पहले जोहड़ से आनी आरम्भ हो गई। गुलाब फिर उधर लौटा; जब वह चट्टान से नीचे उतरा, आवाज आनी फिर बन्द हो गई। न कपड़े थे न कपड़े धोने वाली, यह देखकर भागता हुआ किसान ऊपर फस्लो में आ गया।

सब यही कहते कि वह कितना मूर्ख है जो उसने नवविवाहिता लड़की को अकेली नदी पर भेज दिया। अभी तो उसके हाथ-पाँवों की मेंहदी भी मैली नहीं हुई थी।

फिर लोग कहते कि वह लड़की थोड़े समय के बाद आम का पौधा बनकर नदी के पास उग आई। वहाँ, जहाँ से उसे गुलाब के खेत दिखाई देते थे। सारा-सारा दिन और सारी-सारी रात यह पौधा गुलाब के खेतों की ओर देखता रहता। अब भी उस आम के पौधे के समीप से निकलते हुए लोग एक अत्यन्त करुणापूर्ण-स्वर में किसी लड़की को गाता हुआ सुना करते थे :

मेरे आम न तोड़ !

मेरी डाली न मरोड़ !!

यह एक लम्बा गीत था—कि “मैं एक नवविवाहिता दुल्हन हूँ। मेरा पति मेरे कपड़े धोने की आवाज सुन रहा है !”

उस पत्थर पर अकेली भागभरी को वस्त्र धोते समय सहसा यह कहानी स्मरण हो आई थी। दोपहर ढल रही थी, कितनी देर वह “मेरे आम न तोड़, मेरी डाली न मरोड़” वाला गीत गाती रही, गाती रही। स्वयमेव यह गीत गाते हुए उसकी आवाज ऊँची हो जाती और सामने की दीवार से टकरा-टकराकर लौट आती। गुंबद की-सी उस आवाज से भागभरी को यह अनुभव होता जैसे नदी पर चहल-पहल बढ़ गई हो !

भागभरी ने पहले अपने पति बहादुर के वस्त्र धोए, फिर अपने लड़के फर्मान की सलवार उठाई। अब तो फर्मान और बहादुर के वस्त्रों

में कोई अधिक अन्तर नहीं रहा था। फर्मान जवान हो गया था, धीरे-धीरे फर्मान की सलवार भी भारी हो गई थी—फर्मान कितना गोरा था, बिल्ली की-सी उसकी आँखें कितनी प्यारी थीं, उसका शरीर जैसे अत्यन्त सुकोमल हो। जब वह धूल में दौड़ता-भागता घर का काम-काज करता, तो यों जान पड़ता जैसे मैला-मैला हो रहा हो ! यदि खेलता तो सबका अगुआ होता, यदि गली में से गुजरता तो सब उसे सरदार समझते। आयु में उससे पाँच-सात वर्ष बड़े लड़के भी उसकी बुद्धि की प्रशंसा करते थे। फर्मान के खेल भी अलग थे—लड़कों को लाइन में सीधा खड़ा कर देता, उनके हाथों में सीटियाँ दे देता, और फिर आदेश देकर उन्हें क्रम से आगे-पीछे चलाता। उसके छः साथी सब-के-सब लड़के उसका कहा मानते, मिलकर बैठते, मिलकर खाते, बाहर फ़स्लों में मिलकर जाते। उपवनों में आँख बचाकर घुस जाते और उन्हें जो कुछ मिलता, तोड़ते और खाते रहते। एक बार जमींदार के बाग पर भी जा टूटे थे; जब माली ने फर्मान को पकड़ लिया, वह उसे उल्टे डाँट पिलाकर चला गया। फर्मान कहता कि वे फ़स्लें और बागीचा उसके अपने थे, क्योंकि किसानों के परिश्रम ने ही उन्हें बनाया था—और माली हक्का-बक्का मुँह बाएँ उसकी ओर देखता रहा।

भागभरी के भीतर की ममता यूँही सोचती जा रही थी, सोचती जा रही थी कि सहसा उसके हाथ से कपड़े धोने की थापी फिसली; और वह क्या देखती है कि सामने किनारे पर खड़ा नव्वाब मुसकरा रहा है। भागभरी ने तत्काल पास पड़ा हुआ दुपट्टा अपने कन्धों पर ओढ़ लिया, वह पसीने-पसीने हो चुकी थी। आँखें झुकाए हुए वह यह नहीं जानती थी कि क्या करे और क्या न करे। जैसे वह बेसुध हो गई हो, उसमें शान्ति न रही हो, वह क्षण-भर के लिए यूँही बठी रही। फिर उसने सहसा अनुभव किया कि उसकी नग्नता अभी तक ढँक नहीं पाई थी। वह छलाँग लगाकर पानी के भीतर चली गई, जोहड़ के बीच पहुँचकर उसका सारा धड़ पानी में डूब गया, उसका मुँह केवल बाहर था।

नव्वाब अभी तक सामने खड़ा उसे घूर-घूरकर देख रहा था, उसके अंग-अंग में भरी हुई शरारत मुसकरा रही थी। भागभरी जोहड़ के बीच पहुँचकर एक शेरनी की भाँति बिफरी और दहाड़ने लगी। नव्वाब वैसे-का-वैसा हँसता रहा, वह धीरे-धीरे जोहड़ के किनारे तक आ गया, और उसने भागभरी के पहनने के कपड़े उठा लिये।

यह देखकर भागभरी बोखला गई, फिर उसने नव्वाब की अनुनय-विनय की, उसे समझाती रही। कभी मिन्नत करती कभी उसकी समझ-बूझ को धिक्कारती, नव्वाब निर्लज्ज था, संसार-भर का गुण्डा था और उसने उसकी एक न मानी।

भागभरी ने निदान तंग आकर कहा कि वह उसके सामने वहीं डूबकर मर जायगी। नव्वाब और ऊँची आवाज में हँसा, यह देखकर भागभरी ने प्रयत्न किया कि वह अपने-आपको डुबा दे, किन्तु पानी था कि उसे बार-बार ऊपर की ओर उछालता था। पानी से भीगा-भीगा उसका सिर जब फिर ऊपर आया, नव्वाब और जोर से हँसा।

कोई उधर नहीं आ रहा था, वैसे उस समय कभी-कभी जोहड़ पर मोहल्लों-के-मोहल्ले टूट पड़ते थे। दिन ढलता जा रहा था, नदी के तट पर आम का पौधा चुपचाप खड़ा था; और उसके पीछे किसी के पैरों की आवाज सुनाई नहीं दे रही थी।

“देख, कितनी देर हो गई है”, भागभरी ने फिर अनुनय-विनय की—“मेरा अंग-अंग पानी में ठिठुर रहा है और जमता जा रहा है। मैं कहती हूँ कि क्या तुझे किसी को जवाब नहीं देना ? तुझ पर ईश्वर का कोप टूटे—वह इतना अत्याचार कभी नहीं सह सकता।”

किन्तु नव्वाब अपने हठ पर अड़ा हुआ था, अपनी बेईमानी पर डटा हुआ था, मुसकराता रहा, मुसकराता रहा। उसके पाँव लड़खड़ा रहे थे, लाल-मुख उसकी आँखें मदिरा के कारण चढ़ी हुई थीं। फिर भी वह अपनी जेब में से बोटल निकालकर थोड़ी-थोड़ी देर के पश्चात् घूंट भर लेता। उसने एक-दो बार बोलने का प्रयत्न भी किया, किन्तु

यह जान पड़ता था जैसे वह बोल ही नहीं सकता था; उसकी जिह्वा जैसे तालू के साथ चिमट गई थी ।

भागभरी को ऐसा अनुभव होने लगा, जैसे वह एक धक्का देकर उसे पानी में गिरा देगी । आखिर उसने उससे कहा कि केवल एक कमीज वह उसे लौटा दे, उसे पहनकर वह बाहर आ जायगी — “मैं कमीज पहनकर भाग नहीं जाऊँगी, तू मेरा स्त्री होने का विचार कर, मुझे केवल एक कपड़ा दे दे !”

किन्तु नवाब जैसे उसकी बात सुन ही नहीं रहा था, पत्थर के समान वैसे-का-वैसा स्थिर खड़ा था ।

भागभरी ने अपने पति के बिखरे हुए कपड़ों की ओर व्यर्थ ही देखा । भागभरी ने अपने जवान लड़के के कपड़ों की ओर ताका—उन कपड़ों को पहनने वाला सरदार बेटा अपने साथियों को आदेश दे रहा होगा ।

भागभरी को ऐसे लगा, जैसे उसका सारा शरीर जम गया हो । क्षण-भर यदि वह और पानी की ठंडक में रही तो वह पानी से निकल नहीं सकेगी ।

भागभरी ने तंग आकर फिर भुँझलाना आरम्भ कर दिया, उसे बाप-दादा की सौगन्ध दी, किन्तु नवाब जैसे मिट्टी का बना हुआ था कि उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था, कोई बात उसे न पिघलाती । एक अत्यन्त भयावने ढँग से वह अपने दांत पीसता, अपनी आँखें चमकाता और भागभरी की ओर मूर्खों की भाँति घूरता ।

“तेरा सर्वनाश हो, मैं तेरी माँ की जगह हूँ !”

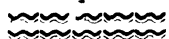
यह वाक्य भागभरी के होठों में दबा हुआ था कि नदी के दूसरे किनारे दीवार-ऐसे टीले पर से एकाएक एक भेड़ गिरी, फिर एक और, फिर एक और, और पलक झपकते सारे-का-सारा रेवड़ नीचे आ रहा, जैसे भूकम्प आ जाता है, जैसे संसार समाप्त होने लगता है, नदी के पानी में उथल-पुथल मच गई ।

भागभरी को [पता न चला और कपड़े फँककर, नव्वाब नौ-दोग्यारह हो गया ।

विस्मित और अवाक्, किनारे पर खड़ी भागभरी भेड़-बकरियों से भरपूर जोहड़ की ओर देख रही थी । कुछ मर चुकी थीं और कुछ मर रही थीं—दीवार-से टीले पर खड़ा एक बुली कुत्ता घूर-घूरकर नीचे की ओर देख रहा था । उसकी जिह्वा बाहर निकली हुई थी, उसके मुँह से भाग बह रही थी, बिल्कुल नव्वाब के मुँह से निकले हुई शराब की बूंदों के समान, जिन्हें वह जिह्वा फेरकर कभी-कभी चाटता था ।

हाँपती हुई भागभरी चुपके से चट्टान पर चढ़ गई । ग्राम के पौधे तले से निकलते समय उसे आवाज आई “ये तेरी माँ की जगह है, तेरी माँ की जगह है !” और यह आवाज उसके कानों में गूँजती रही. गँजती रही, जब तक वह दूर निकल गई ।

सफेद-पत्थर



१५

हवेली की मुँडेर पर एक चील बैठी थी। जब सबेरे बहादुर काम पर पहुँचा, तो पहले उसने नीचे से, और फिर उसने ऊपर चढ़कर उसे उड़ा दिया।

जहाँ भी बहादुर काम किया करता, वहाँ समय से आध घंटा पहले पहुँचा करता, अवकाश के समय के बाद तक ठहरता, अपना काम जी लगाकर, जान तोड़कर किया करता। कभी किसी को शिकायत का अवसर न देता, अपने साथ के श्रमिकों से अधिक सम्बन्ध नहीं रखता था। बहुत कम् बातें करता; जैसे घर में चुपचाप पड़ा रहता, ऐसे ही काम करते समय अपनी धन में संलग्न रहता। बहादुर का काम सदैव साफ़-सुथरा होता; जहाँ दो मजदूर लगते, वहाँ वह अकेला उतना ही काम कर देता ! फिर भी बहादुर के साथ के मजदूर, शिल्पी, बढ़ई, सफेदी और टीप करने वाले मिस्त्री बन गए। किन्तु बहादुर ईंटें, चूना, गारा ढोने वाला मजदूर ही रहा। बहादुर अधिक लोभ नहीं किया करता था, उसका और उसके परिवार का पेट भर जाता था, और इससे अधिक की उसे आवश्यकता भी नहीं थी, न वह किसी की बुराई में न भलाई में।

जहाने ने कई बार उसे फिर समझाया कि वह जमींदार के अस्तबल

में अथवा बाग में काम करें, उसकी पत्नी भी उस काम में उसका हाथ बँटा सकती है और वे दोनों जमींदार की हवेली में आ रहें। बहादुर को तो इसमें कोई आपत्ति नहीं थी, किन्तु उसकी पत्नी नहीं मानती थी; और वह सदैव टालमटोल कर जाता तथा अब जब से उसका लड़का जवान हुआ था, वह बात-बात में जमींदार के गुंडों के साथ मजाक किया करता था। उसके पिट्ठुओं और चाटुकारों पर नाक-भौं चढ़ाया करता था। जब जमींदार की किसी हवेली के निकट से निकलता, तो वह अपने साथियों से कहा करता कि वे सारी हवेलियाँ उनकी अपनी थीं। ऊँची-ऊँची हवेलियाँ, मीलों तक फैले हुए उपवन, जमींदार और उसके चाटुकारों की घोड़ियाँ खेल-खेल में वह इन सबको अपने साथियों में बाँटता रहता, जैसे किसी ने कोई स्वप्न देखा हो। इस प्रकार की नई-नई बातें उसे सूझतीं और उसके साथी दंग रह जाते। वह कहता कि उन हवेलियों को गिराकर वह समतल कर देगा, और उसके साथियों की समझमें यह बात न आती।

बहादुर आज काम पर पहले से अधिक सबेरे आ गया था। चील उड़ा कर वह कुछ समय मुँडेर के पास खड़ा रहा कि चील फिर न आकर वहाँ बैठ जाय। बहादुर किसी चील को कोठे पर बैठा हुआ नहीं देख सकता था—“यह नामुराद सदा उजाड़ और वीराना माँगती है !” फिर बहादुर ने सोचा कि उस हवेली को तो ये लोग ढा रहे हैं, इससे अधिक उजाड़ और क्या हो सकता था।

कोठे पर खड़े-खड़े बहादुर की दृष्टि बाहर की ओर पोठोहार की धरती पर पड़ी, जैसे उसकी आँखों में मादकता भर गई हो। उसका सिर झुक गया—फसलों में कुत्ते दौड़ रहे थे, सलवारें उड़ रहीं थीं, लहंगे सरसरा रहे थे, हाथ उठते थे, ऊँची आवाजें आती थीं, गीतों के बोल गूँजते रहते थे। हरे-भरे लहलहाते खेत—कभी ये सब खाइयों में छिप जाते और कभी टीलों पर चढ़े दृष्टिगोचर होते। कहीं पत्थर-ही-पत्थर थे, पत्थरों के पास कहीं बरसाती नाला ठाठें मार रहा था, कहीं

रहट चल रहा था, खं-खं टिक्-टिक् ! जहाँ दूर दिखाई देता हुआ धुंधला आसमान चट्टानों से मिल रहा था, वहाँ झाड़ियाँ-हीं-झाड़ियाँ थीं, चारों ओर बेरों से अटी हुई बरियाँ थीं। भेड़ बकरियों के रेवड़-के-रेवड़ झाड़ियों पर टूटे पड़ते थे, और उन रेवड़ों के साथ चरवाहे बेरियों को नोच-नोचकर खाते, भोलियाँ भर-भरकर फसलों में काम करती हुई पोथोहारनों में बाँटते। मंद-मंद शीतल समीर बह रहा था, जिसमें एक मादकता भी, सुगंध थी। गाय-भैंसों के भुण्डों-के-भुण्ड गाँवों से निकल कर चारों ओर से आ रहे थे। बैलों की गरसा में पड़ी हुई घंटियाँ, कुत्तों, के संकेत समझती हुई गौएँ, भैंसों की पीठों पर बैठे हुए चरवाहे, ठुमक-ठुमक अपनी चाल चलते हरियाली की ओर एक गहरी तलहटी में चलते जा रहे थे। कभी-कभी हवा का एक ऐसा झोंका आता, जिससे सारी-की-सारी घाटी जैसे हिल जाती। तिलियरों की पंक्तियों-की-पंक्तियाँ एक खेत से उड़कर दूसरे खेत पर जा बैठतीं, फास्ताओं के जोड़े एक दूसरे के साथ सट कर चोंच-में-चोंच डालते, पंखों-से-पंख मिलाते, प्रतिपल प्रेम के उदक से केलि कर रहे होते। कबूतरों की टोलियाँ ऊपर आकाश से नीचे उतरतीं, नहाते हुए, धुले हुए, दूध ऐसे श्वेत, काले, सलेटी रंग के, चितकबरे, रंगबिरंगे कबूतर, फिसलते हुए पेड़ों और मुँडेरों पर आ टिकते। और जब गगन-मंडल पर तेजी के साथ मुर्गाबियाँ गुजरती तो एक फुँकार की ध्वनि उठती और बस—बटेर जितने एक खेत से दूसरे खेत में छिप-छिपकर बैठते, उतने अधिक फँसते, और उनके ढेरों-के-ढेर बाजारों में आकर बिकते।

सोचते-सोचते बहादुर अपने विचारों में डूब-सा रहा था कि उसे नीचे हवेली के दालान में चहल-पहल बढ़ती हुई अनुभव हुई... और बहादुर नीचे आ गया।

इतने बड़े भवन को आजकल गिराने का काम हो रहा था, उसकी जीर्ण-शीर्ण दीवारें गिराई जातीं, उसके स्तम्भ तोड़े जाते, देर से खड़ी हुई उनकी छतें नीचे बिछा दी जातीं।

कई श्रमिक इस काम पर लगे हुए थे, हवेली भी कोई छोटी नहीं थी। प्रत्येक टोली ने उसका एक-एक भाग सँभाला हुआ था। फाबड़े, बेलचे, प्रत्येक टोली के पास अपने थे। बहादुर तथा पाँच अन्य मजदूर एक हिस्से में काम कर रहे थे, जो दूसरों से कुछ दूरी पर थे।

बहादुर जब कभी काम में जुटता अपनी जान लड़ा देता। पसीने-पसीने हो जाता, एक क्षण के लिए आराम न करता। उसके साथी कभी पानी पीने के लिए, कभी हुक्के के कश लगाने के लिए, कभी नमाज़ के बहाने, कभी यह कहकर “जरा सी देर के लिए साँस ले लें” खिसक जाते। बहादुर सभी काम करता—टोकरी भरता, बेलचा चलाता, फावड़ा चलाता, गेनती से कठोर-से-कठोरतम धरती को उधेड़ देता। वैसे भी बहादुर जीवन में कठिन-से-कठिन काम किया करता था, किन्तु काम के समय किसी दूसरे का व्यर्थ गीत गाना अथवा हँसी-ठठ्ठा करना उसे एक आँख न भाता था, स्वयमेव काम किये जाता।

उसके साथ के मजदूर अक्सर उसे जमींदार का सच्चा हितषी कहा करते थे। जितना अधिक वह काम करता, उतना अधिक उसके साथ ठठ्ठा किया जाता। किसी-किसी दिन तो बहादुर अकेला इतना काम करता जितना अन्य सब मिलकर करते। बहादुर के पट्टों में इतनी शक्ति नहीं थी जितनी काम करने की चाह थी; फिर भी वह बिना किसी की सहायता के दीवारें गिरा देता और स्तम्भों को धूलिसात् कर देता, किसी भवन को गिराने के सबसे कठिनतम कार्य यही थे।

काम अभी कठिनता से आरम्भ हुआ था कि बहादुर ने क्या देखा कि जहाना उधर आ निकला है। जहाना जो कुछ बहादुर से कहा करता था, उसमें उसे कोई आपत्ति नहीं थी, पर उसकी समझ में नहीं आता था—उसकी पत्नी क्यों अपने हठ पर अड़ी हुई थी कि जमींदार की हवेली में जाकर नहीं रहेगी; उसके घर का कोई काम नहीं करेगी। अब भागभरी का लड़का भी जवान हो गया था, और वह जमींदार के सम्बन्ध में कुछ दूसरी तरह की ही बातें किया करता था।

जहाना कितनी देर तक बहादुर और उसके साथियों को काम करते देखता रहा, और बहादुर के काम की विशेष प्रशंसा करता रहा। एक गति से चलता हुआ बहादुर का फावड़ा जहाँ-जहाँ पड़ता, वहाँ-वहाँ बालिश्त भर गहरा गढ़ा बन जाता। उसका फावड़ा कभी व्यर्थ की चोट न लगाता, उसका बेलचा अत्यंत सुचारु ढंग से समेटता-लपेटता और साफ़ करता जाता।

जब बहादुर ने आज एक बार फिर इन्कार कर दिया, जहाने को उस पर दया आई। उसने दर्द भरी नजर से उसे देखा, और फिर हवेली के दूसरे भागों में काम करते हुए मजदूरों की ओर चला गया। लगभग आध-पौन घंटे बाद वह लौट आया—बहादुर वैसे-का-वैसा, सलंगनता से अपने काम पर जुटा हुआ था। जहाने ने बहादुर को कुएँ से एक ठंडे पानी का डोल लाने के लिए भेजा, और जब वह आँखों से ओझल हो गया, उसने उसके साथ के दूसरे मजदूरों को इकट्ठा किया और कितनी देर उनके साथ खुसर-फुसर करता रहा। आखिर सारे-का-सारा टोला एक छत के नीचे जा खड़ा हुआ और जहाना हाथों से संकेत कर-कर के समझाता रहा।

बहादुर पानी लेकर आ गया। जहाने ने उसके हाथों से शीतल जल पिया और उसे प्रसन्न चित्त से जैसे आशीष दी—“बहादुर तू जीता रहे ! और ईश्वर तुझे लड़के दे !”

और जहाना फिर चला गया।

बाहर अपने काम में व्यस्त और फावड़ा चलाते-चलाते बहादुर बार-बार सोचता कि जहाना इतना बुरा आदमी तो नहीं था, जितना उसकी पत्नी उसे समझती थी। और वह विस्मित था—भागभरी क्यों यूँ अपने हठ पर डटी हुई थी, और इतने वर्ष बीत गए थे।

बहादुर ने आकाश की ओर देखा और अनुभव किया—आकाश कितना पुराना हूँ ! फिर उसे अपनी आयु का विचार आया। बहादुर ने सोचा कि वह बूढ़ा हो रहा था। यदि उसका वह लड़का जीवित होता

जिसके मस्तक पर त्रिशूल था तो वह संभवतः अधिक बूढ़ा लगता । अभी बहादुर के बूढ़ा होने का कोई समय नहीं था, भागभरी उसकी पत्नी उसके घर में थी, और फिर उसकी पत्नी का लड़का ! बहादुर कैसे मर सकता था ?

हे कंटीले बबूल ! तेरी छाया शीतल है
राहगीर तेरी छाया तले बैठ जाते हैं
और महफिल लग जाती है !

दूर खेतों में कोई गीत गा रहा था, गाए जा रहा था । बहादुर लाख प्रयत्न करता, किन्तु बार-बार उसका ध्यान उस गीत की ओर खिंच जाता ।

बहादुर हैरान था—कोई तनिक-सा ऊँचा बोलता अथवा कोई रूखी आवाज देता तो बार-बार उसका हृदय बैठ जाता । शरीफ़े ने पत्थर पर गेनती चलाते हुए साँस ज़रा ज़ोर से लिया तो बहादुर चौंककर बड़ी कठिनता से गिरते-गिरते संभला । आज बार-बार उसे पसीना आता और बार-बार माथे पर अँगुली फेरकर पानी की धार गिराता ।

जभी उसके साथियों ने परामर्श दिया कि एक ही बार किनारों को उखेड़कर छत गिरा दी जाय । किन्तु यह बात बहादुर को न जची—“न जाने आज मे वयों सबेरे-सदेरे थक गया हूँ !” उसने आखिर अपने एक साथी से कहा और वह उत्तर में केवल ‘स’ दिया ।

कुछ समय बाद आज बहादुर को पहली बार सामने एक पेड़ तले बैठकर सुस्ताता देखकर उसके अन्य साथियों ने उसे छेड़ना आरम्भ कर दिया । बहादुर उठकर अपने काम में जुट गया ।

“बहादुर यार पानी पियेगा ?” उसके एक साथी ने पानी का कटोरा समाप्त करते हुए उससे पूछा—फिर उसने उसे स्मरण कराया कि पोठोहार का-सा शीतल जल कहीं और नहीं मिलता ।

इतने समय में बहादुर के देखते-देखते उसके साथी श्रमिकों ने किनारे उखेड़ने आरम्भ कर दिये । बहादुर में शक्ति नहीं थी, गेनती कहीं

चलाता किन्तु वह पड़ती कहीं। आखिर तंग आकर वह पीछे हट गया। बबूल के पेड़ तले उसकी आँख लग गई और वह लेट गया। सोते-सोते बहादुर ने स्वप्न में देखा कि उसका धड़ टुकड़े-टुकड़े हुआ पड़ा है, और वह ताड़वृक्ष की गोंद से उन्हें जोड़ रहा है। जिस टुकड़े को बहादुर हाथ लगाता, वही टुकड़ा कहता है कि पहले दूसरे को जोड़ ले। और इस प्रकार कोई टुकड़ा उसके हाथ नहीं आता। फिर बहादुर ने देखा कि कोई पथिक उसके टुकड़ों पर आकर दूध गिराता है, और सारे-के-सारे टुकड़े स्वयमेव में जुड़ जाते हैं।

पसीने में तर बहादुर सहमा हुआ उठा। उसके साथी उसे आवाजें दे-देकर थक गए थे। बहादुर को अपने आप पर अत्यन्त क्रोध आया और वह एक आवेश में उठकर काम पर जुट गया। उसके जिम्मे एक खम्भे को संभाले रहना था, ताकि अन्य लोग किनारे खोद लें।

ज्यों-ज्यों किनारे खिसकते, छत चिरचिराने लगती, किन्तु बहादुर अंधाधुंद खम्भे को पकड़े स्तम्भवत् खड़ा रहा। प्रतिक्षण प्रत्येक चोट पर खम्भे का बोझ बढ़ता जा रहा था और बहादुर के चेहरे पर रों जैसे उभर-उभर कर बाहर आ रही थीं। उसके माथे का, सिर का, कंधों का पसीना बह-बह कर उसके गुल्फों तक जा रहा था। उसके ऊपर के दाँत निचले होठ में खुल रहे थे, उसकी आँखें व्यग्र हो उठी थीं, जैसे इस भावावेश से निकलकर बाहर आ जायगी।

“अबे ओ बहादुर ! इस खम्भे को पकड़े रहना !” उसे बार-बार ये आवाज आती और उसके साथी उसे यह विश्वास दिलाते कि वे स्वयं अभी तक अग्रहाते में खड़े किनारे उधेड़ रहे थे। बहादुर बोझ-तले बिल्कुल झुक गया था, वह जानता नहीं था कौन कहाँ है ? कौनसी आवाज किधर से आ रही है ?

बहादुर ने खम्भा संभाले रखा, संभाले रहा ! उसके साथी ‘शाबास शोरा’ कहते हुए फावड़े-पर-फावड़ा और गेनती-पर-गेनती चला रहे थे।

जैसे कोई सोया हुआ जाग पड़ता है, बहादुर को भी ध्यान आया कि उसने आखिर खम्भा पकड़ा ही क्यों था ? वह उसे छोड़ दे तो क्या बनेगा ? इतने में एक अत्यंत क्षीण-सी चिरचिराहट हुई और छत नीचे गिर पड़ी ।

एक कोलाहल उठा, एक कुहराम-सा मच गया । गर्दोगुबार में खड़े बहादुर के साथियों को यह निर्णय करने में कोई देर न लगी कि बहादुर छत के नीचे आकर बिन आई मर गया है । इससे पहले कि लोग वहाँ पहुँचते, सब यह जानते थे कि उसे क्या कुछ कहना है ।

गर्दोगुबार उठ-उठकर, ऊँचा हो-होकर नीचे बैठ गया ।

त्रिजन !^१



१६

फूलां, साहबो, सलेटी, सतभराई और आयशां त्रिजन की रीनक थीं। इनके अतिरिक्त लड़कियों के भुरभुट-के-भुरमुट इस दालान में आते, सारा दिन एक मेला-सा लगा रहता। लड़कियाँ काम करतीं, खेलतीं, खातीं; और जब थक जातीं तो दूसरों की चर्चा ले बैठतीं। बातों से बातें निकलतीं, जैसे अंटी के साथ अंटी जोड़ दी जाती है। गली, मोहल्ले और प्रदेश की कोई ऐसी बात न होती जो उन तक न पहुँचती, और फिर मिलकर ये स्त्रियाँ राई का पहाड़ बना देतीं।

आयशां सबसे अधिक सुन्दर थीं। सतभराई उससे कम। सलेटी फिर उससे कम, और शेष सब पोठोहारने थी, गोरी-चिट्ठी, कोमल-कोमल, सांवली और सलोनी; किन्तु एक प्रकार का आकर्षण सब में था। लम्बी-लम्बी गर्दनें, पतली-पतली कमरें, गोल-गोल सुडौल अङ्ग, बात-बात पर दोहरी हो-हो जातीं। उनके रंग-बिरंगे दुपट्टे, उनकी कसी हुई कमीजें, उनकी चमक-चमक पड़तीं दूध ऐसी श्वेत सलवारें, उनकी तिल्लेदार जूतियाँ, उनकी चोटियाँ एक से एक बढ़कर प्यारी थीं।

गीत उन पोठोहारनों के जीवन थे, खेलतीं और अपने-आप गाती रहतीं। कई बार चिलचिलाती धूप में ढोलक लेकर बैठ जातीं। न ढोलक के चमड़े फटते न उनके गल बैठते। पोठोहारनों के गीत गंभीर-स्नेह, उमड़ते-चढ़ते प्यार, सिसकती स्मृतियों में और कभी-कभी आँसुओं का

१ स्त्रियों का एक स्थान पर बैठकर चर्चा कातना।

अटूट लड़ियाँ होते थे। सास का अत्याचार, समुर का बुढ़ापा, देवर का यौवन, पति की नौकरी, भाई की वीरता, माँ का राज, सावन की झड़ी, जाड़े की न समाप्त होने वाली रातें, आम के पेड़ों का बौर, निम्बुओं का पकना, चर्खों की संगीत-ध्वनि, दालान की सनसनाहट, कई ऐसे विषय थे जो इन गीतों में पाए जाते थे। और कोई ऐसा हृदय नहीं था जो इन गीतों को अपने से सम्बन्धित न कर लेता हो। और कई बार निजी मामलों के ये इतने समीप पहुँच जातीं कि चटाख-पटाख प्रश्नोत्तर आरम्भ हो जाते। एक-एक बोल में दबी हुई भावनाएं उभार लेतीं; कभी-कभी दूर कहीं दिल की गंभीरताओं में छिपे हुए छाले फूट पड़ते। ढोलक की स्वरयुक्त लय, त्रिजन का विशाल-एकान्त, धरेक की सघन छाया, जवान पोठोहारनों को मदमस्त कर देतीं। गीत इन लड़कियों को घुट्टी में मिले होते और स्वयमेव इनके कोष में इन गीतों की वृद्धि होती रहती। इस प्रकार लोकगीत त्रिजन के साथ-साथ चलते रहते।

और कहीं-कहीं अहाते में अथवा अकेली बेरी की शाखाओं में छिपी हुई सहेलियाँ, परस्पर किसी राँभे की कात्पनिक बातें, स्वप्न ऐसी उखड़ क्रम और तेज़ी के साथ सुनाती रहतीं। फूलां सदैव ऐसी जोड़ियों को जाकर छोड़ती—“क्यों झूठ बोलती हो ! कुछ तो विचार किया करो—कहीं आकाश न सिर पर गिर पड़े !” किन्तु आकाश धरती पर कभी नहीं गिरा था। लड़कियाँ नित-नई एक कहानी नए ढंग से छोड़ देतीं और उन किस्सों के सहारे वे धरती-आकाश में घूमती रहतीं। किसी का राँभा रूठ जाता, किसी का साजन प्रसन्न हो जाता, किसी को गाने की कामना होती, कोई रंगदार चूड़े के लिए तड़प रही होती, कोई कव्वों के हाथ सन्देश भेजती, कोई चिड़ियों को बार-बार चुगगा डालती।

“उधर साँभ होती है और इधर मेरा दिल डूबने लगता है !” कोई जली हुई आवाज से लेबे-लेबे साँस लेकर कहती—“रात को सोते में

मेरा धड़ पलंग पर पड़ा रहता है और मैं स्वयं नदियों पर घूमती रहती हूँ, खाइयों में ढूँडती रहती हूँ, टीलों पर चढ़-चढ़ कर देखती रहती हूँ !” न उसके पाँव में काँटे चुभते और न पानी उसे बहा ले जाता, न पत्थर उसे घायल करते। बिरादरी का, अपने पड़ोस का भय उसे खाए जा रहा था, उसे यह भय न जागते छोड़ता और न रात को उसे विश्राम लेने देता। उसे ऐसा अनुभव होता जैसे कुत्ते उसके पीछे भाग रहे हों ; और जब कुत्ते उसके समीप पहुँचते तो वे सब-के-सब आदमी बन जाते, जिनके हाथों में लम्बी-लम्बी लाठियाँ और छुरे पकड़े होते। कभी उसे ऐसे जान पड़ता कि वह एक पेड़ तले सोई पड़ी है, पास ही उसका प्रियतम लेटा हुआ पत्थर बन गया है और क्षितिज तक धूल बढ़ती जा रही है, बढ़े जा रही है, घोड़ों की टापों की ध्वनि और ऊँची होती जा रही है, उनके घोड़े फास्ताओं का जोड़ा बनकर पेड़ में छिप जाते हैं। एक बार उसे ऐसा अनुभव हुआ जैसे चारों ओर रुधिर-ही-रुधिर छिटका हुआ है और हर जगह अड़ोस-पड़ोस के लोग बत्तीसी भींच-भींचकर देख रहे हैं। रता की सरिता में जहाँ कहीं सीधी भी वह दृष्टि डालती तो अपने चेहरे के स्थान पर बिरादरी के लोग उसे कोसते दिखाई देते।

कहीं—नई-नवेली दुल्हनें और कँवारी लड़कियाँ बड़ी-बूढ़ी स्त्रियों से पाठ सीखती—कैसे सास की बातें अनुसुनों की जाती हैं, कैसे प्रियतम को बहलाया जाता है, कैसे मायके सन्देश भेजे जाते हैं, भाई को बुलाया जाता है, पड़ोसियों से मेलजोल के गुर, सम्बन्धियों से निबटने के टोटके, महँदी कब लगाई जाती है, कब उतारी जाती है, कैसे उतारी जाती है, कैसे बुखार चढ़ता है, कैसे बुखार उतरता है, कौनसा जादू-टोना करने से दालान में सन्तान खेलती है, कौनसा मंत्र पढ़ने से यौवन इठलाता है, रंग खिलता है—और न जाने क्या-क्या।

खेलते समय एक मुसीबत-सी आती। शोर होता, किसी को कोई खेल अच्छा लगता और किसी को कोई। कई बार अलग-अलग टोलियाँ

बनाई जाती, जो 'अड्डीतरप्या' न खेल सकतीं वे 'गिट्टे' खेलतीं। खेलतीं-खेलती एक-दूसरी की सास को जी भर कर गालियाँ देतीं, उनकी छोटी-छोटी दुबलताओं की खिल्ली उड़ातीं। कई बार कोई चंचल लड़की नाटक रचाती—कोई किसी की सास बन जाती और कोई उसकी बहू, और फिर वे ऐसे भेद खोलतीं कि सारे त्रिजन के हँस-हँस कर पेट में बल पड़ जाते, पसलियाँ दुखने लगतीं।

न जाने कहाँ से सलेटी के पास सदैव सारे प्रदेश की समूची डायरी होती, चुपके से वह कोई नई बात छेड़ देती, और फिर प्रत्येक अपनी ओर से कुछ-न-कुछ और बढ़ा देती—और इस प्रकार कहानी बन जाती। सलेटी ने शोरे की पत्नी को जहाने के घर जाते हुए देखा था, जहाने की पत्नी इन दिनों मायके गई हुई थी। सत्तो ने जहाने को एक दिन मुँह-अन्धरे शोरे के घर से निकलते देखा था। फूलाँ सोचती—एक दिन जहाना पेड़-तले खड़ा था, और जब वह नदी पर से होकर आया था, उसन देखा—शोरे की पत्नी तेज-तेज आह भरती नीचे जा रही थी। फिर कई यह कहने लगतीं कि जहाना सुन्दर था, कई यह कहतीं कि शोरे की पत्नी सुन्दर थी। कई स्त्रियों को शोरे पर दया आती और कई शोरे को गालियाँ देती हुई कहतीं कि वह पहले तीन पत्नियों को खा चुका था। कई स्त्रियाँ जहाने की पत्नी के विषय में सोचतीं—कई स्त्रियाँ साचती कि उसे इस बात से क्या आकर्षण था, नारी को केवल बच्चे चाहिएँ, बच्चे मिल जाँय तो उसका पति जहाँ चाहे भ्रम मारता रहे, फिर कोई परवा नहीं होती। और त्रिजन की नई रगरूट स्त्रियाँ दंग रह जातीं कि ये बातें क्योंकर होती थीं। कोई स्त्री दूसरों के पुरुष की ओर कैसे आँख उठाकर देख सकती है। उस समय उस पर बिजली क्यों नहीं गिर पड़ती, धरती क्यों नहीं फट जाती, भूकम्प क्यों नहीं आ जाता, संसार वैसे-का-वैसा क्यों रहता है ? अधिक भावुक स्त्रियाँ काँप उठतीं, उनको पसीना आ जाता ; घर जाकर अपने पतियों के हाथों को अनुभव करतीं, उनके अधिक समीप हो-होकर बैठतीं। और सारी रात

जाग-जाग कर पहरा-सा देती रहतीं ।

सुन्दरता के किस्से प्रायः छिड़ते । किस की आँखें मस्त थीं, किस की मोटी थीं, किस की मासूम थीं, किसकी भोली-भाली कामिनियों ऐसी थीं । किसका जूड़ा भारी था, किसके बाल घुंघराले हैं, किसके रेश्म जैसे सुकोमल हैं, किसके बाल कमर तक गिरते हैं, किसके उससे भी नीचे घुटनों तक गिरते हैं । इस प्रकार शरीर के प्रत्येक भाग की चर्चा की जाती । सुन्दर लड़कियों की कहानियों में जमींदार की लड़की रेशमां की भी चर्चा होती, न उसके गज-गज भर के लम्बे बाल थे, न उसकी मृगी जैसी मस्त आँखें थीं, न वह गोरीचिट्ठी थी, बस वह एक धला-धुलाया चित्र था, जिसका नखशिख स्वयमेव प्यारा लगता है, जिससे सौन्दर्य और आभा फूट रही होती है । जो लड़कियाँ कभी उसे मिलीं थी, वे उसकी प्रशंसा करते-करते थकतीं नहीं थीं, कई लड़कियाँ कहतीं, रेशमां कितनी सौभाग्यशालिनी है, जमींदार की इकलौती लड़की सारे प्रदेश की शासिका है । बहुत-सी लड़कियों की धारणा कुछ और ही थी । वह साधारण लड़कियों के समान त्रिजन में नहीं आ सकती थी । साधारण लड़कियों के समान वह हँस नहीं सकती थी, साधारण लड़कियों के समान वह खेल नहीं सकती थी, और इस प्रकार बातों-बातों में कोई चंचल लड़की कह उठती—“मैं कहती हूँ कि उसका भी कोई होगा, जिसकी स्मृतियाँ उसे मदहोश रखती हों, जिसके लिए जीवन में आनन्द आता है, जिसके लिए मरना प्यारा लगे, जिसके लिए आँखें बार-बार देहली की ओर जाँय, जिसके लिए खिड़कियों में खड़े होने में संतोष प्राप्त हो—और सब-की-सब उसकी चंचलता पर हँस पड़तीं ।

जब कभी रेशमां की चर्चा त्रिजन में होती, सदैव उसके बाद भागभरी के लड़के फर्मान की बातें छिड़ जातीं । न जाने शायद इस-लिए कि दोनों की आँखें बिल्ली जैसी थीं, न जाने शायद इसलिये कि वह सरदार की लड़की थी, और फर्मान दिन-प्रति-दिन जवान

स्त्रियों के दिलों का सरदार बनता जा रहा था। बहादुर की टुकड़-टुकड़े लाश को जब दफनाया गया तो प्रदेश भर में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं था, जो फर्मान के गले लगकर दहाड़ें मार-मार कर न रोया हो। कई बार गली-कूचे में से फर्मान को देख कर अल्हड़ जवान लड़कियों की आँखें भीग जातीं। कई स्त्रियाँ कहतीं कि रेशमां ने उसे संदेश भिजवाया था, कई स्त्रियाँ कहतीं कि रेशमाँ उसके घर स्वयं गई थी। कई कहतीं फर्मान रेशमाँ के पास आया था। सलेटी कहती रेशमां यदि जमींदार की लड़की न होती तो उसे यह अनुभव होता जैसे रेशमां और फर्मान बहन-भाई है।

फर्मान की कोमल प्रकृति किसी निर्धन लड़के जैसी मालूम नहीं होती थी—सुभद्रा सलेटी पर हंस देती—फर्मान जमींदार के खून का प्यासा था, फर्मान इस बात के लिए तड़प रहा था कि वह जमींदार की ऊँची-ऊँची मुँडेरों वाली हवेली को गिराकर धरती पर बिछा दे। फर्मान जमींदार के घोड़े, बाज और कुत्ते देख कर दाँत पीसता था। सुभद्रा ने स्वयं सुना था कि फर्मान उसके भाई को एक बार कह रहा था, और फिर उनकी कोठरी में बाहर के गाँवों के लोग फर्मान से आकर परामर्श किया करते थे, लेकिन सुभद्रा के भाई से उसने यह वचन लिया था कि वह यह बात किसी से कहेगा नहीं। त्रिजन में लड़कियाँ सदैव ऐसी ही बातें किया करतीं, और उस समय सुभद्रा की हँसी न रुकती। किन्तु कभी किसी ने उसकी हँसी पर विशेष ध्यान नहीं दिया था।

कभी-कभी लड़कियाँ ढेरो को बुला लातीं और सब-की-सब सारा दिन उस से चिमटी रहतीं। कोई उसे हाथ दिखाती, कोई उससे ताबीज बनवाती, कोई बड़े कमरे में जाकर उसे अपने गुप्त रोग बताती, कोई उस से भाड़-फूँक करवाती, कोई मन्त्र पढ़वाती। ढेरी भी किसी को लड़का देती, किसी को सहारा, किसी को उसकी सास से छुटकारा दिलाती।

किसी को इन्कार न करती। प्रत्येक की कामना-पूर्ति के लिए स्वीकृति देती, शाम को वह मिल कर ढेरो को खाना खिलाती, अचार, प्याज सबेरे की बासी रोटियाँ और कभी कभी पकौड़े होते। प्रसन्न होकर कभी कोई लड़की उसे अपना दुपट्टा उतार कर दे देती, कोई उसे कमीज देने का वचन देती, और जब इस प्रकार वचन देने के अनन्तर वह शाम को जाने लगती तो उसके जाने के पश्चात् सब लड़कियाँ उसे लाख-लाख गालियाँ देतीं और सोचतीं कि वह क्यों उसकी बातों में हर बार आ जाया करती है। कई बार उसे इस विचार से बुलवाया जाता कि पकड़ कर उसकी गत बनाएंगी, किन्तु उसके सामने किसी को साहस न होता, सब अपनी चतुराई और षड्यंत्र भूल जातीं।

कई स्त्रियाँ कहतीं—देसे के पास एक जादू था। फूलाँ यह बात न मानती। सत्तो कहती—“तू उस समय मानेगी जब तुझे उसके हाथ लगेंगे।” सत्तो स्वयं भी बढ़-चढ़ कर बातें किया करती थी। पिछली बार जब मायके से आई थी तो ‘मुहाँ’ ठाठे मार रहा था। सब यात्री मुहाँ के किनारे बनी बीबी पाकदामन की कब्र पर पत्थर रखते और मन्नत मानते। सत्तो आगे से हंसती, और जो दो दिन उन्हें दरिया से पार होने के लिए प्रतीक्षा करनी पड़ी, तो वह अपने बच्चे के लिए कोशिश से कुछ बुनती रही। आखिर तीसरे दिन पानी उतर गया और एक चरवाही आई। वह सबको बारी-बारी दरिया के पार ले जाती रही। चरवाही ने उसका लड़का पकड़ लिया और हंसती-खेलती उसे पार ले गई। पानी में से निकल कर सत्तो ने अपनी सलवार के पाँयचे सीधे किये, बच्चा सत्तो को पकड़ाकर चरवाही हंस पड़ी। जोर से हँसी और फिर उसके देखते-देखते हवा में विलीन हो गई। सामने उसके पशु चर रहे थे, और वह एक धुँद-सी बनकर अंतर्ध्यान हो गई। सत्तो को ऐसी मर्च्छा हुई कि दो दिन तक होश न रही और अब प्रत्येक पूर्णमासी को वह मुहाँ की बीबी पाकदामन वाली कब्र पर जाकर एक पत्थर रखती, और कितने ही महीनों से वह ऐसा ही कर रही थी।

गली-मोहल्ले में त्रिजन का कोई आनन्द नहीं आया करता था। लड़कियाँ न खुल कर हँस सकतीं न खुल कर गा सकतीं और न खुल के खेल सकतीं। अड़ोस-पड़ोस का भय—कई स्त्रियों का तो काम ही यही था कि अलहड़ जवान लड़कियों की बातें छिप कर मुनें और गली-गली उन बातों को फैलाएँ। फिर कभी किसी लड़की की माँ को आवश्यकता होती, तो वह आवाज़ देकर बुला ले जाती—“चावल कहाँ रखे हैं ? बेटी साबुन कहाँ रखा है ? बेटी ज़रा इधर आना, सूर्य में धागा डाल देना, मुझे दिखाई नहीं देता।” सास तो कभी अपनी बहुओं को साँस नहीं लेने देती थीं। बातें करने के लिए दालान में आ बैठतीं और वे वहीं धरना देकर बैठ जातीं। कभी पाँव दबवाती, कभी जुएँ निकलवाती, खीं-खीं करके जगह-जगह थूकती रहतीं और त्रिजन का आनन्द-भंग कर देतीं। लड़कियाँ तंग आकर धीरे-धीरे अपना त्रिजन हवेली में ले आइ। यह हवेली कस्बे के बाहर एक ओर को थी—इसमें एक छोटा-सा बागीचा था, लम्बे-लम्बे कमरे थे। दालान में आम का पेड़ था, जिसने चारों ओर घेरा डाला हुआ था। धरेक के पेड़ थे, जिनकी छाया बड़ी शीतल थी और ये कई जोड़ों को अपनी ओर खींचते।

लड़कियाँ प्रतिदिन अपने त्रिजन में एकत्रित होतीं, हँसती-खेलतीं, चर्खें चलातीं, कशीदे काढतीं, सीती-पिरोती और शाम को बड़े चाव से अपने-अपने घरों को चल देतीं।

सावन की भड़ी लगी हुई थी। लड़कियों ने एकत्रित होकर कई चोंचले किये—पूए तले और वे छीन-छीनकर खाए। खा-खाकर, पका-पकाकर जब थक गईं तो खेलने लगीं, खेलते-खेलते शाम हो गई और सहसा लड़कियों ने देखा कि जमींदार अपने एक गुंडे के साथ हवेली में आ गया है। सब-की-सब अपने कसीदे और कपड़े उठाकर भाग गई। आयाशों की पिटारी दालान के एक ताक में रह गई थी, उठाते-उठाते बेचारी अकेली रह गई।

खेल, जमींदार के गुण्डे ने, पसीने में नहाई लड़की से पूछा—“ए

लड़की तेरा नाम क्या है ?”

‘आयशा’ कहकर वह लाज के मारे दोहरी हो गई । उससे कुछ कहा न गया, उसके लिए बोलना कठिन हो गया, उसका कंठ सूख गया, उसके हाथ-पाँव शीतल पड़ गए, उसकी आँखों तले अंधेरा छा गया, उसे मार्ग दिखाई दिया न मंज़िल, उसे यह ज्ञान नहीं था कि वह बठी है कि खड़ी है कि चल रही है ।

सामने दालान में पड़ी किसी वस्तु को चील झपट कर ले गई फिर एक आई, एक और आई, फिर एक और आई, फिर एक और आई ।

बबूल का पेड़ !

१७

अकेली अपने कमरे में बैठी हुई रेशमां एक झटके के साथ उठ खड़ी हुई। मशीन की भांति क्रोशिये और धागे पर चलती हुई उसकी अँगुलियाँ उकता गई और रुक गई। उसने पलंग के साथ की खिड़की खोली और बन्द कर दी। बाहर प्रकृति जैसे ऊँघ रही थी। उसने पर्दे की सलवटें ठीक कीं, एक खूँटी पर पड़ी हुई सलवार की धूल झाड़ी, सामने अंगीठी पर पड़ी हुई वस्तुएँ छेड़ी, जो सीधी पड़ी हुई थीं उन्हें टेढ़ा करके रखा और टेढ़ी पड़ी हुई को सीधा कर दिया। फिर रेशमां ने नेकाँ को आवाज दी—जब नेकाँ कमरे में आई तो उसने खाली नजरों से उसकी ओर देखा—कोई ऐसी बात नहीं थी जो वह नेकाँ के साथ कर सकती, उसने नेकाँ को लौटा दिया।

फिर खाली पड़े तख्तपोश पर वह जा बैठी, तकिये के सहारे लेटने का प्रयत्न किया, फिर उठी दर्पण के सामने जा खड़ी हुई, फिर उसने खिड़की खोली, फिर बन्द कर दी। फिर पर्दे की सलवटें ठीक कीं, बंसीठी पर पड़ी हुई वस्तुएँ छेड़ीं, फिर दर्पण के सामने जा खड़ी हुई, फिर उसने नेकाँ को आवाज दी।

जब नेकाँ कमरे में आई तो रेशमाँ का जी चाहा कि वह उससे पूछे उसे क्या हो गया था। उसे यह अनुभव होता जैसे वह घुटी और दबी

जा रही हो, जैसे उसे पंख लग जायेंगे और वह उड़ जायगी। विशाल और विस्तृत आकाश में !

रेशमां ने आज मलमल का खुला-सा कुर्ता पहना हुआ था। उसकी सलवार के पाँयचे उसके पाँवों पर ढलक-ढलक जा रहे थे। उसका दुपट्टा उसके सिर पर भी था और उसके कंधों से नीचे भी लटक रहा था, उसके कानों में भुमके और बालियाँ नहीं थीं, उसकी गोल और गोरी कलाईयाँ नंगी थीं, उनमें न काँच की चूड़ियाँ थीं न सोने की, उसकी अंगुलियों में अंगूठी आदि कुछ भी नहीं था, और बिल्कुल यूँ ही रेशमां की खाली आँखें अधिक मोटी जान पड़ती थीं, उसकी नाक अधिक तीखी दिखाई दे रही थी, उसके केश जैसे रेशम के गच्छे हों और किसी ने चुपके से आकर उन्हें उसके सिर पर रख दिया हो। उसे तब ऐसा अनुभव होता था जैसे उस स्तब्धता में एक विकलता-सी, एक व्यग्रता-सी, एक व्याकुलता-सी, एक कर्कशता-सी करवटें ले रही है।

नेकां रेशमां की ओर देखती रही, देखती रही—और फिर सहसा वह हँस पड़ी। हँसी की बस एक लहर, इससे अधिक कुछ और नहीं। दाईं ओर की दीवार में एक खिड़की थी, नेकां ने बढ़ कर उसके पट खोल दिये। उसकी आँखें कह रही थीं कि जो विकल हो, उसे हवा की आवश्यकता होती है, जिसका हृदय व्यग्र हो उसे अधिक प्रकाश चाहिए—और फिर खिड़की के पट के साथ लग कर वह खड़ी हो गई।

नीचे एक लम्बा-चौड़ा दालान था। दालान के एक ओर ड्योढ़ी थी, ड्योढ़ी के आगे तक और ड्योढ़ी, फिर एक ओर दालान, फिर द्वार, उसके पश्चात कितना ही स्थान खाली था, फिर जाकर कहीं बड़ा दरवाजा आता था। दूर...सामने दालान के भीतर एक चारदीवारी से परे रसोई थी, कई मजदूर काम कर रहे थे, जहाँ बच्चे भी थे। इतने में कोलाहल सुनाई दिया, ऊँची-ऊँची चीखें सुनाई दीं। रेशमां और नेकां की दृष्टि उस ओर उठ गई। एक अधेड़ आयु की स्त्री डाँट पिलाए जा रही थी, पिलाए जा रही थी, और साथ-ही-साथ छाछ

की मटकी उँडले जा रही थी ।

सब-के-सब मजदूर सहमे हुए पीछे हट गए थे । बात वास्तव में यह थी कि एक मजदूर स्त्री हवेली में छाछ लेने के लिए आई । रसोई में काम करती हुई एक स्त्री ने छाछ देने को कह दी, और जब वह उसके लिए छाछ बर्तन में से निकाल रही थी, रसोई की देख-भाल करने वाली वहाँ आ गई और क्रोध में उसने छाछ की सब मटकियाँ उँडेल दीं । सरकार का आदेश था कि जितनी भी छाछ घर में बनायी जा सके, हम बरत लें और जो शेष वचे वह नाली में बहा दी जाय, गली-मोहल्लों और अड़ोस-पड़ोस के किसी व्यक्ति को एक बूँद तक न दी जाय ।

और रसोई में पड़ी हुई सब मटकियाँ उँडेल कर जब उस स्त्री ने छाछ माँगने वाली स्त्री को देखा तो उसके चेहरे पर भुँभुलाहट की एक लहर जागी और फिर उसका सारे-का-सारा शरीर ढीला पड़ गया । उसने अपने दो टूक हुए मिट्टी के बर्तन को अंतिम बार देखा और चुपके से वहाँ से चली गई ।

रेशमां जैसे खिड़की के पट के साथ जुड़ गई, उसकी आँखें फटी-की-फटी रह गई ।

जब उसे होश आया तो उसने नेकां की आँखों-में-आँखें डाल दीं, नेकां के पास कोई उत्तर नहीं था जो वह उसे दे सकती ।

उस शाम को नेकां रेशमां को बागीचे में ले गई । आड़ू, आलूबुखारे से लदे हुए पेड़ धरती के साथ लगे हुए थे । रस से भरे लाल-लाल पीले-पीले मोटे-मोटे आड़ू गिर-गिर कर धरती पर ढेर के रूप में पड़े थे । जिस प्रकार मक्खियाँ अपने छत्ते के साथ चिमटी हुई हों, उसी प्रकार आड़ू और आलूबुखारे शाखाओं के साथ चिमटे हुए थे, और वैसे ही नीचे गिर रहे थे ।

फिर नेकां उसे बागीचे के एकांत कोने में गज-गज भर के गहरे गड्ढों की ओर ले गई । कई गड्ढे फलों से भर चुके थे और उन पर मिट्टी

पड़ी हुई थी। कई अभी अधपके और अधकच्चे थे, उन पर अभी मिट्टी पड़नी शेष थी। फिर नेकां ने रेशमाँ को समझाया कि जमींदार के बागीचे में इतने फल होते हैं कि उन्हें संभालना कठिन है, और यहाँ फल इस प्रकार शीघ्र पक जाता है कि उन्हें बाहर भेजने का प्रबंध ही नहीं हो सकता। अपने शहर के बाजार में फल इतना ही भेजा जाता है कि लोग बस तरस-तरस कर ही खा सकें। बागीचे में काम करते हुए किसान फल का दाना तक मुँह में नहीं डाल सकते थे, सारा दिन रिसते हुए, गलते-सड़ते हुए फलों को मिट्टी में दबाते रहते। नेकां ने रेशमाँ को बताया कि उसका चचेरा भाई एक बार इस प्रकार नीचे गिरे हुए फल को खाते हुए पकड़ा गया था। किसी ने मजदूरों के मुँशी को वह बात बता दी—सरकार ने उसकी नंगी पीठ पर बारह बेंत लगाए जाने का दंड दिया। और शहतीर ऐसा जवान लड़का कुछ इस प्रकार चारपाई पर पड़ा कि फिर उठ न सका।

“फिर भी इन पेड़ों को फल लगते हैं,” अपने-आप ही रेशमाँ के मुँह से यह वाक्य निकल गया। उसकी आँखों में आँसू डबडबा आए, उसके अनन्तर रेशमाँ से वहाँ क्षणभर के लिए भी न ठहरा गया। उसे यों जान पड़ा जैसे चारों ओर विष घोला जा रहा हो, जैसे सहसा हवा रुक गई हो और उसकी साँस घुटने लगी हो।

अपने कमरे में लौटकर वह अकेली अपने पलंग पर आ गिरी, सोच में डूब गई। रात को उसने खाया न पिया, रात गए तक नेकां उसके पास बैठी रही।

और अभी मुँह-अँधेरा ही था कि अचानक उसकी आँख खुल गई। उसके साथ के पलंग पर से नेकाँ सहसा उठ खड़ी हुई। छत की दीवार पर उन्होंने एक चबूतरा बनवाया था, उस पर चढ़कर एड़ियाँ उठाकर वे अस्तबल में घोड़ों, कुत्तों, और कबूतरों तथा उनके रखवालों को देख सकती थी। अस्तबल के सब-के-सब नौकर इकट्ठा हो रहे थे—नेकाँ इस बात का पता करने गई, और जब लौटी तो टाखमटोल करने

लगी, किन्तु रेशमां कब टलने वाली थी, आखिर पूछकर ही छोड़ा ।

बात वास्तव में यह थी कि साथ के गाँव की दो मिरासर्ने गोबर और लीद उठाती हुई पकड़ी गई थीं । वे गोबर के उपले बनाकर बेचा करती थीं और इस प्रकार अपना पेट पाला करती थीं । बाजार में से होकर वे अस्तबल में आया करतीं और कभी-कभी आँख बचाकर मुँह-अँधेरे आतीं तथा एक तस्ला गोबर लेकर चली जातीं । अस्तबल में चारों ओर गोबर का ढेर लगा हुआ था—किसी को कुछ पता न चलता, किन्तु आज एक मजदूर ने उन्हें गोबर उठाते पकड़ लिया और मार-मारकर बेचारियों का भुरका बना दिया । नेकां ने बताया कि दोनों गोबर से लिथड़ी हुई थीं, एक की कमर टूट गई थी और दूसरी बेसुध पड़ी थी, फिर भी जो आता ठोकर मार जाता और गन्दी गाली देता ।

रेशमां इस बार रात की भाँति चुप न रही । वह नेकां से छोटी-छोटी बातें पूछती रही—कोई अमीर और कोई गरीब क्यों है ? गरीब कैसे गरीब ही रहता है, अमीर लोग क्योंकर अमीर बन गए ? उसके पिता जमींदार के पास इतनी धरती कहाँ से आई ? ये मजदूर कोई और काम क्यों नहीं करते ? आखिर उसके पिता का पिता इतना बड़ा जमींदार क्यों था ? इतनी धरती, इतने बागीचे, इतनी भैंसें, इतनी गोएँ,—उसका पिता इतने वैभव का क्या करता था ? उसके पिता के देहान्त के बाद ये सारी सम्पत्ति किसकी हो जायगी ? नव्वाब आजकल क्या करता था ? नव्वाब ने कौन-सा परिश्रम किया था कि यह सब वैभव उसे विरासत में मिल जायगा ?

रेशमां के प्रत्येक प्रश्न का नेकां उचित और संक्षिप्त उत्तर देती रही । जब वे छत पर से नीचे उतरीं, तो रेशमां को यूँ जान पड़ा जैसे उसके मस्तिष्क के पट खुल गए हों, सहसा जैसे आत्म-विश्वास की शक्ति जाग उठी, अपने-आप को जैसे वह अधिक जिम्मेदार समझने लगी ।

किन्तु अभी रेशमां ने नेकां का साथ न छोड़ा। जब भी उसे अवकाश होता, ये दोनों बैठ जातीं और नई-नई बातें सोचती रहतीं, नेकां रेशमां को गाँवों की पूरी-पूरी दशा बताती, अपने शहर के लोगों के विषय में समाचार लाती और अपनी शक्ति-अनुसार सोचती कि वह क्योंकर इन बातों का उत्तर ढूँढ़ सकती थी !

नेकां ने रेशमां को फर्मान के सम्बन्ध में अधिक विस्तार से समझाया। कैसे शहर का प्रत्येक व्यक्ति उस पर जान देता था; जो वह कहता था लोग वही कुछ करते थे, सदैव नई-नई बातें वह करता रहता था। देखने में वह एक सुन्दर-सजीला नवयुवक है, वृक्ष के समान वह दीर्घकाय है, गोरा उसका रंग है, बिल्ली की-सी उसकी आँखें हैं। हर-एक को प्यार-मुहब्बत से मिलता है, हर समय वह किसी-न-किसी का सेवा में लगा रहता है, अपनी जान जोखिम में डाल लेगा किन्तु अपने पड़ोसी का दुःख सहन नहीं कर सकेगा। घर की छोटी-छोटी बातों के बारे में लोग उसकी सलाह लेते हैं, और उसके कहे बिना कोई कदम नहीं उठाते। सबके साथ वह नम्रता एवं विनय से मिलता है, हरेक को अपना अंग और अपना एक भाग समझता है।

नेकां ने फिर रेशमां को समझाया कि फर्मान इलाके के सभी गाँवों में अक्सर जाता रहता है। बाहर के गाँवों के लोग भी उसके पास आते रहते हैं, और तो और, रावलपिंडी के शहर में भी वह कई बार जाता है। कभी-कभी कोई पतलून वाला बाबू और कभी-कभी कोई खद्दर-पोश भी उसके साथ आता है। उसने पढ़ना-लिखना भी सीख लिया है और नित-नये दूर देश के समाचार भी अखबारों द्वारा उसे मिल जाते हैं।

जितना नेकां फर्मान के सम्बन्ध में बातें बताती, रेशमां का जी चाहता कि नेकां और बोलती जाय। न जाने क्यों ये बातें सुन-सुनकर फर्मान उसे अच्छा लगने लगा। जो गीत नेकां उसे आकर सुनाता, उस गीत का बहादुर भाई, निडर सूरमा सदैव रेशमां को फर्मान ऐसा

अनुभव होता और उसका काल्पनिक चित्र उसकी आँखों के सामने घूम जाता ।

जब से रेशमा की धाय नौकरी छोड़कर गई थी, नेकां और रेशमा के सम्बन्ध अधिक गहरे हो गए थे । उसे घूमने-फिरने की स्वतंत्रता मिल गई थी, कई बार मुँह-अन्धेरे बागीचे में घूमने चली जातीं । अस्तबल में हो आतीं, कई बार यूँ दुपट्टा ओढ़ती कि उन्हें कोई भी न पहचान सकता । एक बार रेशमा ने नेकां की सहायता से लड़कों ऐसे वस्त्र पहने, जो उसे बहुत भले लगे । हँसते-हँसते वह दोहरी हो गई— फिर कई बार शाम को वह छिप-छिपाकर इधर-उधर भाँकने के लिए जातीं तो रेशमा लड़कों जैसे वस्त्र पहन लेती । पहले-पहल तो वह लाज के मारे लाल और पसीना-पसीना हुई रहती, फिर जैसे वह उस वेष की अभ्यस्त हो गई । नेकां कुल्ले पर पगड़ी बंधवा लाती और शेष सब कपड़े पहनना तो आसान काम था ।

फिर रेशमा को घोड़े की सवारी की भी चाह हुई । उसके लिए जमींदार की आज्ञा की आवश्यकता थी । किसी निर्बल-क्षण में रेशमा ने अपने पिता को मना लिया, हर शाम को वह बागीचे में घोड़े को दौड़ाती रहती । और जब अकेली होती तो सोचती कि यह घोड़ा कभी यूँही दौड़ता-दौड़ता बाहर निकल जायगा । दूर...पेड़ों के भुण्डों से परे नदी के पार पहाड़ियों के पीछे, जहाँ उसे न कोई जानता और न पहचानता होगा, कहानी की राजकुमारी के समान । जहाँ जा कर वह जो-जो चाहेगा करेगी, जो जी में आयगा, कर सकेगी, जिसे चाहेगी मिल सकेगी ।

फर्मान के सम्बन्ध में फिर बातें करते हुए नेकां ने रेशमा को बताया कि साथ के गाँव में देहाती नाटक होगा, जिसमें फर्मान स्वयं भाग लेगा और साथ के गाँवों के कई लोग उसे देखने के लिए जायंग । नाटक के विषय में सुनते-सुनते सहसा रेशमा के मुँह से निकला कि वह भी यह नाटक देखने के लिए अवश्य जायगी, किन्तु कैसे ? दोनों, रेशमा

और नेकां सोच में खो गई ।

हर रोज रेशमां नाटक में जाने के लिए अपनी कामना जताती और हर रोज यह सोच-सोचकर थक जाती कि वह जायगी कैसे ? आखिर एक दिन दोनों ने मिलकर निर्णय किया कि चाहे कुछ हो जाय वे अवश्य जाँयगी । रेशमां अपना भेस बदल लेगी और नेकां भी काई और भेस बना लेगी ।

दीपशिखा !



१८

शेरा कदुओं से शराब निकाल लेता था, करेलों से निकाल लेता था । आज की शराब न जाने उसने किस वस्तु से निकाली थी, शराब में से इलायची की सुगन्धि आती थी । एक-एक घूंट के बाद जमींदार से अधिक उसके चाटुकार आँधे हो रहे थे । उस शराब का न कोई रंग था, न कोई स्वाद था; वह कितना ही एक-सा बोतलें ले आया था । व सारी शाम बैठे हुए पीते रहे ।

जमींदार सोचता था कि वह अब बूढ़ा हो गया था । जमी तो इतनी जल्दी उसे शराब चढ़ जाती थी । कई बार जब नशे में उसकी नजर अपने हाथों पर पड़ती तो वह काँप उठता, उसे अपने पिठुओं पर अत्यन्त क्रोध आता । सब-के-सब अभी तक दैत्यों के समान थे, किसी को न घुन लगा था न आयु ने उन्हें निर्बल किया था । वे बस वैसे-के-वैसे ही थे, जमींदार सोचता कि उसे कौन-से ऐसे दुःख ने जीर्ण कर दिया था । अपरिमित ऐश्वर्य और संतान उसके पास थी ।

हाय वे दिन—वह साचता, जब वह पीता रहता था और शराब चढ़ाने में न आती थी । अब तो उसका सारा आनन्द स्वप्न हो जाता जब वह देखता कि दो घूंट पीने के बाद उसे नशा चढ़ जाता है, उसे चक्कर आने लगते हैं, उसकी आँखों के आगे वस्तुएँ घूमने

लगती है, हाथ कहीं डालता है और पड़ता कहीं है। कहना कुछ चाहता है और कुछ-से-कुछ निकल जाता है—और इस प्रकार आजकल वह झुंझलाने लगता।

और उसके चारों पिट्टू जमींदार की इस दुर्बलता को भापने लगे थे। उसके क्रोध से बचने के लिए अक्सर वे उसे बातों में लगाये रखते थे। परस्पर हंसी-ठट्टा करते थे, कभी-कभी जमींदार को भी लपेट में ले लेते।

जहाना सदैव शोरे को उस्ताद कह कर बुलाता और वास्ते देता—“यार, कोई ऐसी शराब तैयार कर कि आठों पहर नशा रहे?” जब नशा उतर जाता तो जहाने को बड़ी बेकली-सी अनुभव होती, उसका शरीर टूटने लगता, उसका दिल न जाने क्या-कुछ सोचने लगता। कभी-कभी उसके जी में आता कि वह कहीं भाग जाय, रात को जब सारे सोते पड़े हों वह कहीं गायब हो जाय। कभी-कभी उसे अपने अच्छे-भले हाथ मँले-मँले लगते, उसे मुँह में एक कड़वाहट-सी अनुभव होती, वह अपने-आपको क्षुद्र अत्यन्त क्षुद्र होता हुआ अनुभव करता।

रावेल को आजकल आयशां बहुत भली लगती थी। जब एक घूंट पी लेता, वह उसे याद आ जाती। त्रिजन म कितनी ही लड़कियाँ थीं, किन्तु आयशां तो जैसे एक अप्सरा थीं। आयशां की एक माँ थी, आयशां का एक पिता था, आयशां का एक भाई था—रावेल सोचता कि कहीं वे सारे आगे-पीछे हो जाँय तो फिर आयशां और वह दोनों आनन्द मनाएँ। त्रिजन में वह अकेली रह गई थी, आयशां रावेल को अकेली ही अच्छी लगती थी, जैसे चट्टियल मैदान में साँप की छतरी उगी हुई हो—दूध ऐसा श्वेत ! वह सोचता कि उसने अपनी पहली प्रियतमा के पति को मार डाला था, उन दिनों उसे पहली प्रियतमा अच्छी लगती थी। अब तो वह उसके लिए च्यूंटी तक को नहीं मसल सकता, क्योंकि वह तो अब पजर बन गई थी ? यह स्त्रियाँ कैसी होती हैं, किन्तु आयशां तो मोटे-मोटे गोरे बच्चे उत्पन्न करने वाली थी।

और जुम्मा ज्यों-ज्यों शराब पीता जाता, आज उसे त्यों-त्यों क्रोध चढ़ता आता। उसकी आँखें लाल होती जातीं। आखिर उसे समय मिल गया, कितनी देर से प्रतीक्षा में था कि जमींदार कोई बात छेड़े तो यह बताए कि किस प्रकार गत सप्ताह वह लड़की नहीं आ सकी थी। क्योंकि नव्वाब ने उसे मार्ग में पकड़ लिया था। शराब के नशे में पागल जमींदार ने यह बात सुनकर हँसना आरम्भ कर दिया, हँसता रहा, हँसता रहा, जुम्मे को लज्जित होता पड़ा।

सब आश्चर्य करते कि जमींदार को आजकल हो क्या गया था, उसे जैसे क्रोध आता ही नहीं था। फर्मान, भागभरी के लड़के के विषय में कैसे बुरे समाचार आ रहे थे, किस प्रकार वह प्रतिदिन ज्यादातियाँ करता जा रहा था, किस प्रकार बच्चे-बच्चों की जिह्वा पर उसकी चर्चा थी, कितना वह सर्वप्रिय होता जा रहा था। वे सोचते कि एक बार जमींदार 'हाँ' करदे तो ढूँढ़ने पर भी उसका पता न मिले।

जहाना पीता रहा, पीता रहा—जब वह बहुत पी जाता तो उसे अपने-आप पर संयम न रहता। जो बात न भी करनी होती उसके मुँह से निकल जाती! और इस प्रकार आज वह बकने लगा—एक बात न जाने कब की उसके हृदय में काँटे की भाँति चुभ रही थी, आज उससे रहा न गया।

एक बार जमींदार ने जहाने को बहादुर के घर भेजा। भागभरी के लड़के की दशा अच्छी नहीं थी। अगले दिन सरकार के कहने पर वहाँ जहाने की पत्नी, भागभरी की हथेली पर कुछ पैसे रख आई थी। और फर्मान था कि आजकल यह कहता फिरता था—“जमींदार—मुर्दाबाद!” और न जाने क्या-क्या कुछ वह चारों ओर विष फैला रहा था।

किन्तु जहाने के मुँह से शराब के तौर पर फर्मान का नाम सुनते ही जमींदार लाल-पीला हो गया। उसकी आँखें जैसे कट कर बाहर आ रहीं, उसके मुँह से शराब रिस-रिसकर बहने लगी, उसके हाथ काँपने लगे, उसके माथे पर पसीने की लहर दौड़ने लगी, और शराब का

गिलास उसकी अंगुलियों से फिसल कर गिर पड़ा।

जब कोई ऐसी बात हो जाती तो चारों-के-चारों पिट्ठू एक-एक करके वहाँ से खिसक जाते। जमींदार के क्रोध को कोई सहन न कर सकता था, किसी में इतना साहस नहीं था कि जमींदार के कांपते हुए चेहरे की ओर देख सके।

और जमींदार अकेला रह गया, इतने बड़े कमरे में वह बिलकुल अकेला था। वह टूटे हुए काँच के टुकड़ों की ओर देख रहा था—उसने चादर पर पड़े हुए टू बर्तन की ओर देखा, दीवार पर क्लॉक टिक-टिक कर रहा था। आखिर वह उठकर टहलने लगा; ज्यों-ज्यों वह कदम उठाता, क्लॉक की टिक-टिक अधिक ऊँची होती जाती।

शराब के नशे में बदमस्त जमींदार सोचता कि उसने जहाने को भागभरी के घर क्यों भेजा था, सामने दीवार पर हिरणों के एक जोड़े का चित्र था। हिरण जिस प्रकार खिसक कर साथिन के समीप होता जा रहा था, हिरणी अपनी लम्बी ग्रीवा उठाकर दूर.....खेतों की ओर देख रही थी, जैसे कोई वस्तु खो गई हो, जैसे वहाँ से किसी को आना था। शराब की जो बोतलें खाली थीं, वे फर्श पर औंधी पड़ी थीं, और जो बोतलें भरी हुई थीं, पास खड़ी थीं। फर्श की दूधिया चादर पर कुछ धब्बे थे, जो धोने से भी दूर नहीं होते थे—और जमींदार सोचता कि क्यों उसका घोड़ा कई बार आप-ही-आप उस गली में चल देता था, जहाँ फर्मान रहता था, भागभरी रहती थी। फिर वह सोचता कि उसने बहादुर को व्यर्थ में ही मरवा दिया था, वह कितना सरलहृदय था, परिश्रमी था। फिर उसे अपने कर्मचारियों के वे शब्द याद आए कि किस प्रकार फर्मान कहता था कि ये महल, ये हवेलियाँ, ये खेत उसके अपने थे। सब-की-सब वस्तुएँ प्रजा की हैं—उस समय जमींदार को ऐसे अनुभव होता जैसे उसकी बोटी-बोटी बाँटी जा रही हो। उसके शरीर का अणु-अणु नोचा जा रहा हो, उसे टुकड़े-टुकड़े किया जा रहा हो। फर्श पर दूध ऐसी श्वेत बिछी हुई चादर पर कितने दाग थे जो

घोने से भी दूर न होते, बाहर घोर-अन्धेरी रात थी—जमींदार के भं उससे भी कहीं अधिक अन्धकार था। फिर उसने खिड़की में खड़े हं देखा—कि दूर... बहुत दूर..... एक दीप जल रहा था, जमी देखता रहा, देखता रहा ; अन्धकार-आँधी बन गया, बादल गर्जने किन्तु दीपक न बुझा और वैसे-का-वैसा जलता रहा, उस दीपक लौ न कम हुई, न भड़की।

किन्तु क्लॉक की टिक-टिक क्यों इतनी ऊँची होती जा रही जैसे कोई लोहा कूट रहा हो, जैसे कोई पत्थर गिरा रहा हो, तेज, अधिक तेज, और ऊँचे, अधिक ऊँचे। जमींदार को यूँ अनभव ; जैसे प्रत्येक टिक-टिक के साथ उसका जीवन समाप्त हो रहा था, उसके श्वास बह रहे हों, एक बाढ़ की-सी तेजी के साथ। और एक दिन यह क्लॉक चलते-चलते रुक जायगा, जमींदार सोचता कि मर जायगा। वह कितने वर्ष जीवित रहा था, किस कोलाहल के वह जिया था, जीवन के एक-एक पल का उसने आनन्द उठाया था घड़ी को उसने संवारा था, निखारा था—और आज भागभरी लड़का कह रहा था—“जमींदार मुर्दाबाद !” और उसका जी च कि वह मर जाय। प्रतिदिन फर्मान की शिकायत उसके कानों में प वह नई-नई आलोचनाएँ करता, नए-नए साधन सोचता। समाचा कहीं से ले आता और पढ़-पढ़ कर लोगों को सुनाता रहता। फिर सोचता फर्मान क्यों पढ़ गया था, अन्य लोग तो बिल्कुल ढोर-डंग फर्मान का ललाट क्यों विशाल था, फर्मान की आँखें क्यों बिल्ली क थी, वह कितनी देर तक घोड़ा दौड़ाता रहता था, उसका निद कितना सधा हुआ था, वह नेजाबाजी में किसी को अपने से बाजी लेने देता था। लोग उसकी बातों पर दंग रह जाते।

क्लॉक अभी तक टिक-टिक कर रहा था। जमींदार सोच रह कि वह क्लोक को तोड़ देगा, फिर उसने सोचा कि वह उस फितन मरोड़ कर रख देगा। जमींदारी क्यों कर समाप्त हो सकती है,

तो वह जीवित है, अभी तो उसकी भुजाओं में शक्ति है, अभी तो उसके क्रोध से लोग थरते हैं ।

वाह-वाह कितने जोरों से वर्षा हो रही थी, बादल गरज रहे थे, बिजली कड़क रही थी, अन्धकार शाय-शाय कर रहा था । किन्तु वह दीपक बहुत दूर वैसे-का-वैसा टिमटिमा रहा था, कितना स्नेह था उस दीपक में, एकदम जमींदार को पेट में पीड़ा अनुभव हुई, उसे यों अनुभव हुआ जैसे उसकी अँतड़ियाँ रस्सी के समान बल खाती जा रही थीं ।

रासधारी !



१६

“मैं जाऊँगी, मैं जाऊँगी !” शाम से रेशमां ने यह रट लगा रक्खी थी ।

अस्तबल में बैठी कसीदा काढ़ती हुए एक स्त्री उठकर भीतर चली गई, प्रकाश मंद पड़ता हुआ बिल्कुल समाप्त हो गया ।

“मैं जाऊँगी” अभी तक रेशमां की जिह्वा पर यह वाक्य था । नेकां साचती—वह क्यों यह बात बार-बार कह रही थी । संभवतः उसका यह विचार था कि वह नहीं जा सकती थी । आखिर वहीं जाना था, जहाँ नेकां रहती थी । और प्रतिदिन जाया करती थी, जहाँ नेकां खेल-कूद कर बड़ी हुई थी । संभवतः वह अपने-आपको तैयार कर रही थी, जमींदार की लड़की, सात पदों में ढकी-छिपी रहने वाली ।

“मैं जाऊँगी” रेशमां को यूँ अनुभव होता जैसे कोई-न-कोई अड़चन अवश्य पड़ जायगी । काली रात न जाने आज इतनी काली हो या न हो; अस्तबल की ओर से आधी रात तक खाँसने की आवाज आती रही थी । और उस ओर चौकीदार थे, नेजे उठाए हुए दीवारों को घूरते, रेशमां ने स्वयं कई बार उठकर देखा था । सीढ़ियों पर से धीरे-धीरे उतरने का कई बार उसने आज के दिन के लिए अभ्यास किया था ।

“मैं जाऊँगी”—रेशमां सोचती—फर्मान भला कैसा होगा । नेकां कहती थी वह गोलमटोल था, गोरा-चिट्ठा था, गुदगुदा-सा जैसे मक्खन का

लौंदा हो, हाथ लगाने से मैला होता था, भूरे बाल, आँखें और होठ बिल्कुल रेशमां ऐसे थे। रेशमां सोचती—जभी वह उसे इतना अच्छा लगता था।

उसे तो लेकिन हर कोई पसंद करता था, सारे-का-सारा प्रदेश। पोठोहार का बच्चा-बच्चा उसका नाम जानता था—उसका कोमल शरीर, उसका मधुर स्वभाव, उसके न्यारे रूप ने, उसकी हरेक के काम आने वाली भावना, सब उसे राजकुमार के नाम से पुकारते थे।

“मैं जाऊँगी”—रेशमां सोचती—समय कितना धीरे-धीरे बीत रहा था। सघन-सी, अंधेरी-सी, शांत-सी रात बीतती ही नहीं थी। चारों ओर अभी तक प्रकाश फैला हुआ था। उसे यों अनुभव होता जैसे आज ये लोग सोएंगे ही नहीं। दूर...कहीं कुत्ता भौंक रहा था, भौंके जा रहा था। आज अस्तबल के ढोर-डंगरों के गले में पड़ी हुई घंटियाँ बज रही थीं, बजती जा रही थीं।

“मैं जाऊँगी” और रेशमां महल में रहने वाली जमींदार की लड़की ने वस्त्र उतार दिए। नेकां ने उसे अपनी सलवार पहनाई, बिल्कुल अपनी तरह उसे दुपट्टा ओढ़ाया, मैले-मैले से फटे-पुराने कपड़े !

“मैं जाऊँगी” और दोनों पोठोहारनें तैयार थीं। रेशमां विकल थी, व्यग्र थी—जैसे कोई उनकी प्रतीक्षा में हो, जैसे एक युग के बाद मिलाप होने वाला हो, हर स्वास के साथ उसे यों अनुभव होता जैसे कोई आवाज दे रहा हो !

और नेकां टालमटोल किये जा रही थी, चारों ओर आलोकित दीप बुझने ही में नहीं आ रहे थे। समय था कि बस जहाँ खड़ा था, वही खड़ा था, रेशमां अपने दालान में टहलती रही, टहलती रही।

“बेटी” रेशमां को टहलते-टहलते यों अनुभव हुआ जैसे उसे किसी ने पुकारा हो। बिल्कुल उसी प्रकार जैसे जमींदार सोने से पहले उससे एक-दो बातें कर लिया करता था। वह पसीने-पसीने हो गई, उसका नेकां के समान ओढ़ा हुआ दुपट्टा सारे-का-सारा ढलक गया। वह प्रतिमा

के समान सुनती रही, सुनती रही, कहीं जमींदार ऊपर तो नहीं आ रहा था ।

फिर नेकां भीतर से निकलकर उसे यूँ कान लगाये खड़ी देखकर हँस पड़ी ।

आखिर समय हो गया, स्तब्धता जिस प्रकार फैल सकती थी, फैल चुकी थी । जिस प्रकार बत्तियाँ बुझ सकती थीं बुझ चुकीं थीं, दूर कोई कुत्ता भौंक रहा था और वह भौंकता रहा—चलो अच्छा हुआ । उनके दिलों की धड़कनें कोई नहीं सुन सकेगा ।

और वह मेले दुपट्टे ओढ़कर दौड़ती हुई सीढ़ियों के अंधकार में विलीन हो गई । वह हर कदम नाप-तोल कर उठा रही थीं, दालान में से गुजरते हुए दोनों का ऊपर का सांस ऊपर रह गया और नीचे का नीचे ।

अस्तबल में दीवार के साथ-साथ चलते हुए उनका पसीना धार बनकर बहने लगा । आखिर पानी के निकास की एक बहुत बड़ी नाली में से वे दोनों बाहर आ गईं, पतली, दुबली, कोमल मछली ऐसी पोछोहारनें ।

सारा कस्बा खाली पड़ा था, जैसे सारा प्रदेश रास देखने के लिए टूट पड़ा हो । गलियाँ सूनी थीं, जैसे कोई वस्तु रेशमाँ को अपनी ओर खींच रही थी । अब जो वह घर से निकली तो निर्भीक नाचती-फलांगती हुई चल पड़ी, नेकाँ भी उसके साथ थी ।

लोगों की इतनी बड़ी भीड़ रेशमाँ ने कभी नहीं देखी थी, और वह चुपके से एक छोर में घुंस गई । अभी रास आरम्भ नहीं हुई थी, कोई महिमा गा रहा था :

दो पत्तर अनारों दे ।

साड़ी गली आ बैठे

कबूतर यारों दे !!

(अनारों के दो पत्ते हैं और हमारी गली में साजन के भेजे हुए

कबूतर आ बैठे हैं)

और इस प्रकार एक टप्पे के बाद दूसरा टप्पा जोड़ा जाता रहा । फिर गाने वालीयाँ ढोलक उठा लाईं, एक स्वर एकलय से सात लड़कियाँ गाती रहीं, सारा दर्शकसमूह साँस रोके हुए था । भीड़ ने शोर मचाते हुए बच्चों की ओर आँखें फाड़-फाड़ कर देखना प्रारम्भ कर दिया । जाटों के हाथों में तेल पिलाई हुई लाठियाँ थीं और लाठियाँ उनके हाथों में से फिसलने लगीं, स्त्रियों के भूमर लहरा-लहरा कर नीचे गिरने लगे ।

इसके पश्चात् रास प्रारम्भ होनी थी । नारियों के गीत समाप्त हुए, लोग वाह-वाह कर के चुप हो गए, और बस थोड़े समय के बाद रास प्रारम्भ हुई ।

एक कोने में से एक बुढ़िया फूट-फूट कर रोती हुई निकली । उसका लड़का मारा गया था, बुढ़िया ने दुहृत्यङ्ग मार-मारकर अपनी दुर्दशा कर ली । एक और छोर से नव-विवाहिता लड़की निकली, उसके हाथों में अभी तक मेंहदी लगी हुई थी, उसका पति मारा गया था, लड़की ने चीख मार-मारकर खून के आँसू गिराए । धरती पर अपना सिर पटक-पटक कर मस्तक लहलुहान कर लिया । फिर एक कोने में से एक नंगा अनाथ बच्चा निकला, उसका कोई संरक्षक नहीं रहा था । उसका पेट पीठ से लगा हुआ था, उसके कंकाल की एक-एक अस्थि गिनी जा सकती थी । सूखे तिनकों के समान उसकी भुजाएँ आगे की फँली हुई थी । उसके होंठ सूखे हुए थे, उन पर पपड़ियाँ जमी हुई थीं । उसकी दुखती हुई चुंधी आँखों पर मक्खियाँ भिनभिना रहीं थीं—वह आकर चुपचाप बीच में खड़ा हो गया । फिर लाठी पकड़े हुए एक बूढ़ा आया, जिसके पाँच लड़के मारे गये थे । बूढ़े की जिह्वा बन्द हो गई थी, उसकी आँखें फटी-की-फटी रह गई थीं, उन आँखों से उसे कुछ दिखाई नहीं देता था । कभी उसके हाथ काँपने लगते, कभी वह स्वयमेव स्थिर हो जाते । हर पाँच क्षणों के बाद बूढ़े की आकृति लाल हो जाती, कभी उसका

शरीर ऊपर को यों उठता जैसे वह उड़ने का प्रयत्न कर रहा हो। उसकी आँखों से टपाटप आँसुओं की धारा बह जाती और आँखें फिर खाला हो जातीं, शुष्क हो जातीं, बावला होकर वह जैसे सबको घूर रहा हो, यह बूढ़ा भी बीच में आकर लड़के के पास खड़ा हो गया।

उनके गाँव में एक चुड़ैल पड़ती थी, और जो कोई उस चुड़ैल के हथ्ये चढ़ता उसे जलाकर भस्म कर देती। कई घर उजड़ चुके थे, उसने कई चूल्हे ठंडे कर दिये थे, बहुतों पर प्रलय बरसी थी। आखिर ये सब मिलकर न्यायालय में फरियाद लेकर आए थे, अपनी बिरादरी और अपने पड़ोसियों के आगे हाथ फैला रहे थे।

सारी दर्शक मंडली अवाक् थी। आखिर बेबस खड़ी भीड़ में से एक युवक निकला, जैसे देवता आकाश से उतरा हो। उसके हाथ में तलवार थी, भोज बरसाता ललाट, ऐंठे हुए पट्टे, उसके अधरों पर एक पीड़ा थी, उसकी आँखों में एक करुणा थी, उसे देखकर रोती हुई बुढ़िया का कलेजा जैसे शीतल हो गया। बेहाल और बसुध नवविवाहिता को जैसे साहस मिल गया, भूख का मारा दुबला-पतला लड़का और दुःखातिरेक से पथराया हुआ बूढ़ा जैसे एक बार फिर जीवित हो उठे।

अब वह नवयुवक गाँव की ओर जाता है, फिर उसकी चुड़ैल के साथ लड़ाई होती है। चुड़ैल नागिन बनकर उसने का प्रयत्न करती है, आग बनकर उसे जलाने का प्रयास करती है, शेरनी बनकर उसकी बोटी-बोटी नोचने के लिए झपटती है, किन्तु नवयुवक एक मादकता में, एक उत्साह में उससे टक्कर लेता है। निदान चुड़ैल उसके चरणों में निढाल होकर गिर पड़ती है।

उसके बाद गानेवालियाँ फिर गाने लगती हैं, नाचती हैं। नवयुवक पर से पानी बार-बार कर पिया जाता है, फूलों और हारों से उसे लाद दिया जाता है। एक उत्साह में, एक तरंग में, हँसते, खेलते, नाचते, कूदते, नारे लगाते रास समाप्त हो जाती है।

रेशमाँ और नेकां ने सोचा था कि वे रास के समाप्त होने से पहले ही उठ आँयगी, किन्तु वे भीड़ के बीच बैठी थीं। नेकाँ और रेशमाँ को भीड़ में जुम्मा दिखाई दिया, जहाना दिखाई दिया, रावेल दिखाई दिया, शेरा दिखाई दिया, जमींदार के दूसरे बहुत से कर्मचारी भी वहीं थे।

रेशमाँ ज्यों-ज्यों उनकी ओर देखती, उसे फर्मान और भी अधिक अच्छा लगता, फर्मान—जो रास में नौजवान बना था। वह एक देवता था—वह सोचती—और ये शेष लोग कैसे थे ? ये कैसे लोगों के सम्पर्क में जमींदार घूमता था और परामर्श किया करता था।

उसकी आँखों में फर्मान का चित्र घूमता रहा। एक मस्ती में, एक नशे में न जाने कैसे फलांगने वाले स्थानों से वह फलांगी, जहाँ से कूदना था, वहाँ से कूदी और जहाँ झुकना था वहाँ झुकी तथा अपने पलंग पर आ गिरी।

“यूँ जिये जाना कितना आनन्दमय है ?” सोने से पूर्व जैसे रेशमाँ आज नेकां से कह रही थी !

कपूत !

२०

जिस दिन से जमींदार पलंग पर पड़ा वह फिर उठ न सका । उसकी नाड़ियाँ जैसे ढीली पड़ गई, उनमें जैसे शक्ति न रही । वह सोचता कि शराब में इतनी खराबी नहीं हो सकती, शराब तो उसके चारों पिटू भी पीते थे और उससे कहीं अधिक पीते थे, फिर खराबी की क्या बात थी ? कोई इलाज कारगर नहीं हो रहा था, जागीर के सभी हकीम आ चुके थे, बाहर से भी वैद्य आए । जमींदार सोचता—कहीं उसे वही रोग तो नहीं था जो उसकी अन्तिम पत्नी को था । उसने जादू-टोने वाले इकट्ठे कर लिये, ढेरो को बुलवाया गया ।

“कुछ है तो सही”—ढेरो यह कहती और चारों ओर से उसे टटोलती रही । अवश्य कुछ है, किन्तु उसकी समझ में नहीं आता था कि वह कुछ क्या था । आखिर थक-हार कर भुँभुला कर ढेरो वहाँ से चली गई ।

जमींदार को अपना पेट जकड़ा हुआ अनुभव होता, कोई वस्तु उसे न पचती । वह दिन-प्रति-दिन दुर्बल होता जा रहा था । शहतीर के समान उसका दृढ़-शरीर सूखकर तिनका-सा हो गया, सारा दिन खेटा रहता और उसकी आँखों के आगे न जाने कैसे-कैसे चित्र घूमते रहते । कभी-कभी उसे ऐसा विश्वास होने लगता कि वह मर रहा है ।

उसे प्रतिदिन नित-नए किस्से सुनाए जाते—कैसे फर्मान लोकप्रिय होता जा रहा था, वैसे यदि वह चाहे तो सारे पोठोहार को अपने पीछे लगा ले, कैसे अब जमींदार के कर्मचारियों की बात लोग अनसुनी कर देते, और सभी इस हठ पर थे कि फर्मान को राजकुमार कहकर बुलाया जाय। जब बोलते, तो 'राजकुमार जिन्दाबाद' कहते।

और उधर नव्वाब पानी की भाँति पैसा बहा रहा था, सारा दिन मदिरा के दौर चलते रहते। उसका घर जैसे गुण्डों, डाकुओं और बद-माशों का अड्डा था। लोग आते, वहाँ ठहरते, शराब पीते और चले जाते। जैसे वह घर न हो सराय हो। हर प्रकार की नटनियाँ आतीं, रावलपिंडी शहर से वेश्याएँ बुलवाई जाती; और अब ये लोग प्रायः नव्वाब के घर आते रहते। उसके कमरे में महफिल जमती, घुंघरुओं की झंकार और गाने की ऊँची आवाज कई बार दीवारें चीर कर जमींदार के कमरे तक पहुँच जाती। आधी रात के बाद और सबेरे सूर्योदय तक कभी-कभी प्रकाश ही रहता, कोलाहल मचा रहता, हँसी उठती और ऊँची उठता रहती।

फिर जमींदार को पता चला कि नव्वाब अस्तबल में से आजकल छोड़े पारितोषिक रूप में दे रहा था, कुत्ते इनाम दे रहा था, बाज उड़ा रहा था। बहुतों को फसलों से भरपूर खेत बाँट रहा था, बहुतों से उनकी सारी पूंजी छीन कर गुण्डों के हवाले कर रहा था।

नव्वाब जब कभी बाहर निकलता, दुकानदार दुकानें बन्द कर लेते, घरों के द्वार बन्द हो जाते, पति अपनी पत्नियों के आगे खड़े हो जाते, माताएँ अपनी लड़कियों को छिपाने लगतीं, वह बाजारों में खड़ा होकर मन्दी गालियाँ देता। हण्टर पकड़े और कुत्तों को अपने पीछे लगाए पान खा-खाकर थूकता रहता। शराब की बोतल हर समय उसकी जेब में होती। शराब पानी की भाँति पीता और गिराता, उसके घर क्री नालियों में से, दीवारों में से, शराब की भभक नाक को चढ़ती।

जमींदार उसके विषय में कहानियाँ सुनता रहा, सुनता रहा, और

उसका हृदय बैठ-बैठ जाता। वह सोचता—इतनी अन्धेरगर्दी तो उसन स्वयं कभी नहीं की थी, और ऊपर से समय कौन-सा बीत रहा था—“राजकुमार जिन्दाबाद” ये गगनभेदी नारे कभी-कभी उसके कानों में पड़ते।

एक दिन जमींदार ने नव्वाब की पत्नी रज्जी को भीतर बुलवा भेजा। वैसे वह बाहर ही से होकर चली जाया करती थी, जमींदार उसे देर तक समझाता रहा, रज्जी चुपचाप बैठी सुनती रही। उसकी आँखों से टप-टप आँसू गिरते रहे; रज्जी जब वापिस अपने कमरे में आई तो जैसे सारी शिक्षा वह भूल गई हो। नव्वाब तो उसका पति था, उसका सिरताज! उसकी जैसी इच्छा। पत्नी को क्या अधिकार था कि वह अपने सिरताज के मामले में कोई बाधा डाले।

दिन बीतते गए, सप्ताह बीतते गए, महीने बीतते गए, जमींदार दिन-प्रतिदिन दुर्बल होता गया। दिन-प्रतिदिन पीछे-ही-पीछे कदम रखता जाता—और नव्वाब ने, कोई ऐसी बाधा नहीं थी, कोई ऐसी दीवार नहीं थी, जिसे पार न कर लिया हो, जिसे गिरा न चुका हो। रेशमां के कमरे बहुत दूर थे, महल के एकांत में, जिस ओर आगे जाकर बागीचे आ जाते थे, और फिर जहाँ अस्तबल थे। जागीरदार सोचता—शु है कि उसकी लड़की को इस गन्दगी का आभास नहीं था, वह सोचता कि यदि कोई और पर्दा सम्भव हो सके तो वह भी रेशमां के कमरे पर डाल दे। आजकल हवा कितनी गन्दी थी, और उसकी लड़की कितनी स्वच्छ, कितनी कोमल, कितनी सरल हृदया!

बिस्तर पर पड़ा हुआ जमींदार सोचता—एक घर, एक पुरुष, आयुभर उसके साथ साँस लेती हुई एक स्त्री, और फिर पुरुष चाहे बीमार हो जाय! वह बुढ़ापा कितना विश्रामपूर्ण होता है जिसमें एक आदमी की साथिन सुखों की वर्षा कर रही हो। उसे बार-बार रेशमां की माँ याब आती, अपने चाटुकारों की हँसी से उसे घृणा होने लगी। छत पर झिलमिलाते हुए फानूस कभी वह उतरवा देता और कभी दोबारा

लगवा देता । कभी कालीन उठवा देता और कभी उन्हें फिर बिछवा देता ।

हाथ-भर की दूरी पर नब्बाब रहता था । सिर पर से पानी गुजर गया किन्तु वह जमींदार के कमरे में एक बार भी न आया । रेशमाँ मुँह-अँधेरे आती, साँझ को आती, अपने कोमल-कोमल हाथों से छोटी-छोटी सेवाएँ करती । रज्जी तो जैसे जमींदार पर जान दे रही हो, आठों पहर बाहर बैठी भीतर दवा भेजती रहती; अपने हाथों से खुराक बनाती और हर बात का ध्यान रखती ।

एक दिन फर्मान आया, उसके साथ पोठोहार के चार मजदूर भी थे । सुहाँ—नदी का पुल अवश्य बनकर रहेगा, और यदि जमींदार सहायता करे तो अच्छी बात है, वरना लोगों ने निर्णय किया था कि वे मिलकर स्वयं एक छोटा-मोटा पुल बना लेंगे ।

जमींदार पंचायत की सब बातें सुनता रहा ! कभी उसके होठों पर मुस्कराहट आती, कभी उसके ललाट पर बल पड़ते दिखाई देते । आखिर सुनते-सुनते उसकी आकृति लाल-पीली हो गई, फिर उसके शरीर से पसीना छूट पड़ा और उसके हाथ-पाँव ठण्डे पड़ गए । सारे-का-सारा उसका शरीर पीला हो गया, एक भगदड़ मच गई । पंचायत को बाहर निकाल दिया गया, वैद्य उपस्थित हुए, सभी कर्मचारी भागे हुए आ गए ।

“मैं न कहता था कि इन लोगों को मिलने का अवसर न दो,” जहाना बार-बार यही कहता, शेर जहाने का हमख्याल था ।

किन्तु न जाने कौन था जो जमींदार को पट्टी पढ़ा रहा था—चारों-के-चारों पिट्ठुओं को शिकायत थी कि आजकल जमींदार रेशमाँ की बातें मान रहा था । क्या यूँ भी कभी हुआ था ?

लेटे-लेटे जमींदार ने उस कुर्सी की ओर देखा, जिस पर फर्मान बैठा हुआ था । वह चकित हो रहा था, बार-बार उसकी दृष्टि क्यों उस ओर जा रही थी । कभी उसे यूँ जान पड़ता कि सामने से पर्दा उठाकर वह

कमरे में आ रहा है, कभी उसे यूँ दिखाई देता कि वह दाईं ओर के कमरे में लेटा हुआ है। कभी उसे यों अनुभव होता—वह पलंग पर आकर बैठ गया है। कभी उसे ये छायाएँ अच्छी लगतीं, कभी उसका खून खौलने लगता। वह सोचता कि एकबार वह उठ बैठे तो यह काँटा भी निकाल देगा; और जमींदार इसकी उधेड़-बुन में डूबा हुआ था कि सामने नव्वाब के कमरे से चीखने की आवाज़ आई, घर के नौकरों और कर्मचारियों के उधर दौड़ने की आवाज़ आई, और दूसरी ओर कुहराम मच गया।

शराब में बदमस्त नव्वाब ने अपनी पत्नी रज्जी को गले से पकड़ कर मरोड़कर रख दिया था, और लोगों के देखते-देखते उसने फड़फड़ाकर जान दे दी। नवयुवती, सुन्दरी, पतिव्रता, घर की शोभा, महल का शृंगार. रज्जी एड़ियाँ रगड़ती-रगड़ती ठंडी हो गई। जैसे प्राण निकलने में न आ रहे हों, कितनी देर तक नव्वाब उसके गले को दबाता रहा, और जब रज्जी की आँखों की पुतलियाँ फटकर बाहर निकल आईं, तब उसने खींचकर उसे फश पर दे मारा, और फिर भी रज्जी मरते-मरते मरी।

जमींदार को यह बात बताई गई, और उसके होटों पर मुस्कराहट-सी आई, जैसे किसी सड़ते हुए जोहड़ में से कोई बूलबुला फूट पड़े।

अगले दिन, फिर उससे अगले दिन जहाँ-जहाँ भी पोथोहार में यह समाचार पहुँचता, लोग हैरान रह जाते। इस बात को छिपाने का जितना प्रयत्न किया गया, उतने ही जोर से यह खबर आग की भाँति फैलती गई।

फर्मान ने जब यह बात सुनी तो उसने अपने निचले होंठ को दबाया और ऊपर का होंठ उठाकर मौन हो रहा।

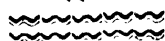
रेशमाँ को जैसे यह एकांत खाने को दौड़ता, आठों पहर नेकां साथ चिमटी रहती।

फिर पता चला कि नव्वाब ने एक और लड़की अपने घर में डाल

ली है, वह कोई शहर से स्त्री पकड़ लाया था। वह सेर भर लाली मुंह पर थोपती, आँखों में बार-बार सुरमा डालती, सारे शरीर को पाऊंडर से लिघेड़े रहती। वह बहुत अच्छा नाचती थी, नाचने से अधिक अच्छा गाती थी; सारा दिन वह नाचती और गाती रहती, दिन भर वह गाती रहती और नव्वाब शराब पिये बदनस्त सामने आँधा पड़ा रहता।

कुछ ही दिनों में उस नई लड़की ने चारों ओर अपना दबदबा बैठा लिया। सब आत्मारियों की कुँजियाँ उसने अपने हाथ में ले ली, और घर के सभी काम अपने हाथों से करने लगी। उसके घुँघरुओं की झंकार रेशमों के कमरे तक भा पहुँचती, उसकी तानें जमींदार के कमरे तक भी सुनाई देती।

क्रोधानल !



२१

जब से कंदलां ने हवेली में चरणा रखा, जमींदार अच्छा होने लगा, आज पहले से अच्छा, फिर उससे बहुत अच्छा। लगभग तीन सप्ताह के बाद वह बिल्कुल ठीक हो गया; वह स्वयं विस्मित था। और फिर एक दिन रावेल ने उससे कहा—“कोई-कोई चरणा ही ऐसा होता है कि पड़ते ही सूखे हुए उपवन भी हरे हो जाते हैं”—और उसकी दृष्टि परे नव्वाब के महल की ओर थी, जहाँ से घुँघरुओं की भंकार के स्वर फूट रहे थे और जमींदार ने दिल-ही-दिल में नव्वाब को क्षमा कर दिया। कई लोग कहते थे कि कंदला वेश्या थी, कई लोग कहते कि वह वेश्या नहीं थी, हर कोई नाचने वाली वेश्या थोड़े हो सकती है। कुछ भी हो, जमींदार सोचता—“भागवान लड़की अवश्य है”—जिस दिन से वह आई थी, चारों ओर एक चहल-पहल-सी दिखाई देती थी, वातावरण में जैसे रंग भर गया हो, एक अत्यन्त आकर्षक भंकार उसके कानों में पड़ती रहती।

शाम को चार घोड़ों की गाड़ी में जब जमींदार सैर को निकला, हवेली में बार-बार उसकी दृष्टि नव्वाब के महल की ओर उठती, जहाँ आठों पहर एक रौनक, एक कोलाहल-सा फूटता रहता था। कोई हँस रहा कोई गा रहा होता, कोई नाच रहा होता, कोई शराब उछाल रहा होता। जमींदार को अपना यौवनकाल याद आता, वह यौवन

काल याद आता, वह यौवन उससे भी कहीं रंगीन था, उससे भी कहीं बद-मस्त था, उससे भी कहीं अन्धा था। बाजार उस पर टूट पड़ता था, फिर वह राग भी समझता था। जब नाचती हुई कोई बाला स्वर-लय का सौंदर्य उपजाती तो वह राग पहचानकर मस्त हो जाता, और वह बाला उसे भुक-भुककर फ़र्शी सलाम किया करती। एक-एक तान पर लाखों रुपये लुटा देता।

“यह बेचारा क्या आनन्द लूटेगा ?” कभी-कभी जैसे जमींदार को नवाब पर दया आती।

फिर चार घोड़ों की गाड़ी हवेली में से निकलती तो लोगों के झुण्ड-के-झुण्ड जमींदार के सफेद घोड़ों के आगे जैसे बिछ जाते। बाजार में लोग उसे छिप-छिपकर सलाम करते, गली-मुहल्लों में और सड़कों पर काम करते हुए आदमियों के हाथों से वस्तुएं फिसल-फिसल जातीं, और फिर वे निश्चल खड़े हो जाते। शहर के कुत्ते जमींदार के कुत्तों से डरते, शहर के कबूतर जमींदार के कबूतरों से डरते, दीवारें जैसे काँप-काँप उठतीं।

और बाहर के बागीचे में जमींदार की गाड़ी जाकर रुक जाती, उसके कर्मचारी उसकी प्रतीक्षा कर रहे होते। जब से वह बीमार पड़ा था, जमींदार का दिल प्रायः जैसे उकताया-उकताया-सा रहता। उसे यूँ अनुभव होता कि ये बागीचे उसके बागीचे नहीं थे, जैसे वे हवेलियाँ बाँटी जा रही थीं, जैसे पूरी जागीर उसके हाथों से निकल रही थी। कभी वह सोचता कि अब वह मर रहा था, कभी वह सोचता कि यह एक व्यर्थ का भय था, जो उसके हृदय में आ बैठा था।

उसे अपने चारों के चारों पिटूँ आजकल अच्छे नहीं लगते थे। एक-दम उनकी बुराईयाँ उसे दिखाई देने लगीं। वे जो उसे कहते, वह सदैव उसके विरुद्ध काम करता। जहाँ वे उसे बैठने के लिए कहते वह वहाँ न बैठता, उनके साथ शराब न पीता, यथासंभव उनसे कभी काटता रहता।

खेतों में जाकर मेंढों पर बैठ जाता, घास पर नंगे पाँव चलता, बस

कुर्ता और तद्मत पहने रहता, छोटी-छोटी बातें पूछता रहता, कितनी-कितनी देर तक कुत्तों से खेलता रहता। बाज बंधे रहते, बन्दूकें बाहर न निकाली जातीं, उसे खुली हवा अच्छी लगती, बहता पानी अच्छा लगता, हल्की-हल्की फुहार जब पड़ती, उसका दिल भीगने को चाहता। पेड़ों की छाया में वह खड़ा हो जाता और वहाँ खड़ा रहता।

किसी की यदि उससे कोई शिकायत करता तो वह सुनकर हँस पड़ता, क्रोध तो जैसे उसे आता ही नहीं था। उसके पिटू संकेतों से उसके कान भरते रहते, भरते रहते।

लेकिन जमींदार आजकल आमतौर पर अपनी मनमानी किया करता, कभी-कभी वह इस बात से बहुत विकल हो उठता कि उसके कर्मचारी हर समय उसके साथ क्यों चिमटे रहते थे।

एक दिन वह घास पर बैठा-बैठा लेट गया और लेटे-लेटे उसकी आँख लग गई। सोते में उसने देखा कि सरदारां भंगिन हवेली में भाड़ू दे रही हैं, उसके गोल और गोरे अंगों पर बुढ़ापा छा गया है, उसके मुँह पर मक्खियाँ भिनभिना रहीं हैं, वह पसीने-पसीने हो रही है, हाँप रही है किन्तु जान मारकर काम कर रही है, जैसे वह अपनी जवानी में काम किया करती थी। जब उसके रूप की आभा सही नहीं जाती थी, जब वह अपने सिर पर टोकरा उठाती तो उसकी कमर बल खाने लगती। पतली-लम्बी सर के समान सरदारां—जिसकी माँ उस हवेली में काम करती रही, जिसकी माँ उस हवेली में भाड़ू देती रही। फिर परे जमींदार ने बरामदे में देखा कि उसका पाँच वर्ष की आयु का लड़का खेल रहा था, खेलता रहा, खेलता रहा; आखिर जब वह थक गया तो भीतर जमींदार के पलंग पर चढ़कर सो गया। दूध ऐसी श्वेत चाँदर देखकर जैसे स्वयमेव वह उस पर जा पड़ा, फिर क्षणभर में उसे नींद आ गई। सोते-सोते जमींदार ने स्वप्न में यह सब कुछ देखा, देखता रहा, देखता रहा। उसे फिर भी क्रोध न आया; और जब वह जागा तो उसके होठों पर मुस्कराहट खेल रही थी।

शहर में से निकलते हुए गली-मोहल्लों, सड़कों और बाजारों में गंदगी के ढेर देख कर उसका जी बहुत खराब होता। लोगों को कड़ी मेहनत करते देख कर उसके दिल को कुछ होने लगता, स्त्रियों और बच्चों के फटे हुए कपड़े देख कर उसे लाज आती, उसके पैरों तले से धरती निकल जाती, वह सोचता कि किसी प्रकार यह सब कुछ बदल जाय, किन्तु अब तो उसके अंगों में शक्ति नहीं रही थी। वह सोचता, इतनी देर के पश्चात कोई क्यों कर बदल सकता है ?

कभी-कभी उसका दिल चाहता कि वह अपना सर्वस्व किसी को सौंप कर स्वयं कहीं चला जाय, और जब कभी उसे यह विचार आता तो उसकी दृष्टि फर्मान पर पड़ती। कभी उसे क्रोध आ जाता, कभी वह हँस पड़ता। फर्मान पोठोहार के सम्पूर्ण प्रदेश में चुना हुआ नवयुवक था, वह बार-बार अपनी दुर्बलता पर स्तब्ध हो जाता, हैरान होता रहता। कभी वह सोचता, संभवतः वह उन कहानियों से डर गया था जो उसके पिट्ठू उसे सुनाते रहते थे, कभी वह सोचता फर्मान उसे इस लिए अच्छा लगता है कि उसका रूपरंग उसकी लड़की-ऐसा था, केवल फर्मान गोरा अधिक था जैसे जमींदार स्वयं गोरा था। फिर उसे बहादुर याद आ जाता—वह कितना परिश्रमी था। फिर उसे भागभरी याद आती, उस पर कैसी प्रलयकारी जवानी टूटी थी।

फिर वह सोचता आजकल भला भागभरी कहाँ होगी, आजकल तो वह बहुत बूढ़ी-खूसट हो गई होगी, वह तो सरदारों से भी आयु में कितनी बड़ी थी। फिर उसे यों जान पड़ता कि स्वप्न में जो लड़का खेलता-खेलता उसके पलंग पर जा सोया था, कहीं उसकी आकृति फर्मान से तो मिलती-जुलती नहीं थी। फर्मान उस दिन उसके बड़े कमरे में जाकर लेट रहा था और फिर पर्दा उठाकर साथ के कमरे में चला गया था। फर्मान को लोग 'राजकुमार' कह कर बुलाते थे, श्वेत और गोरा, गोल-गोल आँखों वाला।

फिर वह फर्मान के सम्बन्ध में सोचने लगा—जमींदार को अपने

आप पर अक्सर झुंझलाहट होती, पिढ़ी-इतनी जान को वह जब चाहता मरोड़ कर रख सकता था। वह हैरान होता, न जाने क्यों जब भी वह फर्मान के विषय में सोचने लगता था, सोचना जाता, सोचता जाता।

एक दिन उसने निर्णय किया कि वह यह खटका भी दूर कर देगा। उसने जहाने और जुम्मे को अपने पास बुलाया, कितनी देर तक वह उनके साथ घास पर लेटा रहा, लेटा रहा। जहाना और जुम्मा कुछ और ही चापलूसी करते रहे, किन्तु जमींदार के मुंह से उसके दिल की बात न निकली।

और इस विचित्र उधेड़-बुन में जमींदार के कई साँझ बीत गईं, और जब धुंधलापन फैलने लगता—जमींदार अपनी चार घोड़ों की गाड़ी में हवेली की ओर लौट आता।

एक दिन साँझ को वह यूँही लौट रहा था कि उसके अचानक जी में आया—घोड़ों की बाग उसने अपने हाथ में थाम ली, जैसे कई बार वह अपनी बीमारी से पहले किया करता था, चार घोड़ों की गाड़ी धीरे-धीरे चलती जा रही थी। उसके आगे लगभग पन्द्रह बीस कदमों पर जुम्मा और जहाना अपने-अपने घोड़ों पर थे। लोगों को जमींदार के आने-जाने का समय मालूम होता, वह स्वयमेव इधर-उधर हो जाते थे। एक मोड़ मुड़ते हुए जहाने के घोड़े ने लीद की ओर सड़क के किनारे आमने-सामने खड़ी दो लड़कियाँ झपटकर उस पर मेरी-मेरी करती हुई टूट पड़ीं। इतने में जमींदार की गाड़ी भी मोड़ मुड़ चुकी थी—इतने में जमींदार बागें खींचता ही रहा, किन्तु चार घोड़ों के सोलह सुम्मों और आठ पहियों की गाड़ी ने सात-सात वर्ष की उन लड़कियों को कुचल कर रख दिया।

एक कुहराम मच गया, कोलाहल-सा जाग उठा, सारा बाजार, गली मोहल्ला, अड़ोस-पड़ोस एकत्रित हो गया—न जाने इन दिनों इन लोगों की आँखें मोटी-मोटी क्यों हो गई थीं, उनमें साहस कहाँ से आ गया था। लोग दौड़कर गाड़ी की ओर बढ़े; जैसे बाढ़ उमड़ आ रही

हो, किन्तु फिर क्षण में बिखर गए। जमींदार ने केवल उचककर बाहर ही देखा था। गाड़ी अपनी चाल चलती हुई महल में आ गई, जमींदार को यह जान पड़ा जैसे जीवन में पहली बार उसका दिल बैठ गया हो। उसने हर आँख में हिंसा देखी थी, उसने प्रत्येक भुजा को ऐंठते देखा था, और यों बाजार-का-बाजार लोगों से भर गया था। निहत्थे, नंगे, भूखे और दुबले-पतले कंकाल एकत्रित हो गए थे और सभी मिल कर जैसे एक ग्रांथी बन गए हों।

विशेषरूप से जो नवयुवक जमींदार की आँखों में खुभा वह सबसे लम्बा था, सबसे अधिक उसकी आँखें लाल थीं। सबसे अधिक उसका वक्ष चौड़ा था, तना हुआ था। उसके अकड़े और ऐंठे हुए पठ्ठे जैसे टूट पड़ने के लिए विकल हो रहे थे, गोरा सुडौल शरीर वाला ओर जिसकी बिल्ली की-सी आँखें थीं।

और जमींदार सोचता जब बिल्ली की-सी आँखों में प्रलय नाच रही होती है, तो वह कैसी दिाई देती है।

अपने कमरे में आकर उसे यों अनुभव हुआ जैसे वह यहाँ किसी का अतिथि बन कर ठहरा हुआ हो, जैसे उसकी सम्पूर्ण वस्तुएँ उसे छोड़ कर पीछे हट रहीं हों, जैसे उसके वस्त्र तक उसके शरीर से उतरते जा रहे हों।

फिर उसने रेशमाँ को पुकारा।

अब भी कोई उत्तर न मिला, पहले तो वह एक-ही आवाज पर बोल उठती थी।

रेशमाँ आखिर जा कहाँ सकती थी, उसने फिर जोर से उसे आवाज दी।

“कहीं सोई न पड़ी हो।”

उसे फिर कोई उत्तर न मिला।

जैसे एक कंकर किसी तालाब में गुम हो जाता है, वैसे-ही इतने बड़े कमरे के एकान्त में वह गुम हो गया।

बाढ़ !



२२

श्रावण की झड़ी इस वर्ष कुछ इस प्रकार लगी, जैसे सदैव वर्षा हुआ करेगी। वर्षा रुकने में ही न आती थी, बादल टूट-टूटकर बरस रहे थे, बरसे जाते, काली घनघोर-घटाएँ उमड़-उमड़ पड़तीं। बादलों के पीछे बादल, बादलों के ऊपर बादल, आकाश बादलों से जैसे लदा हुआ हो। दिनभर गड़गड़ाहट और कड़कड़ाहट होती रही, सारी रात बिजली कोंदती, चमकती और तड़पती रहती। जितनी गर्मी उस वर्ष पड़ी, उतनी-ही शायद वर्षा हो रही थी, वर्षा हो रही थी, हो रही थी। किसी की कोई प्रार्थना न सुनता था, न अनुनय-विनय सुनता था, न किसी की फरियाद सुनता था। पहले आठ दिन लोग सोचते रहे कि यह झड़ी अक्सर सप्ताह-भर रहा करती है, किन्तु एक सप्ताह बीत चुका था, फिर एक और सप्ताह बीत गया; और अब तो एक महीना हो गया था, फिर भी सूर्य कहीं दिखाई नहीं दे रहा था, आकाश निखरने में ही नहीं आता था। गर्मी से तंग आकर जिन लोगों ने वर्षा के लिए हाथ उठा-उठाकर प्रार्थना की थी, अब सूर्य के लिए तरसने लगे थे।

पोठोहार का दरिया सुहाँ सब्र किये रहा, किये रहा। उसने अपना पाट बढ़ा लिया, पेट फुला लिया, बड़ी कठिनता से बहता रहा; किन्तु वर्षा थी कि सिर पर सवार हुई जा रही थी। आखिर क्रोधित होकर

दरिया ने अपने किनारे तोड़ लिये, किनारे तोड़कर ऊपर चढ़ गया। पेड़ उखेड़ दिये, फसलें बर्बाद कर दीं, गाँव-के-गाँव बहा ले गया; और दरिया जितना क्रोध में आता, उतने ही बादल और गर्जते, उतनी ही मूसलाधार वर्षा होती।

और दरिया का पानी अभी तक चढ़ रहा था, फैल रहा था, फैलता जा रहा था, सम्पूर्ण-प्रदेश उसकी लपेट में आ चुका था। पहुँचते-पहुँचते पानी तरलपड़ी तक आ पहुँचा, सुहाँ के किनारे गाँव तक फैल चुके थे। जैसे लोग वहाँ बसते ही नहीं थे, गाँवों के कच्चे घरों की छतें टपक रही थीं, गली-मोहल्लों और घरों में पानी आ गया था।

आकाश शोर मचाते हुए पक्षियों से अटा हुआ था, जिनके घोंसले या तो भीग चुके थे या गिर पड़े थे। गिद्ध और बड़ी-बड़ी चीलें ललचाई हुई नजरों से एक मदहोशी में उड़ रही थीं; उस दुर्गन्ध से जो सड़ते हुए जानवरों और भभकती हुई इन्सानी-लाशों से उठ रही थीं। कभी-कभी कोई गिद्ध पानी में फूली हुई भैस की लाश के पेट पर आ बैठता, और उसे नोचना आरम्भ कर देता। बड़ी-बड़ी चीलें इन्सानों की लाशों पर बार-बार आकर बैठतीं और उनके साथ आप तैरती भी रहतीं, आँखें, मुँह, और सिर को नोचती भी रहतीं।

पानी में लाशें इस प्रकार तैर रही थीं, जिस प्रकार पतझड़ के दिनों में तालाब के पानी पर सूखे पत्ते तैरते हैं। चारों ओर जहाँ-कहीं भी दृष्टि जाती, लाशें-ही-लाशें थीं। पुरुषों की, स्त्रियों की, बच्चों की, ढोर-डंगरों की, भैंसों की, बछड़ों की; और-तो-और मछलियाँ भी मरी पड़ी थी, मृगियाँ मरी पड़ी थी, खरगोश मरे पड़े थे।

पानी की आवाज यूँ सुनाई देती थी जैसे कोई शोर दहाड़ रहा हो, दूर कहीं जैसे साँप फुँकार रहा हो; और पानी अभी तक चढ़ रहा था, फैल रहा था, इलाके को और भी अपनी लपेट में लिये जा रहा था।

पानी के अपने शोर के अतिरिक्त चारों ओर मौत की-सी नीरवता

थी। या तो लोग मर चुके थे, या मरने के भय से मुँह फाड़े आकाश की ओर देख रहे थे। कभी-कभी यह स्तब्धता टूट भी जाती, जब कोई छत गिर पड़ती तो छत पर बैठे या खड़े परिवार चीखते-चीखते डूब जाते।

ऊपर से वर्षा हो रही थी, नीचे पानी चढ़ रहा था। गलियों में जानी-पहचानी लाशें तैर रही थीं, बिलखते हुए बालक अपनी माताओं के खाली स्तनों को चूस रहे थे, पत्नियाँ पतियों के मुँह की ओर देख रही थीं, पुष्प स्त्रियों से लज्जित थे, बालक बेसुध पड़े थे, युवक भुँभला रहे थे।

शाम होती थी, सबेरा होता था, रात आ जाती थी, और यूँ तीन दिन बीत गए।

बाढ़ में पेड़ बहे जा रहे थे जिन्हें फल लगे हुए थे। बाढ़ में बाढ़ें बही जा रही थीं जो बागीचों की रक्षा के लिए लगाई गई थीं। खेत रेतीले हो चुके थे, वे खेत, जिनमें दस बार हल चलाकर बीज डाला गया था। बाढ़ उन चौखटों को बहाकर ला रही थी, जिनके साथ बंधे हुए मांगलिक-सूत्र अभी मैसे नहीं हुए थे। बाढ़ में मन्दिरों की मूर्तियाँ बही आ रही थीं, मस्जिदों के मीनार बहे आ रहे थे। बाढ़ में नवयुवक बहे आ रहे थे, बच्चे-बूढ़े, जिनकी भुजाओं पर तावीज बँधे हुए थे, और अभी तक बँधे हुए थे। दुआ करते हुए मौलवियों को भी बाढ़ बहा लाई थी, और घड़ियाल बजाते हुए पुजारियों को इतना अवकाश न मिला कि बच सकते और वे शंख पकड़े हुए बह गए। पानी पर किसान तैर रहे थे, किसानों के हल तैर रहे थे, किसानों के ढोर-डंगर तैर रहे थे, लाल-सुर्ख दोशाले तैर रहे थे, कँगना-बँधी कलाइयाँ तैर रही थीं। काजल का भार न सह सकने वाली आँखों पर कव्वे अपनी चोंचें लगा रहे थे। सात पदों में रहने वाली सँभाल-सँभाल कर रखी हुई लड़कियों के भुर-मुट तैर रहे थे। नवयुवकों की चक्की के पाट-ऐसी चौड़ी छातियों पर

चिड़ियाँ सस्ताने के लिए आ बैठती थीं। कहीं-कहीं किसी खण्डहर में साशें एकत्रित होने लगतीं। कुत्तों की लाशों पर बच्चे आ टिकते और बच्चों की लाशों पर बूढ़े आ गिरते। स्त्रियों की नग्नता का कोई लिहाज न किया जाता; एक भेंस के सींग में बच्चे की खोपड़ी फंसी हुई थी। एक पोठोहारिन के लम्बे बाल किसी बछड़े की टाँगों से लिपटे हुए थे, एक माँ के स्तन मछलियाँ नोचकर खा गई थीं।

कुएँ बाढ़ के पानी से भर गए, बावलियाँ भी भर चुकी थीं, चश्मे भी भर चुके थे। पानी की कहीं बूंद नहीं थी, पीने के लिए पानी मिलता ही नहीं था, और लोग पानी में खड़े हुए थे जो कमर तक आ चुका था तथा अभी तक चढ़ रहा था। सामने जिस पानी में मुरदे तैर रहे थे, सामने जिस पानी में कुत्ते सड़ रहे थे, वह पानी कैसे पिया जाता, तो भी प्यासों ने वह पानी पिया। फिर कँ आई, पेचिश लगी, लोग तेजी से मरने लगे। मुँडेरों पर से मुरदों को नीचे फेंक दिया जाता। कोई किसी के लिए रो न सकता, कोई किसी के लिए प्रार्थना न कर सकता, “अरदास” न कर सकता। हैजे से मरते हुए लड़कों की माताएँ उन्हें अपने पुत्र नहीं समझ रही थीं, हैजे से मरते हुए माता-पिताओं को पुत्र पहचान नहीं रहे थे।

और आकाश था कि उसकी आँख मूखने में ही नहीं आती थीं, टपक-टपक कर टपकता। माणले की ओर से बादल जैसे बहते आ रहे हों, दौड़ते आ रहे हों; बादलों के ऊपर बादल, एक-दूसरे का कंधा रगड़ते, एक दूसरे को फलाँगते, लताड़ते, लपेटते, लुढ़कते आ रहे थे। पवन का प्रत्येक झोंका जैसे भरा-भरा भीगा-भीगा हो। लोगों ने छतों पर बरसातियाँ लगा दीं, छतरियाँ खोल दीं, चादरें तान दीं, किन्तु व्यर्थ ! जो लोग पेड़ों पर चढ़ गए थे, वे तीन दिन तक उन पर टँगे रहे। पेड़ों पर चिमटे-चिमटे उनकी आँख लग जाती और पेड़ों से चिमटे हुए ही उनकी आँख खुल जाती।

लोग हमेशा विस्मित हुआ करते थे कि जमींदार की हवेली की नींव इतनी ऊँची क्यों हुआ करती थी, किन्तु आज उन्हें पता चला कि इसका लाभ क्या था। पानी चढ़ता रहा, चढ़ता रहा, किन्तु किसी भी हवेली की देहली को न छू सका ; सारी धरती भीग गई, गीली हो गई, किन्तु जमींदार का घर अभी तक सूखा पड़ा था। पानी जैसे उसकी हवेली की सीढ़ियों से आकर खेल रहा था और मजबूत सफेद सीढ़ियों के पत्थर स्थिर खड़े थे। जहाँ से वर्षा होने लगी थी, जब पहली बार कुहराम मचा, और इससे पहले कि मौत की-सी स्तब्धता व्याप्त होती, जमींदार की अट्टालिका के द्वार और खिड़कियाँ बन्द कर दी गई थीं। कभी-कभी कोई झरोखा खुल जाता, उसमें से जैसे कोई ईश्वर का चमत्कार देख रहा हो,—भीतर से कोई आवाज न आई, भीतर से कोई संदेश न आया, भूखे प्राणियों के लिए खुराक का एक दाना बाहर न फेंका गया।

और लोग हैरान थे—ईश्वर कहाँ है ? ईश्वर क्या है ? ईश्वर को यह क्या हो गया है ? ईश्वर ऐसा तो नहीं सुना जाता, उसकी दृष्टि में तो सारा चराचर समान है। तख्तपड़ी की मस्जिद गिर पड़ी थी, तख्तपड़ी का गुरुद्वारा बह गया था, तख्तपड़ी का मन्दिर ओंघा पड़ा था। मन्दिरों, मस्जिदों, गुरुद्वारों में प्रतिदिन अपने मस्तक रगड़ने वाले प्राणी तड़प रहे थे। पुजारी सहमे हुए हाथ फैला-फैलाकर हार चुके थे, और सामने जमींदार के महल खड़े थे, जो मस्जिद के पड़ोस में उम्र भर अत्याचार ढाता रहा। मन्दिर के सामने उसके घोड़ों ने उस दिन दो बच्चे कुचलकर रख दिये थे, महल में खुराक के गोदाम भरे पड़े थे। महलों में पानी के कुएँ थे, महलों की छतों में से पानी की एक बूंद नहीं टपक सकती थी। लोग सोच रहे थे कि ईश्वर क्या है ? ईश्वर कहाँ है ? ईश्वर ऐसा तो नहीं सुना जाता ?

और लोगों ने आकाश की ओर देखना बन्द कर दिया, लोगों ने ईश्वर की सौगन्द उठानी बन्द कर दी।

किन्तु फिर भी कुछ इस बात में भी उसका कोई भेद समझते, कई लोग इसे ईश्वर-लीला कहकर चुप हो जाते। पानी में गलते हुए कुरान-शरीफ के पन्ने, मलवे के नीचे दबी हुई कृष्ण महाराज की प्रतिमाएँ; बहुतों को यूँ अनुभव होता कि वे फिर उठेंगी, फिर उभरेंगी।

और कोई सोचता कि यह परीक्षा है और वेदना की मस्ती में डूब जाते। मरकर जीवित होने का विचार बहुत-सों को एक हौसला-सा देता। मुँडेरों भर बैठे दुर्बलता से ऊँघते हुए ईश्वर के जीव स्वयमेव जैसे चुपके से नीचे फिसल जाते, दूसरे को पता भी न चलता।

किन्तु बहुत से ईश्वर को लाख-लाख गालियाँ देते, और कई सोचते कि उन्हें अपनी सहायता आप करनी चाहिए; और ईश्वर भी उन्हीं की सहायता करता है जो अपनी सहायता आप करते हैं। वे हैरान थे कि कोई अपनी सहायता क्योंकर करे ? कोई वर्षा से क्योंकर कहे कि वह बन्द हो जाय ?

कोई कैसे मिट्टी की दीवारों को गलने से रोक सकता है ? कैसे कोई पानी के बिना, रोटी के बिना, और सूर्य के बिना जीवित रह सकता है ?

एक भोंका-सा आया



२३

फिर शहर की ओर से जीवन का एक आवाहन आया, एक भोंका-सा आया, जिसने बहुतों को पुनर्जीवित कर दिया ।

फर्मान तख्तपड़ी में आ चुका था ।

विपत्ति में लोग उसे प्रतिपल-प्रतिक्षण स्मरण करते रहते । कोई कहता—वह इस विपत्ति में क्या कर सकेगा ? कोई कहता—“राजकुमार के लिए कोई बात कठिन नहीं है ।” और अब वह बाहर से गाँव में पहुँच चुका था ।

जाते ही फर्मान गायब हो गया, जैसे पहले भी वह दो-दो चार-चार दिन और कभी सप्ताह भर किसी के ढूँढ़ने पर भी न मिलता । और उसी शाम को स्वयंसेवकों की एक सेना आ उपस्थित हुई, सब कोठों पर आटा जाने लगा, दवाइयाँ जाने लगीं ।

लोग हैरान थे - राजकुमार कैसे यह जादू कर लेता था । लोग यह कहते कि उसका मेल-जोल दूर-दूर तक था; कुछ लोग आपस में खुसर-फुसर करते कि वह रावलपिंडी-शहर में जाकर ताँगे पर चढ़ता था । बहुत-से कहते कि वह बाबुओं के साथ बातें करता था, ऐनक वाले बाबू कभी-कभी उसे गाँव में भी मिलने आते थे । बहुत से कहते कि भागभरी

का लड़का कितना महान् व्यक्ति बनता जा रहा था, न उसे कोई घमंड था, न उसे कोई अभिमान था ।

फर्मान के सामने पहाड़-इतना काम था ।

काम करते समय कई बार उसे सख्त भुँभलाहट होती, मौत ने जैसे लोगों पर जादू कर दिया हो । मरने में लोगों को जैसे आनन्द मिल रहा हो, बँधे हुए खिंचे हुए, लोग मृत्यु के मुँह में चले जा रहे थे ।

लोग घरों में से निकलकर दालानों के पेड़ों पर जा चढ़े थे । किसी ने अधिक-से-अधिक यह किया था कि चारपाई उठाकर पेड़ के तनों पर डाल ली थीं और बैठने को एक मचान-सा बना लिया था । किन्तु वे अपने घरों को नहीं छोड़ते थे, एक-एक करके उनके कच्चे कोठे उनके सामने ढेर होते जाते, किन्तु दालान में से लोग बाहर चरण न रखते । अपने घरों पर आखिरी नजर डालते । उनके वे घर, जिनमें उन्होंने जन्म लिया था, पले—बढ़े, जिनमें उनकी सन्तान खेल-कूदकर बड़ी हुई, ऐसे घरों को कौन छोड़ सकता है ? पानी और चढ़ सकता था, पेड़ उखड़ सकते थे । स्वयंसेवक उन्हें एक स्थान पर एकत्रित करने के लिए जाते, वास्ता देते, मिन्नतें करते हुए हार जाते किन्तु लोग अपने दालानों में से न निकलते, अपने घरों से बाहर न आते । इन घरों में, जिनका नांव उन्होंने स्वयं अपने हाथों से रखी थी, जिनकी दीवारों को उनकी पत्नियाँ सारा वर्ष लीपती और पोतता रहीं, संकरती और निखारती रहीं—“वे चाहे मर जाँय” वे कहते—“किन्तु मरेंगे तो अपने दालान ही में मरेंगे ।”

अपने कोठे की छत पर से एक दिन फर्मान ने देखा कि एक बूढ़ी पोठोहारिन बैठी-बैठी बही जा रही थी । छत की बल्लियों की नाव पर वह जैसे बैठी हो, पानी की कोई लहर उसे अंधा कर सकती थी, किन्तु वह फिर भी बैठी बही जा रही थी । अपने कोठे की छत पर जहाँ से वह कभी परदेसियों की राह देखा करती थी ।

इधर फर्मान ने शहर से लौटकर गाँव में चरण रखा, उधर पानी उतरना आरम्भ हो गया । देखते-देखते आज कुछ, और कल कुछ, और

फिर कम होता-होता बिल्कुल उतर गया ।

पानी तो समाप्त हो गया किन्तु अपने पीछे विपत्तियों का एक पहाड़ छोड़ गया । गली-मोहल्लों में और सड़कों पर कीचड़-ही-कीचड़ था, चारों ओर लम्बे और गहरे गड्ढे पड़ गए थे, और उन गड्ढों में पानी अभी तक खड़ा था । चप्पे-चप्पे पर लाशें पड़ी थीं, स्त्रियों की, बच्चों की, वृद्धों की, जिन्हें जलाया जाना था । और फिर जानवरों के कंकाल थे, इन सबको भी संभाला जाना था । यदि इसमें तनिक भी देर हो जाती तो एक ऐसा रोग फैल सकता था जिससे कोई भी न बच सकता । मलवा उठाया जाने वाला था—उनके नीचे धड़कती हुई छातियाँ दबी हुई थी, चलती हुई नब्बें दबी हुई थी । औषधियाँ ढूँढ़नी थीं, मरहम-पट्टी का सामान एकत्रित करना था, आटा ढूँढ़ना था, वस्त्र कहीं से लाने थे, और काम करने वाल स्वयं भूख थे, नंगे थे और रोगी थे ।

किन्तु फर्मान को कोई विपत्ति निराश न कर सकी । प्रत्येक गली में, प्रत्येक मोहल्ले में, प्रत्येक घर में वह स्वयं पहुँचा और आवश्यकता की प्रत्येक वस्तु जरूरत की जगह पर पहुँचाई । लोग-तो-लोग, वह स्वयं भी कभी हैरान रह जाता कि कैसे आवश्यकताएँ पूर्ण करने के लिए वस्तुएँ आवश्यकता से अधिक उसके पास आ जाती थीं । नवयुवकों को फर्मान के नेतृत्व में काम करने में एक उत्साह-सा मिलता, वे सब-के-सब एक लगन में उसके साथ काम में जुट जाते ।

और लोग सोचते कि यदि जमींदार एक बार 'सुहाँ' पर बाँध लगा दे, किन्तु लोग कहते कि उसने तो एक पुल बनाने से इन्कार कर दिया था; और प्रतिवर्ष कितने ही लोग सुहाँ की लहरों की भेंट हो जाया करते थे । और फर्मान सोचता कि ये लोग स्वयं क्यों काम नहीं कर सकते थे । साधारण जनता, और सुहाँ के इलाके के मजदूर मिलकर यह काम क्यों नहीं कर लेते थे ?

फिर कड़कती हुई धूप पड़ने लगी । ज्यों-ज्यों लोग अपनी सहायता आप करते, त्यों-त्यों प्रकृति उनका हाथ बाँधती, और नवयुवकों की

एक सेना अपने-अपने काम में संलग्न थी। मलवे के ढेर उठाए जा रहे थे, गलियाँ साफ की जा रही थीं, गड्ढे भरवाए जा रहे थे, रोगियों की सेवा की जा रही थी, कोई कब्र खोद रहा था, कोई श्मशान में लकड़ियाँ पहुँचा रहा था।

और सुहाँ सिकुड़ता-सिकुड़ता अपने किनारों में सीमित हो गया, धीरे से और चुपके-से यूँ बहने लगा जैसे कुछ हुआ ही न था।

किन्तु गलियों का कीचड़ समाप्त होने में ही न आता था। लोगों की भूख हटने में ही न आती थी। दुःखों से दुःख जन्म लते, एक रोग का इलाज किया जाता दूसरा रोग आ दबोचता। किन्तु फर्मान की सेना 'राजकुमार जिंदाबाद' 'फर्मान जिंदाबाद' के नारे लगाती दिन-रात अपने काम में लगी रहती।

फर्मान ने अपने साथियों को बताया कि किस प्रकार कहाँ सहायता पहुँचानी है, कैसे मिल कर रहना है और मिलकर काम करना है, वह स्वयं लोगों के साथ मिल कर काम करता और कभी फिर गायब हो जाता।

और आज तीन दिन हो गए, फर्मान फिर कहीं अन्तर्धान हो गया था।

भागभरी को भी अपने लड़के का कुछ पता नहीं था। वह इस प्रकार पहले कभी नहीं गया था। कहीं जाय, फर्मान अपनी माँ को अवश्य बता कर जाता था कि वह कहाँ जा रहा है और आज पूरे तीन दिन हो गए थे। स्वयंसेवक अपना शेष कार्य कर रहे थे। पल-पल के पश्चात् "राजकुमार जिंदाबाद" के नारे लगा रहे थे। और ज्यों-ज्यों भागभरी अपने बच्चे के विषय में सोचती, उसके हृदय में लहरें उठतीं। आज तीसरे दिन सोचते-सोचते, बाट जोहते-जोहते उसे भय लगने लगा, लोग भूँडों-के-भूँड बाहर काम कर रहे थे। सारा दिन, सारी रात फावड़े चलते रहे, और प्रत्येक खड़खड़ाहट पर भागभरी के आँखों के सामने बुरे-बरे चित्र घूमने लगते।

सोचते-सोचते डरती-डरती भागभरी आखिर उसे ढूँढ़ने के लिए निकल खड़ी हुई। कोई कहता कि वह परसों यहाँ खड़ा था, कोई कहता कल उसे यहाँ उसकी परछाई-सी दिखाई पड़ी थी। कोई कहता अभी सबेरे तो उसने बाजार के पिछवाड़े उसकी आवाज सुनी थी, किन्तु फर्मान हर जगह था और कहीं भी नहीं था।

ढूँढ़ते-ढूँढ़ते भागभरी के चरण न जाने क्यों जमींदार की हवेली की ओर उठते, उस हवेली की झेर, जिसे देखकर भागभरी की आँखें फट कर बाहर आ जाया करती थीं।

भागभरी स्वयं कभी-कभी यह सोचकर हैरान होती कि वह आजकल इतनी विकल क्यों थी। फर्मान पहले भी तो कई बार घर से बाहर गया था। फिर वह अपने-आपको पुत्र के आरम्भ किये हुए काम में व्यस्त करती—गलियों को समतल किया जाना था, छतों के लिए सामान ढूँढ़ना था, टूटी-फूटी दीवारों को लीपना था, दीवारों की मरम्मत की जानी थी।

जहाँ-जहाँ गड्ढों में पानी खड़ा रह गया था, फर्मान ने सबको समझाया कि उसे सुखा दिया जाय, वरना जो मच्छर पहले ही इतन थे और अधिक बढ़ जाँयगे। और यदि मलेरिया या कोई और रोग फूट पड़ा तो सारा पोठोहार मौत के भुँह में चला जायगा।

काम करते-करते भागभरी किसी माँ को अपने लड़के को पुकारते सुनकर चौंक पड़ती। किसी लड़के को अपनी माँ के साथ बातें करता देख कर उसे छोटी-छोटी बातें याद हो आतीं—कैसे फर्मान को उसने पाला था, लाड़ और चाव के साथ ! स्नेह के साथ !! भागभरी को याद आया—एक बार उसने अपने बच्चे को छिपा दिया था, जब उनका एक सम्बन्धी उनसे मिलने के लिए आया था। वैसे तो कोई बात नहीं थी, किन्तु किसी ने बताया था कि उनकी दृष्टि अत्यन्त कठोर थी। बात यों हुई कि एक व्यक्ति एक शिला उठाए कहीं खड़ा था, लोग कहते हैं कि भागभरी के इस सम्बन्धी ने शिला उठाए हुए उस व्यक्ति की ओर

देखा और बोला—“कितनी अच्छी शिला है ?” बस, उसके मुंह से यह बात निकली ही थी कि देखते-देखते उस शिला के टुकड़े-टुकड़े हो गए । शिला वाला हक्का-बक्का रह गया, उसने उसकी ओर अवाकू होकर देखा और आँखों-में-आँखें डाल कर बोला—“क्या दृष्टि है !” और कहने वाले बताते हैं कि भागभरी के सम्बन्धी की एक आँख फूटकर बाहर आ गई । और भागभरी सोचती कि कहीं फर्मान को उसकी अपनी दृष्टि न लग गई हो । इन दिनों उसे दिन-रात काम करता हुआ देखकर वह खुशी से फूली नहीं समाती थी, किन्तु इन बातों की फर्मान खिल्ली उड़ाया करता था, इसलिए भागभरी उन भ्रमों को त्याग चकी थी, तो भी वह हेरान थी……इतनी विकल क्यों थी और बार-बार उसका जी क्यों चाहता कि वह उसे ढूँढ़ने के लिए चल दे और ढूँढ़ती-ढूँढ़ती जमींदार की हवेली की ओर जा निकले ।

भागवान !



२४

भागभरी हैरान थी कि बार-बार उसका जी जमींदार की हवेली की ओर जाने को क्यों कर रहा था !

निदान उससे रहा न गया । उसे यूँ अनुभव होता था जैसे किसी के चरण-चिह्नों पर जा रही हो, एक रात और बीत गई किन्तु फर्मान अभी तक नहीं आया था । वह घर से निकल पड़ी ।

गलियों से निकलती, दालान फलाँगती, भागभरी आखिर शहर के उस भाग में पहुँच गई जहाँ उसके भीतर की माँ अनुभव कर रही थी कि उसका लड़का खो गया था । सामने जमींदार की हवेली के ऊँचे मीनार थे, जो आसमान से बातें कर रहे थे, जो सुहाँ को ललकार रहे थे । हवेली की नींव कँधे-इतनी ऊँची रखी गई थी, इसलिए बाढ़ की कोई मुसीबत उसे नहीं छू सकती थी । नानकशाही छोटी-छोटी ईंटों और मिट्टी में दालें मिला-मिला कर तैयार किये हुए मसाले से बनाई हुई दीवारें, छतें और नीवें जम कर खड़ी थीं, जैसे कभी कुछ हुआ ही न हो ।

भागभरा सोचती कि यह हवेली कितनी पक्की है, एक दुगुँ के समान । भागभरी सोचती—यह हवेली न जाने कब से खड़ी थी और वैसी-की-वैसी विशाल थी । भागभरी सोचती—यह हवेली न जाने कब तक यूँ ही अटल, दृढ़ और अछूती खड़ी रहेगी ।

इतनी भयानक बाढ़ आई थी, इतनी कि सारे प्राणी बिलबिला उठे किन्तु सन्दूक के समान बनी हुई इस हवेली में से कोई वस्तु न जा सकी। कोई मकान ऐसा नहीं था जो सूखा बचा हो, किन्तु इसकी दीवारें वैसी-की-वैसी स्थिर खड़ी थीं।

और भागभरी का सुन्दर लड़का सब से कहता फिरता था कि एक बाढ़ आयगी, एक आँधी आयगी, एक आग भड़केगी, एक अलाब जलेगा, और न जाने क्या-क्या वे भीतर बैठे हुए कानाफूसियाँ करते रहते।

ज्यो-ज्यो भागभरी को अपने लड़के की इस प्रकार की बातें याद आतीं, वह त्यों-त्यों भय के मारे काँपने लगती। बार-बार उसकी दृष्टि आकाश की ओर जाती, प्रतिक्षण उसके हाथ ऊपर की ओर उठते।

सोचती-सोचती भागभरी पाँव कही रखती और वे पड़ते कहीं, जैसे कोई बीमार हो ! कभी रुक जाती, कभी वह बैठ जाती, कभी चलने लगती और कभी दौड़ना आरम्भ कर देती। प्रत्येक पदचिह्न उसे फर्मान का पदचिह्न लगता, उसका लड़का जो नंगे पाँव भी चलता, जूती भी पहनता, बूट भी उसके लिए शहर से आते थे। उसकी कोई चाह ऐसी नहीं थी जो पूर्ण न हुई हो। उसने कोई बुरी आदत अपने साथ चिमटने नहीं दी थी, कई-कई दिन वह गलियों में नंगे पाँव घूमता रहता, उसकी एड़ियाँ खुदरी हो गई थीं। भागभरी सोचती—जब वह शहर जाया करता था, तो उसके ऐनकों वाले मित्र उसके पाँवों में जुराबें पहना कर भेजते थे, बूट भी पहना कर भेजते थे।

कभी-कभी भागभरी सोचती कि फर्मान यदि ऐसी अनोखी-अनोखी बातें न करे तो कितना बड़ा किसान बन सकता था। वह प्रत्येक काम दिल लगा कर किया करता, जी तोड़ के किया करता, वह दिन-रात एक कर देता। किन्तु पोठोहार में कितने किसान थे, जमींदार किसी को फलता-फूलता देख कर प्रसन्न हो सकता था।

“ओ भागभरी !” उसे यूँ जान पड़ा—जैसे किसी ने उसे आवाज दी हो, किन्तु भागभरी अपने विचारों में डूबी हुई थी। जमींदार की

हवेली की दीवारें पत्थरों की भाँति कठोर थीं। इतनी भयकर बाढ़ आई इतना भयावना तूफान आया, किन्तु उसकी हवेली का एक किनारा तक नहीं भीगा था।

“ओ भागवान !” फिर उसे आवाज आई—भागभरी काँप उठी—यह तो जमींदार की आवाज थी।

भागभरी ने जब दोनों ओर देखा, तो उसे सूखता हुआ कीचड़ दिखाई दिया, कीचड़ में खुभे पैरों के चिह्न दिखाई दिये, ओधे पड़े पेड़ दिखाई दिए। वृक्षों में फँसे हुए घास के ढेर, चीथड़े, पक्षियों के पिंजर, और सामने जैसे इस्पात की बनी हुई जमींदार की हवेली थी। पत्थर की बड़ी-बड़ी शिलाओं पर शिलाएँ, उन पर छोटी-छोटी नानक-शाही ईंटें ठीकरी की भाँति जड़ी हुई थीं जैसे उन्हें अशक्तियों के समान पिरोया गया हो। ऊपर—उसके भी ऊपर—और ऊपर सामने के झरोखे में जब भागभरी की दृष्टि पहुँची तो उसे यों अनुभव हुआ, जैसे सारी सृष्टि चीख उठी हो—“हे भगवान् !” उसकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया और उसका अंग-प्रत्यंग जैसे निःशक्त हो गया, वह धड़ाम से नीचे गिर पड़ी।

भागभरी बेसुध और गुमसुम पड़ी रही, पड़ी रही, पत्थरों के समान जमे हुए कीचड़ पर। फिर रावेल की सुदृढ़ भुजाओं में, फिर जमींदार के एकान्त कमरे के गद्दों पर, निदान जब उसे होश आया, उसके सामने जमींदार खड़ा था। एक बार फिर भागभरी की आँखें बन्द हुई, उसके अंग मुड़ गए, उसके चेहरे पर पीलिसा फैल गई। लगभग डेढ़ घंटे के पश्चात् भागभरी ने फिर आँखें खोलीं, उस बार वह सिंहनी की भाँति दहाड़ उठी।

“कहाँ है बच्चा ! कहाँ है मेरा बच्चा ! कहाँ है मेरा लाल ?” भागभरी ने एकदम चीखना आरम्भ कर दिया—“ऐसा अँधेरा कभी नहीं देखा था, ऐसा जुल्म अत्याचार कभी नहीं सुना था, ओ लोगो मेरा शहतीर-ऐसा नौजवान कड़ियल बेटा ! यदि उसे कुछ आँच आई,

उससे किसी ने कुछ कहा, उसकी ओर यदि किसी ने आँख उठा कर देखा तो मैं उसका रक्त पी लूंगी ! मैं तो कहती हूँ कि “हे ईश्वर तेरे आगे मेरी विनय है । मैं तो अबला हूँ, जिसका कोई नहीं, मैं तो विधवा हूँ !

“तूने पहले ही मेरे सिर में धूल डाली है, पहले ही तूने क्या कुछ कम अत्याचार किया है, मैं तो कहीं मुँह दिखाने के योग्य न रहूँ । मैंने क्या-क्या विपत्तियाँ नहीं सहीँ । सारा-सारा दिन जान मारती रही हूँ और मैंने पेड़ ऐसा कड़ियल लड़का पाल-पोस कर बड़ा किया है, अभी तो खानकाहों में वे दिये नहीं बुझे, अभी वह तेल समाप्त नहीं हुआ, माथा रगड़ते हुए चिह्न पड़ गए हैं, अभी तो मेरी चादर उजली नहीं हुई, क्या ये धब्बे दूर हो सकते हैं ?”

जमींदार उसके सामने मुस्करा रहा था, वह तनिक भी क्रोधित नहीं हुआ था—भागभरी एक निर्भीक निधड़क सिंहनी की भाँति गरजती रही—“मैं हाथ जोड़ के प्रार्थना करती हूँ, सारी तख्तपड़ी का वास्ता देता हूँ, तुझे सारे पोठोहार का वास्ता देती हूँ, तुझे तेरी रेशमाँ का वास्ता देती हूँ, उसे कुछ न कह ! यदि उसे कुछ हो गया तो मैं आकाश के तारे नोच लाऊंगी, चारों ओर आग लगा दूंगी । यदि तूने उससे कुछ कहा—तो मैं मस्जिदें तोड़ दूँगी, खानकाहों की मिट्टी……”

जमींदार अब भी मुस्करा रहा था, जैसे उसकी आँखें कह रही हों कि तू थककर कब मौन होगी । और भागभरी अभी तक बोलती जा रही थी, उसके मुँह से अब भाग निकलने लगी थी ।

भागभरी ने एक-एक करके जमींदार के अत्याचार गिनवाए, अपने बहादुर को स्मरण करके उसकी आँखों से आँसू बहने लग पड़े । जमींदार को उसने ललकार-ललकार कर बताया—वह जानती थी, कैसे उसे विश्वास था कि यह सब उसी की करतूत थी—किसी को मलवे के नीचे गिरा देना, किसी का सुहाग लूट लेना । ऐसे अत्याचार करके वह कह रही थी, उसे दंड मिलेगा, वह गल-सड़ कर मरेगा ।

किन्तु जमींदार फिर भी मुस्कराता रहा था, वह क्रोधित हो ही न सकता था, उसके माथे पर त्योरी तक न उभरी ।

थक-हार कर भागभरी ने उसकी अनुनय-विनय आरम्भ कर दी, वह फर्मान से उसे बस एक बार मिला दे, बस वह एक बार उसे सीने से लगा सके, एक माँ अपने बच्चे को गले से लगा सके । आज पाँच दिन हो चुके थे कि उसके ठौर-ठिकाने का पता नहीं था । जमींदार के अतिरिक्त प्रदेश के सभी लोग उसके चरणों-तले आँखें बिछाते थे । राजकुमार-राजकुमार कहते हुए उनकी जिह्वाएं नहीं थकती थीं ।

छत से फानूस लटक रहे थे, द्वारों पर ! चारों ओर पर्दे सरसरा रहे थे । नीचे फर्श पर पड़े हुए कालीनो पर जैसे भागभरी धँसी जा रही थी । दीवारों से तलवारें लटक रही थी, ढालें लटक रही थीं, छुरे लटक रहे थे ।

भागभरी ने आखिर बिजली के कौंदे की भाँति उछल कर एक छुरा उतार लिया—“मुझे वतलाएगा कि नहीं, मेरा बच्चा कहाँ है ?” आखिर क्रोधावेश में भभकी—“मैं अपने सीने में यह कटार भोंक कर तेरे सामने गिर पड़ूंगी । एक और खून तेरी गर्दन पर होगा । यह तेरा पलंग हम ऐसे निर्धनों की कब्र है, और ये तेरे पर्दे हम विधवाओं के कफन हैं ।”

जमींदार फिर भी मुस्करा रहा था ।

और जब उसके सभी शस्त्र व्यर्थ हुए, तो भागभरी की आँखों से आँसुओं की बाढ़ फूट पड़ी । वह मछली की भाँति तड़प उठी, उसे जमींदार की मुस्कराहट में एकदम एक राक्षस की-सी झलक आई, वह बड़े जोर से बिलबिला उठी ।

“वह तेरा अपना लड़का था, मुझे मेरे ईश्वर की सौगन्द वह तेरा अपना रक्त था । आज कितने वर्ष हो गए, जब उन कस्बों में से तू गुजरा था, मैं मल-मलकर नहाई किन्तु यह कलंक का टीका मेरे माथे से न उतरा ।

“वह तेरा अपना लड़का था, सब लोगों का सरदार बेटा । वह कैसे बढ़-चढ़ कर बोलता है, अड़ोस-पड़ोस के लोग उसका रहन-सहन देखकर उसे राजकुमार कहते हैं, और मैं काँप-काँप उठती हूँ !

“वह तेरा लड़का था, क्या तूने उसकी आँखें नहीं देखीं ? क्या तूने उसके बाल नहीं देखे ? क्या कोई इस सारे प्रदेश में उस जैसा गोरा है ?

“वह किस प्रकार घोड़ों पर कूदता है ? कैसे शिकार करता है ? कैसे वह पोठोहार के प्रत्येक सिंह के हृदय पर राज्य करता है ? वह तेरा लड़का नहीं तो किसका लड़का है, ईश्वर के लिए अपनी संतान पर यह अत्याचार न करना !”

और भागभरी की दृष्टि जब सामने खड़े जमींदार पर पड़ी, तो वह एक बुत की भांति निश्चल अवाक् खड़ा था, उसकी आकृति से जैसे रुधिर टपक रहा हो !

भागभरी सहसा मौन हो गई, दोनों फटी-फटी दृष्टियों से एक-दूसरे की ओर देखते रहे—देखते रहे !

देखते-देखते आखिर जमींदार की आँखें लाल अंगार हो गई, उसका चेहरा तमतमा उठा - “नहीं नहीं, नहीं !” आखिर वह कड़ककर बोला—“तू डायन है, तू चुड़ैल है, तू भठ बोलती है !”

बेसुध होकर भागभरी फर्श पर गिर पड़ी ।

सामने दीवार पर लटकी हुई घड़ी थी । टिक्-टिक् ऊँची हो गई, फिर और ऊँची हो गई । फिर इतनी ऊँची हो गई, जैसे जमींदार के बिभाग में कोई चोट लगा रहा हो ! वह तेज-तेज चरणों से कमरे में चक्कर काटने लगा, तेज-तेज डग भरते हुए जैसे प्रत्येक चरण, जैसे पाँवों की प्रत्येक आहट उसके मस्तिष्क में धमक पैदा कर रही हो, जैसे उसके मस्तिष्क में चोटें लम्बी होती जा रही हों !

अगली सबेरे भागभरी तेली मोहल्ले के बाहर एक खेत की मेंढ़ पर पड़ी हुई थी । तख्तपड़ी में शोर मच गया । मालिश की गई,

तब कहीं जाकर भागभरी को होंश आया, इतने में फर्मान भी आ चुका था ।

“मैं बाहर चला गया था !” उसने माँ से क्षमा-याचना करते हुए कहा ।

फर्मान को देखते ही भागभरी बिल्कुल स्वस्थ हो गई, जैसे उसे कुछ हुआ ही नहीं था । दो दिन चारपाई पर लेटे रहने के बाद वह फिर अपने काम में जुट गई । फर्मान दिनभर छोटी-छोटी बातों पर ध्यान देता रहता, कुछ बनाता रहता, कुछ बिगाड़ता रहता, अन्य लोग शौक से उसके साथ जुटे रहते ।

जभी तो !

२५

रात बीत गई, सबेरा हो गया—जमींदार अभी तक अपने कमरे में निश्चल-अवाक् खड़ा था, तेज-तेज कदम, कभी धीरे-धीरे कदम, कभी ऐसे कदम जो गड़-गड़ जाते हैं, धँस-धँस जाते हैं ।

सामने दीवार पर टँगी हुई घड़ी की टिक्-टिक् जमींदार को तेज सुनाई देती, जब वह विकल-चरण उठाता । जब उसकी गति नपा-तुली होती तो यह टिक्-टिक् धीमी पड़ जाती ।

उसके कमरे की ओर जो कोई भी आने का प्रयत्न करता, चौंकर जैसे पीछे हट जाता । जमींदार के चेहरे पर एक रंग आ रहा था, एक रंग जा रहा था, और सबेरा दोपहर में बदल रहा था ।

जभी तो—जमींदार कभी सोचता कि उसका घोड़ा भागभरी और बहादुर की गली में से गुजरता हुआ बेलगाम हो जाया करता था । जभी तो शायद फिर वह सोचता कि कई बार उसने मुड़-मुड़कर उनके दालान में झाँका था । एक बार उसने जहाने से भी संकेत किया था कि भागभरी का ध्यान रखा करे, शायद उसकी पत्नी फज्जो उसके यहाँ गई थी कि नहीं ।

जभी तो—उसके कर्मचारी फर्मान के भूरे बालों की चर्चा किया करते थे, उसकी बिल्ली की-सी आँखों को सराहा करते थे, उसके गोरे

बदन के विषय में कहा करते थे ।

जभी तो—उसे लोग राजकुमार कहकर बुलाते थे और सम्पूर्ण-प्रदेश उसे उसके पद-चिह्नों पर चलता हुआ सुनाई देता था । इस प्रकार सोच-सोचकर जमींदार को यूँ जान पड़ता जैसे वह बिल्कुल नंगा भरे बाजार में खड़ा हो और लोग उसके पास से गुजरते हुए अपनी दृष्टि झुका-झुका ले रहे हों ।

सोचते-सोचते कभी उसका चेहरा तमतमा उठता, कभी बुझ जाता । जभी तो—वह सोचता—शायद बहादुर उसे अच्छा लगता था—वह कितना परिश्रमी था, वह कितना सरल था जैसे उसके मुँह में जबान ही न हो—और हवेली की छत उस पर गिर पड़ी । उसने एक खम्भे का सहारा लिया था, वह उस खम्भे को पकड़े रहा, पकड़े रहा, और सब मजदूर तो एक ओर को हट गए किन्तु वह अपने स्थान से न हिला और फिर छत उसके ऊपर आ रही ।

छत बहादुर के ऊपर आ गिरी और जमींदार ने अपनी आँखें उठाकर कमरे की छत की ओर देखा—फिर सामने की खिड़की से बाहर आकाश की ओर देखा । उसकी आँखें जैसे फटी-की-फटी रह गईं, उसके कमरे की छत तो उसके पूर्वजों ने बनवाई थी, शीशम के काले शहतीर, जिन्हें छः-छः महीनों तक तेल में डुबोया जाता । यह छत क्योंकि गिर सकती थी, और आकाश, सुनने में आया था कि कोई वस्तु नहीं, यूँही एक अम-सा चला आ रहा है—और जमींदार की गति धीमी पड़ जाती । वह सोचता कि एक उसकी लड़की रेशमां है, जैसे चमेली की कली हो, कोई सुगन्धि जिसे छिपाकर रखा गया हो ।

और एक उसका लड़का नव्वाब है जो अपनी नई पत्नी के साथ आज-कल रंगरेलियाँ मना रहा है, नव्वाब की नई पत्नी, जो नाचती भी है, गाती भी है, जब से उसने हवेली में पाँव रखा था, हवेली में एक गूँज-सी भर गई थी ।

और एक.....

“नहीं-नहीं” “उसका चेहरा फिर तमतमा उठता, उसके कदम तेज-तेज उठने लगते ।

कई बार सुमन गन्दगी के ढेरों में भी उगते हैं, कई बार मोती धूल में भी मिल जाते हैं—उसके भीतर कोई ये काँटे चुभोने लगता ।

जमींदार के कदम अधिक तेज हो जाते, उसका चेहरा अधिक दहकने लगता । फिर वह सोचता कि अगली फसल की कटाई के दिनों में रेशमां के हाथ पीले कर देगा, दूर देश के किसी जमींदार के साथ उसे ब्याह देगा, जहाँ वह सदैव प्रसन्न रहेगी, जहाँ से उसकी प्रसन्नता का समाचार आयगा । किसी का लड़का रेशमां को ब्याह कर ले जायगा, किसी का लड़का उसका अपना बन जायगा ।

“मेरा अपना लड़का” जमींदार की आँखों के सामने एक सबेर का चित्र खिंच गया और उसे यों जान पड़ा, जैसे वह ठोकर खाकर किसी खाई में जा गिरा हो । और जब उसने सिर उठाया तो उसके चारों ओर कीचड़-ही-कीचड़ बिखरा हुआ था ।

जमींदार पसीने में नहा रहा था, उसका भीगा हुआ शरीर चिप-चिप करने लगा, अपने-आप से उसे दुर्गन्ध आ रही थी जैसे उस दुर्गन्ध को जला-जलाकर चारों ओर बिखेर दिया गया हो—कूड़े की दुर्गन्ध !

घड़ी की टिक्-टिक् धीमी पड़ गई, अत्यन्त धीमी ! उसने भाँक-भाँक-कर रुक-रुककर, और समीप होकर देखा—वह जितना समीप होता जाता, घड़ी की चाल जैसे अधिक धीमी पड़ती जाती । टिक्-टिक्, टिक्-टिक्, टिक्-टिक् !

सहसा जमींदार को अनुभव हुआ जैसे कोई बाहर का व्यक्ति चुपके-से उसके कमरे में एक ओर से घुस आया है और सामने पलंग पर जाकर लेट गया है—एक पराया नवयुवक, गोरा गोल-मटोल, भरे-भरे शरीर वाला, विल्ली की-सी आँखों वाला, भूरे केशों वाला, बाहर से यं आया है, जसे यह उसका अपना घर है, जैसे वह प्रतिदिन इस कमरे में उठता-बैठता हो । और जमींदार का साँस जैसे घुटने लगा, कमरे की हवा उसे

अत्यन्त भारी-भारी अनुभव हुई। जमींदार को यूँ अनुभव हुआ, जैसे उसके बिखरे हुए बालों को कोई देख रहा है, उसके काँपते हुए पट्टों को कोई देख रहा है। उसके पसीने में भीगे हुए वस्त्रों को कोई देख रहा है, जैसे उसे देख-देखकर कोई मुस्करा रहा है।

टिक्-टिक्...एक बहुत जोरदार टिक् की आवाज के साथ घड़ी चलती-चलती रुक गई। धीमे-धीमे चढ़ाई पर चढ़ती हुई जैसे कोई लारी आधे मार्ग में जाकर खड़ी हो जाय और सब सहम जाय। जमींदार चौंककर पीछे की ओर मुड़ा और बिजली के-से भटके के साथ अपने पलंग पर जा गिरा।

टिक्-टिक्-टिक्—जैसे घड़ी ने फिर दौड़ना आरम्भ कर दिया। घड़ी की लय पर जमींदार का साँस तेजी से आने-जाने लगा, तेज, अधिक तेज, और तेज, तेज-तेज, फिर उसके हृदय की धड़कनें ही केवल सुनाई देने लगीं। जमींदार की सुध इस कोलाहल में विलीन हो गई।

जमींदार बेसुध पड़ा रहा, पड़ा रहा !

जब उसकी आँख खुली तो उसके कमरे में उसके कर्मचारी थे, वैद्य थे, हकीम थे, जादू-टोने वाले थे। उसके शरीर पर मालिश की जा रही थी, सबके चेहरों पर व्यग्रता थी। जमींदार ने लाख प्रयत्न किया कि वह हाय-हाय करे, आह भरे, उसके भीतर से कोई आवाज निकले, किन्तु उसकी जबान जैसे सुन्न हो गई थी, उससे अपनी जीभ हिलाई न जाती, उसके होठों पर जैसे तालें जड़ दिए गए हों, उन होठों को उससे हिलाया न जाता, उसने भुजा उठाने का प्रयास किया, उसने अपना हाथ सरकाना चाहा किन्तु वह तो एक लाश के समान लेटा हुआ था, उसका अंग-प्रत्यंग जैसे जकड़ा गया हो।

इस बिबक्षता, इस निर्बलता और इस बन्धन को अनुभव करते हुए जमींदार की आँखों के सामने फिर तारे टूटने आरम्भ हो गए, टूटते हुए तारे बिखरते गए—आखिर वह फिर बेसुध हो गया।

“मेरा अपना लडका ! मेरा अपना लडका !! मेरा अपना लडका !!!”

जब जमींदार की आँख खुलती तो उसके होंठ जैसे यह जाप कर रहे होते और रेशमाँ पलंग पर बैठी हुई उसके हाथ दबा रही होती ।

रेशमाँ को देखकर जमींदार की आँखों से आँसुओं की झड़ा लग गई । जमींदार ने पहले कभी इस प्रकार नहीं किया था—“बेटा-बेटा !!” कहते हुए उसने अपनी बेटी को छाती से लगा लिया । बेटी को उसने छाती से लगाए रखा और बारम्बार उसकी फरियाद चीत्कार बन-बनकर ऊँची उठती रही ।

फिर जमींदार पर एक शून्यता-सी छा गई, उसके आँखों तले अंधेरा व्याप्त हो गया, और जब यह अंधेरा छंटा तो उसकी आँखों के सामने पूरी तरह प्रकाश न हुआ, चारों ओर एक मद्धम-सी धुंध फैली रही ।

इस धुंध में उसने देखा—सामने दालान में रेशमाँ उसकी लड़की और एक सुन्दर लड़का खेल रहे हैं, यह लड़का रेशमाँ को बहन कहकर बुलाता है, आयु में भी उससे कुछ छोटा-सा दिखाई देता है । लड़के का गोरा और भरा-भरा शरीर बिल्ली की-सी आँखें और भूरे-भूरे बाल हैं । बिल्ली की-सी आँखें, भूरे बाल, बिलकुल रेशमाँ ऐसे—बिल्ली की-सी आँखें और भूरे बाल, जिस प्रकार जमींदार के अपने थे । ये दोनों बालक कभी एक-दूसरे की बांहों में बाहें डालकर खेलते थे, कभी एक-दूसरे की गालों से गाल मिलाकर खेलते थे, कभी एक-दूसरे के कंधे पर चढ़ जाते थे, और यूँ हँसते-खेलते-नाचते-कूदते वे आकाश की ओर चढ़ गए ।

जमींदार की आँखें एक बार फिर बन्द हो गईं ।

रेशमाँ उसके माथे के पसीने को अब भी पोंछ रही थी, उसके हाथों को अत्यन्त कोमलता से दबा रही थी । पलंग पर अपने पास बैठी हुई अपनी लड़की को जमींदार देखता रहा, देखता रहा । मैं अब रेशमाँ के हाथ पीले कर दूँगा—वह सोचता और सामने द्वार का जैसे पर्दा हटा—गोरा, भरे-भरे शरीर वाला, बिल्ली की-सी आँखों वाला एक नवयुवक भीतर आ गया । रेशमाँ उसके गले से लगी, नवयुवक पलंग पर बाईं ओर आकर बैठ गया । और फिर बाहर जमींदार को यूँ सुनाई

दिया जैसे बाहर ढोल बज रहे हों, शहनाइयाँ बज रही हों, अत्यन्त चहल-पहल हो। फिर उसने देखा कि एक थोड़ी आई है, उस पर कंगना बाँधे हुए एक नवयुवक गोरा, भरे-भरे शरीर वाला, बिल्ली की-सी आँखों वाला और भूरे बालों वाला सवार है। रेशमाँ उसकी घोड़ी को जो खिलाती है, 'भाई-भाई' कहती हुई उसका सेहरा बाँधती है, और फिर शहनाइयों का शोर और अधिक ऊँचा हो जाता है, ढोल और जोर से बज उठते हैं।

“नहीं-नहीं”—जमींदार ने जैसे फिर चीखना आरम्भ कर दिया। कर्मचारी, वैद्य और हकीम फिर भीतर आ गए; किन्तु इससे पहले कि वे भीतर आते, रेशमाँ साथ के कमरे से होती हुई बाहर जा चुकी थी।

“ए जहाने !”

“ए जुम्मे !”

“ए शेरे !”

“ए रावेल !”

बार-बार जमींदार अपने सेवकों को आवाज देता, किन्तु वे तो उसके कमरे में 'पहले ही से उपस्थित थे।

सामने दीवार पर तलवारें लटक रही थीं, बन्दूकें लटक रही थीं, खालें लटक रही थीं, हिंसक जानवरों की; जिनका जमींदार ने स्वयं अपने हाथों से शिकार किया था।

दुर्ग की भाँति जमींदार की हवेली अभी तक उतनी ही दृढ़ थी जितनी कि वह पहले कभी थी।

“आ गए, आ गए, आ गए !!!” करता हुआ जमींदार हड़बड़ाकर उठ खड़ा होता और उसे यूँ अनुभव होता जैसे सारी दीवारें, सारे मोर्चे लकड़ी के छिलकों के सामान मसले जा रहे हों।

कभी उसे यूँ अनुभव होता जैसे बाढ़-सी आ गई हो और उसे बचाने के लिए कोई न आ रहा हो। कभी उसे यूँ जान पड़ता, जैसे चारों ओर आग फैलती हुई सारी-की-सारी हवेली को अपनी लपेट में ले रही हो,

और कोई भी, नहीं जो सहायता के लिए आ रहा हो। कभी उसे यूँ लगता कि नेजे उछाले जा रहे हों, छुरियाँ चमक रही हों, भाले उठ रहे हों !

छोटी-छोटी वस्तुएँ बड़ी होती जा रही थीं, और जमींदार को यूँ लगता जैसे वह उनके नीचे दबता जा रहा हो। उसे आँधियाँ आती हुई दिखाई देती, भंभाएँ चलती हुई अनुभव होतीं, बिजलियाँ कौदती हुई जान पड़तीं, बादल गरजते हुए लगते, और उसका अंग-प्रत्यंग काँप उठता।

तेल की मालिश से, धूप और इत्र की सुगन्धि से जमींदार को कुछ शान्ति-सी अनुभव होती, तो सामने रेशमाँ की खिड़कियों से उसे यूँ अनुभव होता जैसे फूल बरसाए जा रहे हों, और नीचे जैसे वह नवयुवक खड़ा हो, गोरा-गोरा भरे-भरे शरीर वाला, बिल्ली की-सी आँखों वाला, भूरे वालों वाला।

“भाई धीरे-धीरे आ,

तेरे घोड़े को घास डालूंगी !”

रेशमाँ के गाने की उसे जैसे आवाज सुनाई दे रही थी और गोरा-गोरा भरे-भरे शरीर वाला, बिल्ली की-सी आँखों वाला, भूरे बालों वाला नवयुवक एक खिड़की में से उड़ता हुआ और दूसरी खिड़की में से निकलता हुआ भीतर चला जाता। रेशमाँ बार-बार उसके गले में हार पहनाए जाती।

फिर जमींदार सोचता कि रेशमाँ का आँचल एक अत्यंत सुन्दर युवक ने सम्भाला हुआ है, सारा पोठोहार जैसे उस विवाह पर टूट पड़ा है, लोग गा-गाकर, नाच-नाचकर थक चुके हैं, और फिर रेशमाँ चली जाती है, दूर क्षितिज तक जाकर एक चिह्न की भाँति विलीन हो जाती है।

जमींदार विस्मित होता कि उसे नव्वाब कहीं भी दिखाई नहीं दे रहा था। नव्वाब के कमरे के स्थान पर उस हवेली में एक रेतीला-

मैदान बना हुआ दिखाई देता था, जिसमें खस का एक अकेला पौधा था, जो दूर से इस प्रकार दिखाई देता जैसे नव्वाब की शहर से लाई हुई गाने और नाचने वाली नई पत्नी, पतली-दुबली कोमल-कोमल एक लड़की।

और जमींदार हैरान होता कि उसका कोई कर्मचारी भी दिखाई नहीं दे रहा था, न उसके नौकर न दासियाँ दिखाई दे रहे थे, तिस पर भी उसकी हवेली की प्रत्येक वस्तु उसे स्पष्ट दिखाई देती। चारों ओर उसे बहार आई अनुभव होती।

और गोरा-गोरा, भरे-भरे शरीर वाला, बिल्ली की-सी आँखों वाला, भूरे बालों वाला नवयुवक एक कमरे से निकलता हुआ दूसरे कमरे में जा रहा होता। दूसरे कमरे में से निकलकर तीसरे कमरे में प्रविष्ट हो रहा होता।

और जमींदार को बार-बार पसीना आ जाता तथा बार-बार बेसुध हो जाता। जादू-टोने वाले मन्त्र पढ़ते रहे, हकीम दवाएँ देते रहे, वैद्य नुस्खे बनाते रहे, किन्तु जमींदार यूँ पलंग पर पड़ा कि फिर न उठ सका।

जादू टूट गया !



२६

सारे-का-सारा पोछोहार कुछ और का और हो गया । ढेरो की कोई बात न पूछता, ढेरो हैरान थी । ढेरो ने लाख जगराते काट, ढेरो न बार-बार अपने-आप में देवी उतारी, ढेरो ढोलक पीटते-पीटते थक जाती, किन्तु ढेरो जो बात न चाहती, वह अवश्य होकर रहती ।

ढेरो बहुत परेशान थी ।

जिस दिन से मोती को ढेरो ने छत से लटका कर मार दिया था, उसे यूँ अनुभव होता जैसे उसका सारा जादू टूट गया हो । वह सोचती कि कहीं सारा चमत्कार उस कुत्ते में तो नहीं था ?

बात यूँ हुई कि एक दिन जब वह कुएँ पर से आई, कुत्ता उसकी अनुपस्थिति में कहीं खिसक गया । घर आकर वह उसकी प्रतीक्षा करती रही, करती रही—वह काफी समय के बाद लौटा । ढेरो ने सोचा—उसे कोई हड्डी कहीं से मिल गई होगी, उसने इस बात का कोई विचार न किया । अगले दिन फिर मोती उसी समय पर गायब था, ढेरा ने फिर भी कोई परवाह न की ; ठीक उसी समय तीसरे दिन जब वह फिर घर से बाहर निकल गया, तो ढेरो को दाल में कुछ काला-काला अनुभव हुआ । ढेरो चुपचाप अपने काम में मगन हो गई ।

नियमानुसार लगभग दो घण्टे के पश्चात् मोती दुम हिलाता, नाक फुलाए, मुँह खोले दाँत निकाले हुए आ रहा था। ढेरो ने आज देखा कि मोती की आँखों में कीचड़ कुछ कम थी, चलते-चलते तेज-तेज डग भरता और उसकी टाँगें सीधी धरती पर पड़ रही थीं, किन्तु ढेरो ने उस ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। चौथे दिन जब मोती उसी समय और उसी प्रकार दालान से निकलने लगा, तो बड़े कमरे में चक्की पीसती हुई ढेरो ने उसे देख लिया, और कड़ककर आवाज दी—“मोती !”

मोती वहीं-का-वहीं जैसे जकड़ा गया हो। दुम सीधी लटकाकर अगले पाँवों को आगे फैलाकर और पिछली टाँगों को धड़ के नीचे समेटकर च्याऊँ करता हुआ मुड़ा, जैसे अत्यन्त लज्जित हो, जैसे कोई चोरी करता पकड़ा जाय।

और अपनी यूथनी को अगली दोनों टाँगों पर फेंककर वह ढेरो के पास फैलकर लेट गया। ढेरो ने उसके माथे पर लाड़ से हाथ फेरा और फिर वह अपने काम में मगन हो गई। चक्की की गति के साथ चलने वाला गीत वह होश संभालने के समय से गाती आ रही थी :

कहीं तो पेड़ लगाती हूँ,

पत्तों वाले पेड़ !

कहीं शहतूत लगाती हूँ,

बाग में बूटे लगाती हूँ,

पत्तों वाले बूटे !

बाग में शहतूत लगाती हूँ,

और अब वह पेड़ हाथभर के हो गए हैं,

पत्तों वाले पेड़ !

और अब शहतूत भी हाथभर लम्बे हो गए हैं,

किन्तु तुम ऐसे मूर्ख हो कि समझ नहीं आई !

और यहाँ तक पहुँचकर वह सदैव रुक जाया करती थी, यहाँ तक पहुँचकर सदैव उसका कंठ रुंध जाता था, और उसकी आँखें सजल हो

जातीं । एक नासमझ की याद में यह गीत ढेरों ने उम्रभर गाया, पहले तो हर घड़ी, दिन-रात यह गीत गाती रहती । और जब से मोती उसके दालान में आया फिर उसे लगने लगा जैसे उसका हमदर्द मिल गया हो ! हर समय मोती-मोती करती वह पुरानी बातें भूलती गई ।

मोती उसके कमरे में होता तो अभागिन ढेरो को इस प्रकार अनुभव होता जैसे वह अकेली नहीं । मोती की स्वामि-भक्ति देखकर एक तो वह पुरुषों का उपेक्षाभाव भूल जाती । मोती उसके समीप होता तो ढेरो के भीतर का स्त्रीत्व जागा-जागा सा रहता ।

तो भी, कभी-कभी किसी गहराई में छिपी हुई जैसे कोई भावना जागती है, ढेरो का जी बार-बार यह गीत गाने को चाहता और बार-बार उसकी आँखें सजल हो जातीं ।

ढेरो आज फिर यह गाती रही, गाती रही । आज फिर चक्की चलाते हुए उसकी आँखों के सामने उसका अपना जीवन चित्रवत घूम गया । उसने पहला विवाह किया । उसका पति उसकी बड़ी बहन को लेकर भाग गया । उसने दूसरा विवाह किया, अभी अधिक दिन नहीं बीते थे कि उसके पति ने किसी पड़ोसिन को संभाल लिया । और ढेरो संसार में अकेली रह गई । कितनी देर तक वह रोती रही और फिर मोती उसे मिल गया । एक ही दृष्टि में जैसे उनमें मित्रता हो गई, बेरी तले बैठी, दूधिया श्वेत वस्त्र पहने हुए एक भिस्ती की स्त्री के साथ मोती कुश्ती लड़ रहा था । कभी उसकी टाँगों में से निकलता, कभी उसकी भुजाओं से रगड़ करके निकलता, कभी उसके हाथों को चाटता, कभी उसके पाँव सूँघता । सामने कोठे की मुँडेर पर बैठी ढेरो यह कौतुक देखती-देखती मस्त हो गई । एक नशे में उसकी आँखें मुंद गई ।

और अगले दिन मोती ढेरो के दालान में खेल रहा था ।

देसी घी की चूरी और भिस्ती के घर की सूखी रोटी में अन्तर होता है । भैंस के दूध में और उस छाछ में भी अन्तर होता है जो भिस्ती के घर में कहीं से माँगकर लाई जाती है । गद्देदार पलंग में और

भिस्ती के घर के अस्तबल में अन्तर होता , जहाँ उसकी गदही हर समय द्रुम हिलाती रहती है ।

मोती एक बार ढेरो के यहाँ आया तो फिर वहाँ से जा न सका ।

ढेरो सोचती भी जाती और गाली भी देती जाती ।

लगभग एक घंटे के उपरान्त ढेरो ने पीछे मुड़कर देखा—मोती वहाँ नहीं था । चक्की को छोड़कर उसने चारों ओर देखा, ऊँची-ऊँची आवाजें दीं, किन्तु मोती कहीं भी नहीं था ।

ढेरो बहुत भुँभलाई ।

पूरा एक घंटा और बीत गया, तो ढेरो ने देखा कि मोती दीवार फलंगकर चुपके से चोरों की भांति दालान में आ चुका था ।

ढेरो विस्मित थी !

अगले दिन वह शाम को मोती की निगरानी में बैठ गई । नियमानुसार ठीक उसी समय मोती विकल और व्यग्र होने लगा । कभी इधर जाय कभी उधर जाय, फिर वह एक गिलहरी के पीछे दौड़ा । गिलहरी दौड़कर सामने के पेड़ पर चढ़ गई और मोती जड़ के पास खड़ा उसकी प्रतीक्षा करने लगा । ढेरो ने सोचा कि अब वह अपने भँभट में उलझ गया है, कहाँ जायगा—उसकी आँखें तनिक हटों तो मोती गायब था ।

ढेरो के तन-बदन में आग लग गई । वह घर का द्वार खुले-का-खुला छोड़कर दौड़ पड़ी । गलियों और नुक्कड़ों में भाँकती निदान गाँव के बाहर जा पहुँची । देखे तो मीरासियों के पड़ोस में एक पेड़-तले खानाबदोशों की कुतिया के साथ खेल रहा है । कभी वे मिलकर भागते, कभी आँख-मिचौनी खेलते, कभी लाड़-चाव से एक-दूसरे को काट खाते, और इस प्रकार नाचते हुए, कूदते हुए, खेल करते हुए अँधेरा फैल गया ।

ढेरो क्रोध में उबलती हुई घर पहुँची, उसके पहुँचने के पाँच मिन्ट पश्चात् मोती भी ठीक समय पर लौट आया ।

“कहाँ गए थे ?” ढेरो से आज रहा न गया, और उसन मोती को ठोकर मारते हुए पूछा ।

गर्दन झुकाए हुए, दृष्टि नीची किये च्याऊँ-च्याऊँ करता मोती ढेरो की ओर आया, जैसे उसके चरणों पर गिर पड़ा हो ।

ढेरो को अधिक क्रोध आया, उसने तानकर थप्पड़ उसके मुँह पर दे मारा । मोती वहीं-का-वहीं सिर झुकाए पड़ा रहा । ढेरो ने एक ओर ठोकर मारी, मोती न हिला ।

ढेरो का क्रोध जैसे बढ़ता ही जाता । एक डंडा उठाकर उसने मोती की चमड़ी उधेड़ दी, कुत्ते ने हाथ तक न की, उसके मुँह से आह तक न निकली ।

“तू भी मर्द है !” आखिर क्रोध से ढेरो लाल-पीली हो गई और उसने अपने ऊपर का एक ही दाँत अपने निचले होंठ में गड़ा लिया, मोती वैसे-का-वैसा पड़ा था ।

“उठ, ओ मर्द के बच्चे !” आखिर ढेरो ने गरजकर कहा और दोनों हाथों से मोती को उठाकर उसके गले के गिर्द रस्सी लपेट दी ।

और फिर गाँठ अपने आप दृढ़ तथा तंग होती गई...

सामने बैठी ढेरो खिलखिलाकर पैशाचिक हँसी हँसती जाती, हँसती जाती । मोती तड़पता रहा, तड़पता रहा, और फिर ठण्डा हो गया, ढेरो हँस-हँसकर दोहरी होती गई ।

बहुत रात गए ढेरो ने रस्सी की ऊपर की गाँठ खोली और मोती को वैसे-का-वैसा घसीटती हुई शहर से बाहर ले गई । मीरासियों के पिछवाड़े की ओर, पेड़ तले रस्सी को लटकाकर उसने न जाने किस शक्ति से कुत्ते को धरती पर दे मारा—“तू भी मर्द है !” अत्यन्त घृणा से उसने कहा और फिर वह घर लौट आई ।

उस दिन से ढेरो को यूँ अनुभव होता, कैसे उसने सारे संसार की स्त्रियों का सारे संसार के पुरुषों से प्रतिशोध ले लिया हो, किन्तु उसमें जादू की जो शक्ति थी, वह जैसे मोती के साथ चली गई । वह लाख यत्न करती, किन्तु देवी कभी उसके अन्दर अवतीर्ण न होती ।

और ढेरो कभी-कभी अपने-आप से कह उठती—“आखिर था भी क्या ?

कहाँ की देवी और कहाँ का जादू !”

और घृणा के मारे वह बार-बार नाक सिकोड़ती ।

फिर बाढ़ आई, ढेरो ने लाख प्रयत्न किये कि वह उसे रोक ले, किन्तु अब तो उसे अपने-आप पर विश्वास नहीं रहा था ।

ढेरो का मकान गिर पड़ा, ढेरो के शंस बह गए, ढेरो की ढोलक खो गई, दीवारों पर चित्रित आकृतियाँ भी न बच पाई, अन्य लोगों की भांति ढेरो भी छत पर टंगी रही, पेड़ों से चिमटी रही ।

बाढ़ के बाद ढेरो की समझ में न आता कि वह कहाँ जाय, क्या करे, लोग अपने-अपने घन्धों में उलझ गए, कितने दिन तक ढेरो की किसी ने कोई बात न पूछी । प्रतिदिन उसे यू अनुभव होता जैसे लोग बदल रहे हों, और के और हो रहे हों !

ढेरो ने सोचा कि वह फिर मकान बनवाये, फिर बर्तन ढूँढ़े, फिर वस्त्र सिलवाये, फिर चारपाई ढूँढ़े, फिर बिस्तर मोल ले, फिर चूल्हा लीपे और पोते ।

कौन इतना कुछ करे ?

एक रात उसने अपने घर के टूटे हुए शहतीरों को एकत्रित किया, मिट्टी का तेल उन पर छिड़क कर आग लगा दी, और चुपके से उस चिता पर स्वयं बैठ गई ।

और हँसती-खेलती ढेरो जल गई !

हम भूखे हैं !

२७

तत् तत् ता दिग् थुम् थुम्, जीजी, कित, थू, थुअंग्, तक, धुम्, घुम् तीदा, दिग् दिग् थई, तक थुग्, थुम् तीदा, दिग् दिग् थई, तक् थुम्, थुम् तीदा, दिग् दिग् थई.....!

कंदलाँ अकंली नाच रही थी । सल्मे-सितारे से झिलमिल करते हुए उसके जेवर, सुगन्धि से बसे हुए, गज-गज भर के लम्बे गुंथे हुए केश, मोतिए की सुकोमल कलियों से सजे हुए, रंगे हुए उसके अधर, गुलाबी किये हुए कपोल, मोतियों की तरह आभा बरसाते दाँत, मोटी-मोटी काली आँखें, जैसे कोई अप्सरा आकाश से उतर कर आई हो !

नाचते-नाचते कंदलाँ ने गाना आरम्भ कर दिया—‘सुन्दर देशों में सबसे सुन्दर देश पंजाब है !’

गाते-गाते उसने पंजाब के पहाड़ों की चर्चा की, और अपने अंग-अंग को उसने चट्टान का-सा, पथरीला बनाकर दिखाया । फिर उसने पंजाब के दरियाओं की चर्चा की, जैसे शीशे की भाँति पिघल कर बह निकले हों । फिर उसने पंजाब के लहलहाते खेतों की चर्चा की, कलियों की चर्चा की, फूलों की चर्चा की, और उसका अंग-प्रत्यंग खिल उठा ।

पंजाब के वीर-सैनिकों की चर्चा करते हुए कंदलाँ शेरनी की भाँति

दहाड़ उठी, पंजाब के जाटों की चर्चा करते हुए कंदलाँ उन्नत-मस्तक हो गई, पंजाब के राँभों, पंजाब के हीरों, पंजाब के मिर्जाओं की चर्चा करते हुए वह भूम-भूम गई।

कंदलाँ सोचती कि वह अभी तक अकेली थी, नाचती गई, नाचती गई।

अभी उसका नृत्य समाप्त नहीं हुआ था कि वाह-वाह करता नशे में डूबा नव्वाब साथ के कमरे में से निकल आया। अपनी तरंग में नाचती और गाती हुई कंदलाँ को पता न लग सका कि कब से नव्वाब बाहर गाना सुन रहा था, छिपकर उसका नृत्य देखता रहा था।

नव्वाब के बार-बार आग्रह करने पर कंदलाँ ने एक और नृत्य आरम्भ कर दिया, उसका नाम था “हम भूखे हैं !” एक भूखे-प्राणियों की गाथा, जिन्हें कभी पेट भर खाने को न मिला हो, ऐसे लोग जो पेट की ज्वाला बुझाने के संघर्ष में अपनी आयु गला देते हैं, फिर भी जिन्हें पेट भरने को नहीं मिलता, जो कई पीढ़ियों से अपने बच्चों को, अपने पोतों को पैतृकरूप से भूख देते आए हैं, निर्धनता और दरिद्रता देते आए हैं। यह उन लोगों की कहानी थी कि जो जितना कुछ कमाते, पर चील झपट्टा मारती और वह सब कुछ ले जाती। यह नृत्य धरती के एक टुकड़े के विरुद्ध पुकार थी, लूट-खसूट के विरुद्ध पुकार थी, अन्धों और बंदरबाँट के विरुद्ध पुकार थी, और कंदलाँ एक-एक भंगिमा के साथ दस-दस बातें बता जाती।

और फिर कंदलाँ ने पूर्ण-चित्रांकन किया कि उस प्रदेश में बाढ़ आ जाती है, और यह न रुकने वाला पानी सारे प्रदेश में खलबली मचा देता है, च्युंटियों की भाँति लोग पानी की सीमा से बाहर होते जाते हैं, ऊपर और ऊपर, और इस प्रकार सारे-का-सारा प्रदेश या पेड़ों पर चढ़ जाता है या किसी कोठे का आसरा लेता है।

चारों ओर भूख का कोलाहल मचा है, और कंदलाँ की आँखों से छम-छम करते हुए आँसू गिरने लगे। अभी तक शराब पीता हुआ नव्वाब

और कुछ न समझ सका, किन्तु कंदलाँ के आँसू उससे छिपे न रहे ।

उसने उठ कर उसे नाचते-नाचते पकड़ लिया और यह रट लगाने लगा कि वह रो क्यों रही थी ! शराब का हठ अत्यन्त दृढ़ हुआ करता है, कंदलाँ ने टालना चाहा, उसे कुछ अन्य बातों में लगाना चाहा, किन्तु नव्वाब बिलकुल न माना । शराब के नशे में उसे यूँ ज्ञात होता कि उसे अपनी आँखों से कुछ दिखाई नहीं दे रहा था । हाथ कहीं डालता, किन्तु हाथ पड़ कहीं जाता, उसके हाथ और जिह्वा जैसे फूले हुए थे, उसके मुँह से कोई स्पष्ट बात न निकल सकती ।

इस प्रकार उसे पीछे पड़ा हुआ देखकर कंदलाँ तंग आ गई, किन्तु क्रोधित होने और भुँभलाने की उसे आदत नहीं थी । सामने आत्मारी के दर्पण में स्वयं को यूँ फँसा हुआ देखकर वह मुस्करा दी ।

कुछ समय तक उसने यूँ ही टालमटोल की, किन्तु जब नव्वाब का हठ सीमा से बाहर हो गया तो सामने दर्पण में फटी-फटी आँखों से देखती हुई कंदलाँ ने नव्वाब की नर्तकी से आँख मार कर पूछा कि वह क्या करे ।

और दर्पण वाली कंदलाँ ने कहा—बुरे को बुराई से अच्छा बना दो अथवा मरोड़ कर रख दो, फिर निमिषभर में कंदलाँ ने एक कहानी घड़ी ।

“मुझे आज माँ-बाप याद आ गए हैं ।” कंदलाँ ने उस स्त्री के समान कहा जो पति के छिपे घाव को पहचान ले । फिर उसकी कहानी स्वयमेव आगे चल पड़ी ।

जब नव्वाब उसे शहर में मिला, तो कंदलाँ उस समय अपने घर वालों से रूठ कर आई थी । उसके माँ-बाप किसी और स्वभाव के थे और स्वयं किसी दूसरी प्रकृति की थी । उसका साँस उसके अपने घर में घुटा-घुटा-सा रहता और हर समय उसे किसी-न-किसी बात पर टोका जाता । फिर कंदलाँ की किसी के साथ जान-पहचान हो गई और यह जान-पहचान गहरी मित्रता में परिणित हो गई, ऐसी मित्रता, जिसके लिए

कोई बलिदान किया जा सकता है, जिसकी मादकता हर समय उसकी आँखों में छलकती रहती। जब उसके माँ-बाप के कान में यह भनक पड़ी तो उन्होंने अपनी पसन्द का वर उसके लिए ढूँढ़ा और उसकी मंगनी कर दी। उसने अपने माँ-बाप को लाख समझाया, रोई—रूठी, किन्तु किसी ने एक न सुनी। आखिर जब विवाह की धमकियाँ दी जाने लगीं तो कंदलाँ घर से निकल खड़ी हुई।

और फिर कंदलाँ ने बताया कि नव्वाब उसे उस समय मिल गया।

नव्वाब नशे में इतना चूर था कि उसने इतना भी न सोचा कि उससे पूछे कि उसके मित्र का क्या हुआ।

“किन्तु तू रो क्यों उठी?” नव्वाब को अभी तक शांति न हुई थी।

कंदलाँ ने उसे बताया कि वह स्वयं तो यहाँ भरपूर सुख का जीवन व्यतीत कर रही थी, किन्तु उसे भय था कि उसके माँ-बाप की उसके पीछे क्या दशा होगी।

नव्वाब उठा और उसने सामने की आल्मारियों में से चाबियों का एक गुच्छा निकाल कर उसके हवाले कर दिया कि वह जितना चाहे अनाज अपने सम्बन्धियों को भेज दे। फिर उसने एक थैली में से नोटों की गट्ठी निकालकर उसके हाथ में दे दी। जिस हथेली पर कंदलाँ ने गट्ठी रखी थी उस पर पसीना आ गया।

और कंदलाँ प्रसन्न हो गई।

और इस प्रकार अकेले एकांत में बैठे पति-पत्नी छोटी-छोटी बातों में उलझ गए—बाढ़ के सताए लोग किस प्रकार उजड़ चुके थे और भागभरी का लड़का फर्मान लोगों को किस प्रकार पुनर्जीवित कर रहा था। नव्वाब हैरान था—सारे-का-सारा पोथोहार जैसे पीर के समान उसका सम्मान कर रहा था, कोई उसकी सौगंद नहीं उठाता था। यह बात भी उसकी समझ में नहीं आती थी कि इतना साहस उसमें कहाँ से आ गया था, दिन-रात वह अपने काम में संलग्न रहता। न जाने इतन पैसे कहाँ से आए थे, आटा बाँटता, दालें बाँटता, लोग कहते थे—बाढ़

के दिनों में बच्चों के लिए दूध भी वह कहीं से मँगवाता रहा ।

सब लोग फर्मान को राजकुमार-राजकुमार कहकर पुकारते थे, शायद इसलिए कि वह तनिक गोरा अधिक था, किन्तु नव्वाब कहता कि वह इस काँटे को बहुत शीघ्र अपने मार्ग से हटा देगा ।

यह सुनते-सुनते कंदलाँ जैसे सिकुड़ती जाती, चौंक-चौंक पड़ती । बार-बार उसे पसीना आ जाता ।

“मार्ग से काँटा हटा देने से आपका क्या मतलब है ?” रुकते-रुकते, भिभकते-भिभकते आखिर उसने पूछ ही लिया ।

नव्वाब ने अपनी पत्नी को बताया कि जब से जमींदार चारपाई पर पड़ा था, उसके चारों-के-चारों पिट्टू अब नव्वाब के पीछे फिरते रहते, और यदि उनमें से किसी एक को भी संकेत कर दिया जाय तो राज-कुमार का ढूँढ़ने से भी निशान न मिले ।

कितनी देर तक कंदलाँ मौन रही, फिर विषय बदलने के लिए उसने नव्वाब को याद कराया कि जमींदार को चारपाई पर पड़े एक महीना हो चला था और नव्वाब अभी तक उसकी दशा पूछने के लिए नहीं गया था । नव्वाब को कुछ अपनी ही शिकायतें थीं; जब भी कोई उसे जमींदार के सम्बन्ध में कुछ कहता तो उसे क्रोध आ जाता ।

कभी-कभी कंदलाँ नव्वाब को समझाने का प्रयत्न करती, नव्वाब आगे से हँस छोड़ता । उसे यूँ अनुभव होता जैसे सारे-का-सारा पोठोहार उसकी मुठ्ठी में हो और उसकी भुजाओं में इतनी शक्ति हो कि जब भी वह चाहे उसे मरोड़ कर रख दे ।

खेतों में हल चलाते, हवेलियों को गिराते-बनाते, यहाँ तक कि प्रतिदिन के मेल-मिलाप में लोग एक-दूसरे को साथी कह कर पुकारते, और नव्वाब कहता कि यदि उसका बस चले तो एक-एक की जिह्वा काट डाले ।

किन्तु कंदलाँ भी तो कई बार उसे ‘साथी’ कहकर बुलाती थी, वे तो पति-पत्नी हुए । नव्वाब सोचता कि वह कंदलाँ का साथी था,

कंदलाँ—जो पुस्तकें पढ़ती थी, कंदलाँ—जा सारा-सारा दिन बैठी न जाने क्या-कुछ लिखती रहती, मेमों की भाषा में, कंदलाँ, जो आकाश से उतरी हुई अप्सराओं के समान नाचती रहती थी, कंदलाँ, जो गाती थी जैसे बूलबूल बोल रही हो ।

उस दिन फिर रात गए तक पति-पत्नी बैठे बातें करते रहे । अगले दिन देर तक सोते रहे—दोनों । नव्वाब अभी सोया पड़ा था कि कंदलाँ को दूर हवेली में कोलाहल सुनाई दिया—अपने कमरे की सब से ऊपर की खिड़की खोलकर कंदलाँ ने देखा कि कंधों पर बेलचे और फावड़े रखे असंख्य मजदूर जा रहे थे, तीर की भांति सीधी पंक्तियों में । उन सबके आगे राजकुमार था, और सब-के-सब यह बार-बार कहते कि हम भूखे हैं, बार-बार-आवाज आती “राजकुमार जिंदाबाद” बार-बार यह नारा उठता “जनता जिंदाबाद !” पुरुषों के पीछे स्त्रियाँ थीं, स्त्रियों के पीछे बालक थे—, कंदलाँ देखती रही, देखती रही, जैसे सारे-का-सारा प्रदेश टूट पड़ा हो ।

और कंदलाँ को ऐसे अनुभव हुआ जैसे नया रक्त उसकी धमनियों में दौड़ रहा हो, जैसे सामने पूरब में एक नया सूर्य उदय हो गया हो, जैसे सूखे हुए बागों में बहार आ गई हो, फूल खिल उठे हों, कलियाँ भूम रही हों । पंक्तियों की पंक्तियाँ, लोग अर्धनग्न, अधडँके, दीर्घकाय पोठो-हारी—इस्पात के समान कठोर-सुदृढ़, गंदुमी रंग की पोठोहारनें, बालक, जिन्होंने कठिनता से अभी होश सँभाला था, तीर की भांति सीधे जा रहे थे, आकाश की ओर देख रहे थे, निर्भीकता से चरण उठा रहे थे, जोर-जोर से पाँव धरती पर पटक रहे थे ।

कदम मिलाकर पोठोहारी जा रहे थे, शान्तिपूर्वक निर्भीक होकर, जैसे मृतकों को जीवित कर दिया गया हो, जैसे प्रत्येक नयन में स्वप्न साकार हो उठे हों, जैसे प्रत्येक मानस में उमँगें उछल रही हों, जैसे प्रत्येक गति में स्फूर्ति भर गई हो ।

कदम मिलाकर पोठोहारी जा रहे थे, प्रत्येक कदम उन्हें आगे-ही-आगे लिये जा रहा था, प्रत्येक चरण उन्हें उन्नति की ओर लिये जा

रहा था, उनका मार्ग कठिन था, उनकी मजिल दूर थी, कदम-कदम पर कांटे बिखरे हुए थे, कदम-कदम पर खाइयां खुदी हुई थीं, पोठोहारी फिर भी जा रहे थे, पुरुष, स्त्रियाँ, बालक, राजकुमार के नेतृत्व में !

‘राजकुमार’—प्रत्येक पोठोहारी के हृदय पर राज्य कर रहा था, राजकुमार, जो उनमें से एक था, राजकुमार—जो रूखी-सूखी खाता । यदि उसके साथी नंगे पाँव चलते तो वह नंगे पाँव चलता, यदि उसके साथियों के पास वस्त्र पूरे न होते तो वह भी उनकी निर्धनता में सम्मिलित होता ।

कंदलाँ खिड़की में खड़ी होकर देखती रही, देखती रही । पोठोहारी दूर निकल गए, बहुत दूर जैसे मुर्गाबियों की डारें आकाश पर फड़-फड़ाती हुई निकल जाँय !

“वर्षा अब होकर रहेगी ” कंदलाँ सोचती—मुर्गाबियाँ जब आकाश पर उड़ा करती हैं तो वर्षा अवश्य हुआ करती है ।

भोर !
~~~~~

२८

ठल्लियाँ से लगभग डढ़ कोस की दूरी पर एक अत्यन्त घना वन है, इस वन के किनारे पर दो प्राचीन चट्टानें हैं, जैसे एक-दूसरी के साथ सटकर खड़ी हों ।

इन चट्टानों के बीच में एक सुरंग है जिसके बारे में जन-साधारण का अनुमान है कि उसमें भूत रहते हैं, इसीलिए शायद प्रत्येक पोठोहारी इनसे बचकर गुजर जाता है । इस ओर कभी किसी ने चरण नहीं रखा था ।

फर्मान की पार्टी का यहाँ प्रधान-कार्यालय था, यहाँ लोग छिपते-छिपाते आ जाते, यहीं सब परामर्श किये जाते, यहीं सब कार्यक्रम बनाए जाते, यहीं प्रतिज्ञाएँ की जातीं, यहीं उकसाया-पढ़ाया और उभारा जाता ।

सबरे से सुरंग के मुँह पर बैठा हुआ फर्मान बार-बार मुस्करा पड़ता, अनाज से खदी हुई खच्चरों को देख-देखकर ! इन खच्चरों की पंक्तियाँ समाप्त होने में न आतीं और सुरंग अनाज की बोखियों से भरपूर हुए जा रही थी—और फिर एक साथी हँसता हुआ फर्मान के समीप आया तथा उसने नोटों से भरा हुआ लिफाफा उसे पकड़ा दिया । जब खच्चर आने बन्द हो गए तो सारे साथी इकट्ठा हो गए और बैठ गए । उनका ऐनक वाला शहरी मेहमान भी पहुँच चुका था ।

फर्मान को ऐसे ज्ञात होता जैसे सब काम इच्छानुसार होते जा रहे थे, जैसे वर्षों का संघर्ष रंग ला रहा था, जैसे मंजिल अधिक दूर न हो, जैसे उसके साथियों की आकृतियों से मुर्दनी उड़ी जा रही हो, स्वयं अपने गौरव तथा सम्मान के लिए फर्मान को यूँ अनुभव होता कि लोग अब प्राण तक त्याग सकते थे। अपने पड़ोसी को बेइज्जत होता देखकर अब कोई भी अपनी दृष्टि नहीं झुका सकता था, एक बिरादरी-सी, एक भाई-चारा-सा सबमें उत्पन्न हो चुका था।

कई लोग राजकुमार की रग-रग को पहचानते थे कि वह क्या किया करता था, कैसे करता था, और वे सब उसके प्रत्येक काम में शामिल होते थे, उसकी प्रत्येक कठिनाई पर जान लड़ा देते, और ये सब लोग राजकुमार के नजदीकी साथी थे। कुछ लोग ऐसे थे जिन्हें पता था कि वह उनका हमदर्द था, जिस ओर वह उन्हें ले जा रहा था, वे उस दिशा को पहचानते थे, और सारे-का-सारा पोठोहार उसके लिए अपना बलिदान कर सकता था। उसके मुँह से निकली हुई हर बात के लिए प्रत्येक पोठोहारी अपने प्राण न्यौछावर कर सकता था।

एनक वाले शहरी ने बताया कि जिला बोर्ड के चुनाव सिर पर आ रहे थे, और पोठोहार-प्रदेश से दो सदस्य चुने जाने थे।

आज से पहले तो चुनाव के समय जमींदार अपना और नव्वाब का नाम भेज दिया करता था और चुनावों का किसी को पता लगे बिना वे सदस्य चुन लिये जाते थे। जब नव्वाब छोट-सा था, तो जमींदार अपने किसी कर्मचारी को अपना साथी बना लिखा करता था।

किन्तु अब तो समय कुछ और ही रंग बदल चुका था।

आखिर यह निर्णय हुआ कि एक फर्मान का और दूसरा फर्मान जिसे चाहे, दो नाम चुनावों के लिए भेज दिए जाँय, और यदि जमींदार के प्रतिनिधियों के साथ टक्कर लेनी पड़े तो डटकर मुकाबिला किया जाय। पहले तो राजकुमार का यह निर्णय सुनकर लोग मौन हो गए, घबरा-से गए, किन्तु जब उसने प्रदेश का भ्रमण करके एक-एक गांव में

जाकर लोगों को समझाया तो सब-के-सब पोठोहारी जैसे उसके पीछे हो लिये ।

नव्वाब यह समाचार सुनकर अत्यन्त भन्नाया । जमींदार के कानों में जब यह बात पड़ी तो उसने साहस छोड़ दिया और दिन-प्रतिदिन उसकी दशा और अधिक बिगड़ने लगी । नव्वाब के घर शराब अधिक उँडेली जाने लगी और नित्य नये कार्यक्रम बनाये जाने लगे कि किस प्रकार फर्मान को बश में किया जा सके ।

और उधर सारे-का-सारा प्रदेश 'राजकुमार जिंदाबाद' के नारे लगाता, जमींदार के पिट्ठुओं की पीठ पीछे लोग हँसते और आवाजे कसते ।

नियमानुसार नव्वाब ने एक अगना नाम और दूसरा जमींदार का नाम चुनावों के लिए भिजवा दिया । उसने अपने कर्मचारियों को शराब की बोतलें दे दीं, उनके गले में रिवाँल्वर पहना दिये, उनकी पेटियाँ गोलियों से भर दीं, और जहाँ भी वे जाते लोग 'जी सरकार' 'जी सरकार' कहते हुए न थकते । और हर शाम को जब नव्वाब के पास ये समाचार पहुँचते, तो वह हैरान होता कि जमींदार को किसका भय था, किसको साहस था कि नव्वाब के विरुद्ध कोई बात भी कर जाय ।

जहाँ-जहाँ जमींदार के कर्मचारी पहुँचे, लोग हार लेकर उनका स्वागत करते, प्रत्येक उन्हें अपनी सेवाएँ समर्पित करता । वोटों का वचन लेकर कहीं लोगों के घर बनाए जाते, कहीं जमींदार की ओर से आटा बाँटा जाता, बीज दिये जाते, कहीं हल और खुरपे मुफ्त बाँटे जाते ।

दौरे के बाद जो रिपोर्ट पेश की गई वह यह थी कि सारे-का-सारा पोठोहार एक-स्वर होकर जमींदार के संकेत पर चलने को तैयार था, नव्वाब का पूर्णरूप से भ्रम-निवारण कर दिया गया और उसे विश्वास दिलाया गया कि फर्मान की गुटबन्दी में फूट डाल दी गई है और लोग उसके काफी विरोधी बन चुके हैं ।

‘राजकुमार’ आज फिर गायब था, किन्तु इस बार वह भागभरी को बताकर गया था ।

बाढ़ के सताए लोगो को चुनावों के कारण काफी सहायता मिल गई । नव्वाब ने कई कुएँ खुदवा दिये, कई मन्दिर बनवा दिये, कई नालियाँ, कई नहरें और कई पुल बनवा दिए । कई मस्जिदों की मरम्मत करवा दी गई, कई गुरुद्वारे निर्मित करा दिये गए, बहुत-सों को खेती-बाड़ी के लिए बैल मिल गए, बहुत-सों को चढ़ने के लिए घोड़ियाँ मिल गई ।

पोठोहार में फिर कुछ गूँज होने लगी, विशेष रूप से चुनावों से पूर्व कुछ दिशाओं में सूब चपल-पहल आरम्भ हो गई । जलसों का जोर बढ़ गया, जलूस निकाले जाते, मुर्गे हलाल किये जाते और भोज उड़ाए जाते ।

चुनावों में गिनती के कुछ दिन रह गए थे । फर्मान के साथी गाँवों में बड़ी तत्परता से घूम आते और फिर लौटकर फर्मान को अपनी रिपोर्ट पहुँचा देते ।

कोई चार दिन अभी शेष थे कि नव्वाब को किसी ने बताया कि प्रत्येक पोठोहारी अपना वोट फर्मान को देना चाहता था । और उसके कर्मचारी उसे उल्लू बना रहे थे और स्वयं भी मूर्ख बन रहे थे । नव्वाब ने पानी की भाँति पूंजी बहाबी आरम्भ कर दी, उसने निर्णय किया कि एक हजार रुपए पर भी यदि उसे एक वोट खरीदना पड़ा, तो वह खरीद लेगा, किन्तु एक जाट से हार नहीं खाएगा । और हुआ भी यही, अगले चार दिनों में लोगों ने रुपयों की थैलियाँ भर-भरकर भीतर डाल लीं ।

चुनावों के दिन चारों ओर स्तब्धता छाई हुई थी । पोठोहारी डेढ़-डेढ़ गज लम्बी लोहे से मढ़ी हुई लाठियाँ उठाए आते और नव्वाब के लंगर में पूरी-हलवा खाते तथा लकीर खींचकर पर्दे के पीछे लगी हुई संदूकची में पचियाँ डालते जाते ।

सारा दिन ‘नव्वाब ज़िन्दाबाद’ और ‘जमींदार ज़िन्दाबाद’ के नारे लगते रहे, ढोलकियाँ बजती रहीं, शहनाइयाँ चिल्लाती रहीं ।

अगले दिन सुबह-सबेरे ही परिणाम सुनाया जाने वाला था। नव्वाब के कर्मचारियों ने साठ घोड़ियों पर सोने के तार वाली चादरें डालकर उन्हें जुलूस के लिए सजाया, प्रदेश के सभी मीरासी ढोलक और बाजे लिये हुए आ चुके थे। जिस-जिस गली में से नव्वाब ने गुजरना था, वहाँ-वहाँ झंडियाँ लगाई गईं, जगह-जगह फूलों के हार बनाए गए, प्रत्येक बड़े चौक को कालीन बिछाकर सजाया गया, आतिशबाजी का प्रबन्ध किया गया, प्रत्येक मोड़ पर जमींदार और नव्वाब के चित्र लटकाए गए।

सायंकाल के पूरे पाँच बजे परिणाम सुनाया जाने वाला था : शहर से आए हुए अधिकारी वोटों को बन्द कमरे में गिन रहे थे और लोगों की भीड़ बाहर चुप साधे खड़ी थी। लोग कोठों पर भी बैठे हुए थे, हर चौक में खड़े थे, हर गली-गली के मोड़ पर भी डटे हुए थे।

पूरे पाँच बजे शहर से आए हुए मैजिस्ट्रेट ने भीतर से निकलकर बताया कि फर्मान और उसके साथी को केवल दस वोट नहीं मिले थे, शेष सम्पूर्ण-प्रदेश ने उन्हें ही वोट दिये थे।

क्षणभर में 'राजकुमार जिन्दाबाद' के गगनभेदी नारे लगने आरम्भ हुए, नव्वाब और उसके कर्मचारी ढूँढ़ने पर भी कहीं दिखाई न दिये, लोग हँसने-गाने और नाचने लगे। पलक-भ्रुकते गलियों के मोड़ों से जमींदार और नव्वाब के चित्र उतर गए और उनके स्थान पर फर्मान और उसके साथी के चित्र लटका दिए गए। जैसे हर्ष का सागर उमड़ पड़ा हो, सारे-का-सारा प्रदेश उत्साह में उछल रहा था।

आखिर जुलूस उन्हीं बाजारों में से, उन्हीं गलियों में से, उन्हीं मोहल्लों में से गजरने लगा, जहाँ तैयारियाँ की गई थीं, जहाँ मुँडेरों पर लोग बैठे हुए थे, अपने प्रिय नेता के स्वागत का उत्साह अपने दिलों में छिपाए हुए। अपने हाथों से चुनी हुई कलियाँ, अपने कोमल करों से पिरोए हुए हार लिये गोठोहारने अपने सर्वप्रिय नेता पर न्यूँछावर करने के लिए तैयार थीं। नोटों के हार राजकुमार के गले में डाले जा रहे थे

जो बहुत दिनों से संभाल-सँभालकर धरोहररूप में उन्होंने उसके लिए रखे हुए थे। कौड़ी-कौड़ी जो नव्वाब ने लोगों को बाँटी थी, फर्मान की भोली में डाली गई, नाच-नाचकर, गा-गाकर, लोग जैसे पागल हो गए थे।

घोड़ों वाले फर्मान के लिए घोड़े लिये उपस्थित थे। आतिशबाजी वालों को पता था कि किसके लिए उन्हें अनार छोड़ने हैं और पटाखे चलाने हैं, इसलिए रातभर तख्तपड़ी जगमग-जगमग करती रही।

फर्मान को फूलों के हार पहनाए जाते, नोटों के हार पहनाए जाते, मिसरी के कूजों के हार पहनाए जाते। उसका कंठ द्वारों से भर जाता, तो पहले द्वारों की लड़ियाँ उतारकर रख दी जातीं, फिर देखते-देखते वह द्वारों के बोझ से गर्दन झुका रहा होता, लोग राजकुमार से आकर गले मिलते, उनमें से कई तो उसे कंधों पर उठा लेते, लड़कियाँ उसके सिर पर से पानी वारतीं, उसके घोड़े को बार-बार जौ खिलाये जाते—और इस प्रकार चाँदनी रात बीत गई।

## नया दौर !



२६

कंदलाँ ने उसे लाख समझाने का प्रयत्न किया, किन्तु नव्वाब अपने-आप में नहीं था। जब से चुनाव का परिणाम निकला था, हर समय शराब के नशे में गुट्टू आँधे-मुँह पड़ा रहता। आज सोलह दिन हो गए थे, पिये जाता, पिये जाता, और फर्मान को हजार-हजार गालियाँ देता तथा उसके मुँह से भाग निकलते रहते थे, उसकी आँखों से जैसे दानवता बरस रही होती, कंदलाँ सोचती कि कहीं वह इसी प्रकार न चल बसे।

कोई बीसवें दिन जमींदार ने नव्वाब को बुलवा भेजा। सबेरे से उसके संदेश आ रहे थे, दिनभर कंदलाँ नव्वाब को तैयार करती रही और कहीं शाम को जाकर वह इस योग्य हुआ कि अपने पिता के सामने के कमरे में चलकर जा सके।

जमींदार बहुत बीमार रहा था, कितने दिन तक हवेली में हर आदमाँ घबराया-घबराया रहा, रेशमाँ ने कितने दिन न कुछ खाया न कुछ पिया, और वह सो भी न सकी, किन्तु नव्वाब जमींदार को देखने के लिए कभी न आया।

जब से जमींदार चारपाई पर पड़ा था उसने उसी प्रकार सिर डाल दिया था, जैसे उसकी कमर सदा के लिए टूट चुकी हो। उसके अँग

काँपने लगे थे। जुम्मा, जहाना, शेरा, रावेल और उसके दूसरे गुंडे भी उसकी कम ही परवाह किया करते थे। आजकल उनकी नव्वाब से गहरी छनती थी, उसके आगे-पीछे फिरते, उसके साथ ही शिकार के लिए निकलते, उसके साथ बैठते-उठते, उसी के साथ शराब के दौर चलते।

जुम्मा तो उस दिन से जमींदार की सीढ़ियाँ भी नहीं चढ़ा था, जिस दिन एक दोपहर को उसने जमींदार के कमरे में दाखिल होते हुए देखा था कि नूरी तेलिन दूसरे द्वार में से निकलकर जा रही थी। जुम्मे को बार-बार वह दिन याद आता, जब नूरी रेशम का सूट पहनकर उसके घर में आई थी और उसे कंधों से भिभोड़कर डाँट-डपट पिलाकर, उल्टे पाँव चली गई थी। नूरी तेलिन, जिसकी सभी भावनाएँ जैसे मसल दी गई थीं, किन्तु फिर भी जिसने पराजय नहीं मानी थी। नूरी तेलिन, जिसकी विवशता देखकर जुम्मे-ऐसा युवक गली-मोहल्ला छोड़कर भाग खड़ा हुआ था।

सारी शाम उस दिन जुम्मा हक्का-बक्का रहा, बार-बार अपनी बूढ़ी हो चुकी पत्नी की आँखों-में-आँखें डाल देता, जैसे उनमें लिखा हो कि उन्होंने कितनी बार परपुरुषों को देखा था, ऐसे जैसे किसी स्त्री को दूसरे की ओर नहीं देखना चाहिए। आधी रात को जुम्मे से जैसे किसी ने भिभोड़कर कहा—“तू इतना नेक कब से हो गया?” और उसने सारी बात मुला दी।

फिर भी जमींदार की सीढ़ियों पर उससे चरण न रखा जाता और वह बार-बार विस्मित होता कि इतना आत्म-गौरव उसके हृदय की कौन-सी गहराई में छिपा हुआ था।

आज इतने दिनों के बाद नव्वाब ने जब पहली बार दालान से बाहर चरण रखा, तो कंदलाँ द्वार तक उसे छोड़ने के लिए गई। घास के खुले मैदान को उल्लाँघता हुआ रेशमाँ के कमरे के पिछवाड़े से पानी की नाली फलाँगकर वह सामने जमींदार के कमरे की सीढ़ियों तक पहुँच गया, अगली सीढ़ी चढ़कर बेटा अपने पिता के सामने था। जमींदार ने

संकेत से नव्वाब को अपने पलंग पर बिठा लिया ।

जमींदार के चेहरे की गोरी खाल भुर्रियों से अटी पड़ो था, उसके सिर का गंजापन माथे तक आ पहुँचा था । यह पता नहीं चलता था कि उसका माथा कहाँ समाप्त होता है और उसका सिर कहाँ से आरम्भ होता है । जमींदार के हाथ काँप रहे थे, उसकी टाँगें काँप रही थीं, बात करते हुए उसके होंठ काँपने लगते, और वह एक-एक शब्द पाँच-पाँच बार दुहराता । जहाँ रुक जाता, वहीं रुका रहता ।

जमींदार ने नव्वाब को समझाया कि वह एक और ही संसार और एक और ही युग का आदमी था । आज से अस्सी वर्ष पूर्व का युग कुछ और था, और इसी प्रकार वह अनुभव करता कि उसने कितनी ज्यादातियाँ की थीं । ऐसी ज्यादातियाँ, जिन्हें करते उसके पूर्वज गौरव अनुभव किया करते थे; न जाने क्यों, उससे आप-ही-आप कुछ बातें हो जाया करती थीं । शायद जिस वातावरण में उसने आँखें खोली थीं, उसकी यही विशेषता थी । उसे अपनी बर्बरता और अत्याचार न तो स्वयं बुरा लगा था, न कभी उसके अमल न उसे कभी कुछ कहा था । उसका पालन ही कुछ इस प्रकार से किया गया था कि भलाई और बुराई के अन्तर को उसने कभी अनुभव ही नहीं किया था । और-तो-और, जिन बातों को आजकल लोग बहुत बुरा कहते हैं, उन्हीं बातों को उस युग में करते हुए वह प्रसन्न हुआ करता था । और उसका पिता, उसके पिता-का-पिता यह देख-देखकर हँसा करते थे ।

नव्वाब का संसार कुछ और ही था, अब लोगों की आँखें खुल गई थीं । चलती हुई रोशनी शहरों में से होती हुई अब गाँव-गाँव फैल चुकी थी, लोग अब और ही बातें किया करते थे । अब लूट-खसूट को कोई सहन नहीं करता था, शहरी लोग आजकल गाँवों में आते थे और ग्रामीण शहरों में जाते थे । लोग अखबार पढ़ने लगे थे, स्कूल आजकल लड़के और लड़कियों से भरे होते थे ।

पिछली बाढ़ ने सारे प्रदेश को बर्बाद कर दिया था, धरती की

हृदबन्धियाँ अब दिखाई नहीं देती थीं। जहाँ टीले थे, वहाँ आजकल कमर तक गहरे गड्ढे बन गए थे, जहाँ गड्ढे थे वहाँ सिर तक रेत आ गई थी, सड़कें नीचे-ऊपर हो चुकी थीं, स्थान-स्थान पर पेड़ उखड़े पड़े थे। सम्पूर्ण प्रदेश में ढोर-डंगर ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलते थे। कहीं-कहीं उनके बच्चे दिखाई देते थे, किन्तु दशा बहुत बुरी थी। फूलों से लदे हुए बाग बह गए थे, फसलों से लदे हुए खेत डूब चुके थे, तबाह हो चुके थे।

जो बात मैं सोचता हूँ कि इस प्रकार हो, वह बात उससे उलट हो जाती है। सामने खिड़कियों और रोशनदानों से आकर कबूतरों ने अपने घोंसले बना लिये हैं, मेरे दरवाजों में से काली बिलियाँ गुजरती रहती हैं, रात को भरोखों में से मैं देखता हूँ तो तारे टूट रहे होते हैं, और जैसे टूट-टूटकर पोठोहार की ओर आ रहे हैं, रात को मुझे बड़े डरावने-डरावने सपने आते हैं।”

और इसमें सन्देह भी नहीं था—पोठोहार का प्रत्येक व्यक्ति जाग चुका था। प्रत्येक मजदूर और प्रत्येक किसान विकल एवं व्यग्र था, लोगों को जैसे कोई लक्ष्य दृष्टिगोचर हो गया हो। प्रत्येक अपनी धुन में मस्त था, किसी को अब भूख का भय नहीं था। दहाड़ते हुए पोठो-हारी जाट पीतल से मढ़ी हुई सिर से ऊँची लाठियाँ उठाए गलियों और मोहल्लों में घूमते रहते।

आज जिला-बोर्ड के चुनावों ने तो सबको हैरान कर दिया था। जमींदार सोचता कि कुछ दिनों के बाद वे जो चार व्यक्ति उसके साथ हैं, वे भी खिसक जाँयगे, और उसे उन नौकरों से घृणा होने लगती। वह जानता था कि ये लोग कैसे थे, और नब्बाब का शक्ति-प्रदर्शन वह देख चुका था।

“मुझे तो यूँ मालूम होता है कि जब मेरे साँस निकलेंगे, तो मुझे कंधा देने के लिए भी कोई न आयगा। मुझे यूँ लगता है जैसे मेरा साजो-सामान कोई बाहर फेंक देगा और इस हवेली में निवास करने लगेगा। मुझे यूँ अनुभव होता है—ये नौकर-चाकर कहीं खिसक जाँयगे,

मुझे यूँ लगता है जैसे तुम भी विरोधी दलों में शामिल हो जाओगे !”—  
और जमींदार को गोता आ गया ।

नवाब—जो इतनी देर से चुप बैठा हूँस रहा था, अब उससे रहा न गया—“यह सब फर्मान की कृपा है !” उसने दाँत पीसते हुए कहा—  
“यदि मैंने अपनी माँ का दूध पिया है तो उसे घुटनों के बल न कर दिया तो नवाब नाम नहीं । चार दिनों तक और खेल ले, उसका कहीं नामोनिशाँ तक दिखाई नहीं देगा, मुझे अपनी माँ के दूध की कसम !”

और नवाब क्रोध में उबलता रहा तथा जमींदार भी कुछ सुने बिना कमरे से बाहर चला गया ।

“तू जो दूध की कसम खा रहा है, वह तूने ससुरे पिया ही नहीं !”  
जमींदार की दृष्टि नवाब का पीछा कर रही थी—“और अत्याचार न करना, उस लड़के के लिए सारा प्रदेश टूट पड़ेगा !”

नवाब आखिर आँखों से ओझल हो गया ।

जमींदार ने सहसा अनुभव किया कि सामने दीवार पर लटकी घड़ी की टिक्-टिक् और ऊँची हो चुकी थी । फिर यह टिक्-टिक् कुछ इस प्रकार की हो गई, जैसे जोर-जोर से चोटें पड़ रही हों ! कभी यह शोर जमींदार के मस्तिष्क में होने लगता, कभी यह शोर उसे ऐसे लगता, जैसे सामने की दीवार से उठ रहा हो ।

जमींदार करवटें बदलने लगा—कुछ समय के उपरान्त वह मछली की भाँति तड़पने लगा और फिर निश्चल-मूक होकर गिर पड़ा । यह सब फर्मान की शरारत थी, महीं-बहीं, फर्मान आजकल जिला-बोर्ड के अभिवेशनों में जाकर बैठता था । फर्मान सोचता होगा—पोठोहार की सेवा तन-मन और धन से किये जाय, वह धन जो समिति में संचित था ।

“फर्मान तेरा अपना बच्चा है । मुझे मेरे ईश्वर की सौगन्द, फर्मान तेरा अपना बच्चा है !”

मुँदी-मुँदी आँखों से जमींदार ने फिर देखा—जैसे फर्मान लोगों को अपने पीछे लिये हवेली की ओर चला आ रहा है । लोग कदम-कदम पर

उसकी सेना में भागकर शामिल हो रह हैं । ज्यों-ज्यों हवेली के समीप पहुँचता जाता, त्यों-त्यों उसका उत्साह बढ़ता जाता; और फिर एक हल्ला बोलकर पोठोहार के सभी निवासी जैसे हवेली पर टूट पड़ते हैं, लोग नाखूनों से, धूसों से, दाँतों से जैसे हवेली की ईंट-से-ईंट बजा रहे हों । फिर जमींदार को यों अनुभव हुआ जैसे बाढ़ आ गई हो, चारों ओर पानी-ही-पानी । जमींदार की हवेली बह चुकी है और वह एक लाश-बना हुआ पानी पर तैर रहा है । उसके सभी गाँव वैसे-के-वैसे खड़े हैं, किसान पानी में जीवित थे, काम कर रहे थे, उनसे बाढ़ जैसे कुछ न कह रही हो । जमींदार की लाश के साथ-साथ नव्वाब की लाश तैरती जा रही है । नव्वाब की बत्तीसी यूँ बाहर निकली हुई है, जैसे वह हँस पड़ा हो ! एक चील उसके माथे पर बैठी उसकी आँखें नोच रही है ।

पसीने-पसीने जमींदार हड़बड़ाकर उठ खड़ा हुआ—उसके अँग अधिक जोर से काँपने लगे ।

फिर डाक्टर आते हैं, हकीम आते हैं, वैद्य आते हैं, प्रत्येक अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार जोर लगा रहा है, किन्तु कोई अन्तर नहीं पड़ रहा, कोई सुधार नहीं हो रहा ।

## न जाने क्यों ?



३०

फर्मान ने जिलाबोर्ड में भी जाकर देख लिया । उसकी यह धारणा और भी दृढ़ हो गई कि सारा शासनक्रम ही गलसड़ चुका है, सब-का-सब ताना-बाना ही बिगड़ा हुआ था । जिलाबोर्ड में भी वही कुछ होता जो गोरे रंग वाले की इच्छा होती, जमींदार आखिर गोरे रंग वालों का ही पिटू था ।

फर्मान यह भी जानता था कि किसी समाज का उस समय तक भला नहीं हो सकता, जब तक लोग पढ़-लिख नहीं जाते । और उसका अनुभव उसे बता रहा था कि केवल साहस की आवश्यकता होती है, पढ़-लिख लेना कोई इतनी बड़ी बात नहीं थी । वे लोग जो सारी उन्नत बोलचाल कर सकते थे, चट्टानों को चीर सकते थे, उनके लिए यह कोई कठिन नहीं था कि जिस बात का निर्णय कर लें उसे पूरा न कर दिखाएँ ।

फर्मान ने घर-घर, गली-गली, गाँव-गाँव में शिक्षा-प्रचार आरम्भ किया । पहले-पहल तो उसने अपने साथियों में एक-एक को पढ़ाया-लिखाया और इस प्रकार यह काम और आगे चल पड़ा । प्रत्येक व्यक्ति क्या नवयुवक, क्या वृद्ध, छोटी-बड़ी पुस्तकें पकड़े हुए दिखाई देते ।

फिर फर्मान ने सफाई का एक आन्दोलन आरम्भ कर दिया, प्रत्येक ने अपने अड़ोस-पड़ोस की सफाई का उत्तरदायित्व ले लिया । लोग

भुँडों में, गलियों और मोहल्लों में घूमते तथा कूड़ा-कर्कट उठाते । मलबे को साफ किया गया, ढेर से पड़े हुए ढेरों को उठा दिया गया, कूड़े-कर्कट के लिए अलग स्थान बना दिया गया ।

फिर फर्मान ने लोगों को बताया कि उनके घर कैसे होने चाहिएँ, पुरानी दीवारों में रोशनदान निकालने के लिए एक हल्ला बोल दिया गया । पन्द्रह दिन में सारे प्रदेश में कोई ऐसा घर न रहा जिसमें रोशनदान न बना दिए गए हों । और तो और, लोगों ने ढोर-डंगरों की कोठरियों को भी हवादार बना दिया ।

सारे प्रदेश में बीमारी की रोक-थाम का कोई सन्तोषजनक प्रबन्ध नहीं था । फर्मान सोचता कि ऐसा वातावरण बनाया जाय कि रोग का चिह्न न मिले ।

लोगों ने सौगन्धें उठाई थीं कि वे कभी गन्दगी नहीं फैलाएँगे और प्रत्येक व्यक्ति अपने उत्तरदायित्व को अपने सामर्थ्य से बढ़कर निभाने का प्रयत्न करेगा । फिर भी कभी-कभी सब विस्मित होते कि अड़ोस-पड़ोस में वहाँ किसी ने गन्दगी फैलाई होती, जहाँ गन्दगी न फैलाने का निर्णय किया गया था, और सब एक-दूसरे से लज्जित होते । इसी प्रकार होता रहा, होता रहा ; फिर कुछ लोगों को सन्देह होने लगा कि हो-न-हो, यह किसी की शरारत है ! निरीक्षण किया गया, तो उन्होंने देखा—रावेल चौपाल पर शौच के लिए बैठा हुआ था । लोगों ने खूब धिक्कारा, किन्तु वह फुंकारता, लाल-पीला होता आँखें निकालता हुआ चला गया !

लिपे-पुते हुए गाँव के सुन्दर-सुन्दर कोठे, चमकती हुई साफ गलियाँ, नहाए-धोए हुए उजले गाँव जमींदार के पिट्ठुओं को एक आँख न भाते और वे हर समय भुँझलाए-भुँझलाए-से रहते । अपने घोड़ों का रौब जमाते रहते, अपनी बन्दूकें लटकाकर घूमते रहते, उनके कुत्ते गलियों में हफ-हफ करते रहते, फिर भी लोगों के दिलों में पुराने जमींदार और उसके पिट्ठुओं का भय कम होता जा रहा था ; और यदि उनका

राजकुमार उनके सामने होता तो वे सर्वथा निडर हो जाते, मरने-मारने के लिए कमर कस लेते ।

एक बार गाँव के एक जलसे में फर्मान व्याख्यान दे रहा था । उसके व्याख्यान का आज का विषय धरती की देख-भाल के बारे में था । फर्मान ने लोगों को बताया कि बाढ़, आँधी और वर्षा के कारण उनकी धरती बर्बाद हो रही थी ; इसलिए लोगों को चाहिए था कि वे हर खाली पड़ी जगह पर घास उगा दें और पेड़ लगा दें । इस प्रकार उनकी धरती न तो खराब होगी न बर्बाद, फर्मान ने लोगों को विशेष रूप से यह बात समझाई कि वे अपने ढोर-डंगरों को कहीं और छोड़ दिया करें, ढोर-डंगर घास को अधिक उगने से रोकते हैं, और घास न हो तो धरती फटने लगती है, इसलिए ढोर-डंगरों को घास के विशेष और सुरक्षित खेतों में ही छोड़ना चाहिए ।

फर्मान ये बातें लोगों को समझा रहा था कि बीच में से उठकर शरा बोला—“धरती की लोगों को क्या चिन्ता है, धरती तो जमींदार की है !”

अभी बाकी शब्द उसके मुँह में ही थे कि कुछ लोगों ने उठकर शेरों को गर्दन से दबोच लिया । वास्तव में जब से शरा आया था, कुछ-न-कुछ करता रहा था ; हर बात में व्यंग से काम लेता, लोग उससे दुखी हो उठे थे ।

फर्मान ने बढ़कर उसे लोगों के हाथों से मुक्त कर दिया और अधिक बिगाड़ न होने दिया ।

जलस के बाद जब लोग एक-दूसरे के आगे-पीछे होकर बिखरे तो फर्मान अपने नजदीकी साथियों के साथ गाँव से बाहर निकल आया । आज फिर चारों-के-चारों हठ पर उतारू दिखाई देते थे ।

फर्मान चिन्ता में व्यस्त था ।

कितनी देर से फर्मान उन्हें टाल रहा था, अब और अधिक टालते रहना वह असम्भव अनुभव कर रहा था । आखिर उसने सारा उत्तर-

दायित्व अपने ऊपर ले लिया। वह सोचता—यदि यह काम करना है तो उसे उसको अपने हाथों से पूर्ण करना चाहिए। रात को जब वे अलग हुए तो फर्मान ने दोबारा वचन दिया कि वह उस काम को अपने हाथों से पूरा करेगा।

और इस प्रकार बार-बार वचन देते रहने से उसने यूँ अनुभव किया कि यह भ्रंशट समाप्त ही कर दे। सभी यह बात कह रहे थे कि जब तक जमींदार की एक-एक हवेली जलाकर भस्म न कर दी जायगी, किसान-मजदूरों के मकान नन्हें-नन्हें दिखाई देते रहेंगे। और जितने उनके मकान छोटे दिखाई देंगे, उतने ही उनका साहस टूटा रहेगा। एकरूपता तो दो ही साधनों से उत्पन्न हो सकती थी, या तो प्रत्येक नागरिक के लिए जमींदार-ऐसी हवेलियाँ बनाई जाँय अथवा जमींदार की हवेली को गिराकर धरती से मिला दिया जाय, और यह दूसरी बात अधिक सुगम थी।

फिर फर्मान सोचता कि जमींदार तो यूँ ही घुलता जा रहा था, मरे हुए को मारना कौनसी वीरता है। यदि उसके साथी थोड़े समय के लिए और प्रतीक्षा करें तो यह काँटा उनके मार्ग से स्वयमेव हट जायगा, और फिर नव्वाब का ध्यान उसकी सारी आशाओं को टुकड़े-टुकड़े कर देता। नव्वाब बिलकुल वैसे-का-वैसा था, जिस प्रकार लोग उसके पिता की कहानियाँ सुनाया करते थे। नव्वाब तो अभी हट्टा-कट्टा था, नव्वाब ने अभी तीस वर्ष और लेने थे कि उसकी दशा भी उस जैसी हो जायगी और चारपाई पर जा गिरेगा।

फर्मान सोचता कि हवेली को चारों ओर से आग लगाई जाय, क्यों कि गर्मी की रत थी, इसलिए जब तक कुएँ से पानी निकाला जायगा, हवेली जलकर भस्म हो जायगी; न जाने कौन आग की लपेट में से बच निकलेगा, न जाने कौन आग की लपेट में आ जायगा ?

घोड़े जल जाँयगे, कुत्ते जल जाँयगे, डोरियों से बँधे हुए बाज जल जाँयगे, पानी कौन निकालेगा, कौन पानी डालेगा, शायद कोई भी नहीं।

जिन्हें आवाजें दी जायगी, वे लोग तो बाहर जा चुके होंगे, वे तो दिन ढलते ही हवेली में से निकल जायेंगे ।

किन्तु इतनी शीघ्रता भी क्या थी ? काश, वे थोड़ा समय और प्रतीक्षा कर सकें, जमींदार आँखें बन्द कर ले, नवाब की हवेली को भस्मसात् कर देने का कुछ और ही आनन्द था । नवाब, जिसका अभिमान अभी तक जीवित था; नवाब जिसे भागभरी सदैव 'अत्याचारी' कहकर बुलाती थी, नवाब—जिसने जिलाबोर्ड के चुनावों के बाद मूँछों पर ताव दिया था कि वह फर्मान को जिला-बोर्ड के अधिवेशन में बैठने के योग्य नहीं रहने देगा, और अभी तक जिसका कोई वश नहीं चला था, जमींदार निःशक्त हो चुका था, कितनी देर से पलँग पर पड़ा घुल रहा था, उसका अँग-प्रत्यँग काँपता था, बन्द-बन्द लरजता था, भागभरी ने जमींदार के सम्बन्ध में कभी कोई अपशब्द नहीं कहा था ।

जमींदार का दोष भी क्या था ? जिस युग में उसने आँख खोली थी और बड़ा हुआ, उस युग में हर कोई ऐसे ही करता था । फिर फर्मान सहसा जैसे काँप-सा उठता, उसे अपने-आप से भय होने लगता । अनजाने में उसने फिर सोचा कि आज वह जमींदार के पक्ष में सोच रहा था ।

बार-बार फर्मान के विचार उस दिशा में बह जाते और उसी ओर बढ़ते जाते । वह अपने दिल को लाख समझाता, सारा दिन उसके साथी जमींदार के अत्याचारों की कहानी छेड़े रहते, किन्तु फर्मान अक्सर अनुभव करता कि उसे क्रोध नहीं आता है । और ऐसे समय उसे अपने-आप से घृणा होने लगती ।

न जाने क्यों फर्मान यह सोचता कि जमींदार की हवेली को कभी आग नहीं लग सकती, अपने साथियों में एक पर भी उसे उस काम का उत्तरदायित्व देने का भरोसा नहीं था, उसे अपने-आप से और अधिक लाज आती ।

“मैं स्वयं यह काम करूँगा, मैं स्वयं यह काम करूँगा, मैं अकेला

यह काम करूँगा,” फर्मान हर साँस के साथ यह सोचने लगा, सोचते-सोचते अन्धकार हो गया। उपेक्षाभाव में चलता-चलता वह हवेली के एक कोने में जा खड़ा हुआ, अँधेरी रात थी, हाथ-को-हाथ सुभाई नहीं देता था, हवा चल रही थी, बस एक चिंगारी की आवश्यकता थी, पलक भपकते में सारी-की-सारी हवेली शोलों में लिपट जायगी।

फर्मान सोचता कि आग पहले पश्चिम की ओर से लगाई जाय; जब वहाँ पहुँचता तो सोचता—पूर्व को ओर से आग लगाना अधिक अच्छा होगा। फिर उसे विचार आता कि तनिक उत्तर-दिशा में जाकर देखे, फिर उसे ध्यान आता कि नहीं दक्षिण की ओर से जाकर देखे।

हवा और तेज हो गई।

पहले फर्मान को पेट्रोल की काली बोतल तोड़नी थी, फिर दिया-सलाई जलानी थी, शेष कार्य स्वयमेव हो जायगा। और सामने बागीचा था, जिसमें से होता हुआ वह नदी की ओर चला जायगा।

फर्मान पसीने में नहा चुका था। उसे यूँ मालूम होता जैसे उसके हाथ-पाँव सुन्न हो चुके हों, इस दुविधा में फर्मान की दशा बिगड़ रही थी कि हवेली के ऊपर कमरे की खिड़की खुली और उसमें से दूध-ऐसे वस्त्र पहने हुए एक भरपूर जवान लड़की ने बाहर भाँक कर देखा, जैसे वह आकाश से उतरी हुई कोई अप्सरा हो। अँधेरी काली रात में खड़ा फर्मान हिमवत् स्थिर हो गया, पलभर के लिए वह भूल गया कि वह कौन है, किस कार्य के लिए वह आया था, वह चौंककर पीछे हट गया और फिर भिन्नकते हुए वह घर की ओर लौट पड़ा।

## दीवार के कान !

३९

जहाना, जुम्मा, शेरा और रावेल आजकल नव्वाब के पिट्ठू बन चुके थे। ज्यों-ज्यों जमींदार की दशा बिगड़ती जाती त्यों-त्यों वे उससे दूर होते जाते। नव्वाब का जहाँ तक वश चलता, वह उस ओर चरण न रखता, और इस बात पर प्रसन्न होता कि जमींदार के पिट्ठू अब उसके पिट्ठू नहीं रहे थे।

जिला-बोर्ड के चुनावों के उपरान्त बाहर निकलने को उसका मन न मानता। सारा दिन मदिरापान करता, गुट होकर औंधे-मुँह पड़ा रहता। फर्मान तथा उसके साथियों को हानि पहुँचाने के ढँग सोचता रहता और फिर उन साधनों पर विचार करता हुआ स्वयं ही उन्हें बदल देता।

जमींदार, नव्वाब और उनके जुआरी सब-के-सब जैसे निःशक्त हो चके थे—यूँ अनुभव करते, जैसे उनका कोई हमदर्द कहीं भी नहीं रहा था। प्रत्येक व्यक्ति उनका साथ छोड़ चुका था, अभी तक वैसे एक भ्रम-सा बना हुआ था, जो किसी समय भी टूट सकता था।

शेरे की पत्नी पर, अल्हड़ जवान लड़कियाँ, गली में गुजरते हुए हँस पड़ी थीं। जब उसने आगे से बुरा-भला कहा तो उन लड़कियों ने आगे से उसे माँ-बाप की गालियाँ दीं और जहाने को ताने दिये। और जहाना कहा करता था कि लोग उसकी पत्नी को शेरे के ताने दिया करते थे, और फिर सब-के-सब हँस पड़ते।

रावेल और जुम्मे की पत्नियाँ 'धन्नी' की ओर की रहने वाली थीं। कब से मायके गई हुई थीं और आने का नाम न लेतीं। नव्वाब कहता—कंदलाँ ऐसी स्त्री संसार भर में उत्पन्न नहीं हुई थी, और खिडकी में खड़ी कंदलाँ दराड़ में से यह देख-देखकर, सुन-सुनकर जी-ही-जी में हँसती। नव्वाब सप्ताह में एक बार अवश्य रावलपिंडी शहर से गाने वाली लड़कियाँ मँगवा लेता, रात-भर महफिल गरम रहती। जो लड़की भी रावलपिंडी से आती, नव्वाब अचम्भे में आ जाता कि वह कंदलाँ की परिचित निकल पड़ती, नाचती-हँसती और खेलती रहतीं। वह सोचता—जभी तो कंदलाँ कभी उदास नहीं हुई थी, उकताई नहीं थी।

और नव्वाब विस्मित होता, जब जाते हुए नव्वाब से अधिक-से-अधिक पैसे दिलवा दिये जाते, फलों के टोकरोँ-के-टोकरे उनके साथ लदवा दिये जाते, वस्त्र दिये जाते, घर की जिन कीमती वस्तुओं पर वे हाथ रखतीं उन्हें दे दी जातीं। नव्वाब सोचता कि उसे कैसी पत्नियाँ मिलती थीं। पहली पत्नी थी, जो उसके सामने बोलती नहीं थी, और अब यह दूसरी थी जिसके विषय में लोग उसे डराते रहे थे। उसके माथे पर भी उसने कभी बल नहीं देखा था।

जब से जमींदार चारपाई पर पड़ा, तब से घर के काम में कंदलाँ अधिक दिलचस्पी लेने लगी। रसोई की ओर चक्कर काटती, अस्तबल की देखभाल करती, घोड़ों को जाकर पुचकारती, कुत्तों से चोंचले करती, और कई सायँकाल बागीचे में व्यतीत करती। कहीं से बेल-बूटे कटवाती रहती, कहीं लगवाती रहती। उसने बागीचे की कई पगडंडियाँ बनवा दीं, उसने बागीचे की चारदीवारी में कई द्वार लगवा दिये।

नौकर-चाकर चारों ओर उसका सम्मान किया करते थे। प्रत्येक के साथ हँसकर बालती, मजदूरों के बच्चों को उठा-उठाकर प्यार करती, किसी को कुछ इनाम देती, किसी को कुछ। जब भी बाहर निकलती, अत्यन्त साधारण वेश में, मजदूरों और श्रमिकों से घुल-मिल जाती, कभा

उन्हें स्वयं काम करके बताती ।

श्वेत घोड़ी कंदलाँ को अत्यन्त प्यारी लगती, घंटों उसके पास खड़ी रहती, उसे खाते हुए और विश्राम करते देखती, उसके साथ खेलती रहती, और वह घोड़ी भी प्रतिदिन समय पर मुँह उठाकर प्रतीक्षा करने लग जाती, कंदलाँ ने उसका नाम 'सुन्दरी' रखा था ।

आधी-आधी रात को कंदलाँ चुपके-से घूमकर देखती कि कौन कहाँ होता है और क्या करता है । उसने सब प्रहरी बदल दिये । उसने शहर से आदमी बुलवाकर प्रहरी रख लिये, जो बन्दूक चलाना भी जानते थे, रिवाल्वर का इस्तेमाल भी कर सकते थे, गतके के खिलाड़ी भी थे । पहले कुत्ते रात को खुले छोड़ दिये जाते थे, किन्तु अब कंदलाँ के आदेश से उन्हें रात को बाँध दिया जाता ।

रेशमाँ और कदलाँ में असीम स्नेह था । वैसे रेशमाँ कभी नीचे कंदलाँ के पास नहीं आई थी, और कंदलाँ भी यह नहीं चाहती थी कि वह नीचे आकर नव्वाब की करतूतों से परिचित हो जाय । कदलाँ वैसे उसके पास अवश्य जाती थी । आरम्भ में जमींदार को यह अच्छा नहीं लगता था, किन्तु ज्यों-ज्यों समय बीतता रहा, त्यों-त्यों कंदलाँ के सम्बन्ध में उसके विचार पलटते गए । रेशमाँ भी जब कभी कोई बात करती तो कंदलाँ की प्रशंसा करते हुए न थकती ।

कंदलाँ ने रेशमाँ को बहुत दिन से पढ़ाना आरम्भ कर रखा था । रेशमाँ दिन-रात पढ़ती रहती, और अब तो वह बड़ी-बड़ी पुस्तकें पढ़ लेती थी ।

कंदलाँ ने उसे हर प्रकार की पुस्तकें मँगवाकर दी थीं, कई पुस्तकें कंदलाँ उसे समझा-समझाकर पढ़ाया करती थी ।

चाहे जमींदार लाख कहता कि मुसलमानों को गाने-बजाने से क्या सम्बन्ध, और फिर विशेष रूप से स्त्री के लिए तो यह पाप था, और स्त्री भी वह जो जमींदार की लड़की हो, किन्तु रेशमाँ ने एक न मानी और पहले चोरी-छिपे और फिर जमींदार के जानते-बूझते कंदलाँ ने रेशमाँ

को सितार सिखाना आरम्भ कर दिया । साँझ-सबेरे रेशमाँ के कमरे में ग्रामोफोन बजता रहता और कई प्रकार के रिकार्ड बजते-बजाते रहते ।

कभी-कभी रेशमाँ कँदलाँ को अपनी जमींदारी के विषय में छोटी-छोटी बातें बताती रहती, वे बातें जो दुर्ग-ऐसी जमींदार की हवेली की ऊँची-ऊँची दीवारों से छन-छन कर भीतर पहुँच जाती, वे बातें, जिन्हें न बताने का नेकाँ लाख प्रयत्न करती, उसके भीतर की नारी से वे छिपाई न जातीं । जब उनकी मैत्री अधिक गहरी हो गई तो रेशमाँ न कँदलाँ को बताया कि कैसे वह एक रात नेकाँ के साथ रास देखने के लिए गई थी । किन्तु उस समय तो वह अभी अल्हड़ थी और अब वह लाख साहस करे तो ऐसा नहीं कर सकती थी ।

अक्सर बातों-बातों में फर्मान की चर्चा भी छिड़ जाती, और रेशमाँ उसके विषय में सुनी-सुनाई कहानियाँ यूँ कहती, जैसे वह उसका कोई समीप का साथी हो । कँदलाँ सुनती रहती, सुनती रहती, कभी-कभी रेशमाँ को यूँ अनुभव होता जैसे उसकी कहानियाँ सुन कर फर्मान कँदलाँ को भी अच्छा लगने लगा था ।

एक दिन कँदलाँ अचम्भे में आ गई, जब उसने यँ ही रेशमाँ के एक कमरे की आल्मारी खोली—तो सामने एक खाने में—फर्मान का चित्र पड़ा था; उस चित्र के चरणों में ताजा तोड़ी हुई कलियाँ पड़ी थीं । रेशमाँ बाहर गई हुई थी, इससे पूर्व कि वह फिर कमरे में लौटे, कँदलाँ ने आल्मारी के पट उसी प्रकार बन्द कर दिए । कँदलाँ ने लाख प्रयत्न किया, उसके मुँह पर एक रँग आ रहा था और एक रँग जा रहा था, आखिर तबियत बिगड़ने का बहाने करके वह नीचे उतर आई ।

अपने कमरे में आकर पहली बात जो उसने की, कि द्वार बन्द करके सन्दूक के भीतर जिस कमीज की तह में फर्मान का वैसे-का-वैसा चित्र पड़ा था, उसे जला दिया ।

जिला-बोर्ड के चुनावों के उपरान्त कँदलाँ को अवकाश न होता । दिन भर नव्वाब घर में पड़ा रहता, उसके चाटुकार भी वहीं आ जाते

और शराब के दौर सघेरे से चलने लगते तथा रात गए तक चलते रहते । शराब पीकर गुण्डे संसार भर की बकवास करते, बार-बार मन्सूबे बाँधते, और बार-बार उन्हें बदल देते, कँदलाँ छेद में से सब बातें सुनती रहती ।

एक दिन यूँ ही वे सबके-सब बेसुध पड़े थे कि शेरा काँपता हुआ आया—उसके वस्त्र मिट्टी और कीचड़ में लिथड़े हुए थे, उसके दाँतों से रक्त बह रहा था ।

शेरे ने बताया कि पहले की भाँति आज भी वह जलसे में गया था, जहाँ फर्मानि व्याख्यान दे रहा था, और अभी जलसा समाप्त नहीं हुआ था, कि उसके साथी उस पर टूट पड़े, मार-मारकर उन्होंने उसे अध-मरा कर दिया, उसके दाँत तोड़ दिये ।

ज्यों-ज्यों शेरा अपनी आप-बीती बढा-चढा कर बताता, त्यों-त्यों नव्वाब को क्रोध चढ़ता, त्यों-त्यों अन्य गुण्डे लाल-पीले होते जाते । उनके हाथों से शराब के प्याले गिर पड़े और वे उसी समय तैयार हो गए । प्रत्येक गुण्डे ने अपना-अपना पिस्तौल संभाल लिया, और द्वार के पट के साथ लगकर देखती हुई कँदलाँ का हृदय तेजी से धड़कने लगा, किन्तु एक के बाद एक उसने देखा कि नव्वाब शराब के नशे में धुत्त सामने पलंग पर जा गिरा—“अबे ससुरी के, आज के रंग में क्यों भंग डाल रहा है ?”—नव्वाब ने टूटे-फूटे शब्दों में कहा और नव्वाब के अन्य गुण्डे भी हाँ-हाँ कहते हुए वैसे-के-वैसे गिर पड़े, शेरा हक्का-बक्का खड़ा रहा ।

लगभग क्षण भर बाद फिर शेरे ने अपनी कहानी छेड़ दी और सब ने मिलकर परामर्श किया कि अगले इतवार को फर्मानि की कड़ी निगरानी की जाय, रात को सोते-में उठाकर उसे कहीं आगे-पीछे कर दिया जाय !

किन्तु ऐसे निश्चय तो वे कई बार कर चुके थे । शेरा कह रहा था, जब कभी उन्होंने उसे फाँसने का निश्चय किया, फर्मानि उनके हाथ न लगा ।

“इन बातों से तो मैं स्वयं हैरान हूँ ?” शराब के नशे में चूर नब्बाब होशमंदों की भाँति बातें करने लगा ।

“उस समुरे के भाग ही अच्छे हैं ?” उनमें से एक बोला ।

“नहीं तो वह कौन था, जो चुनाव में जीत जाता ?” एक और ने बड़ी कठिनता से वाक्य पूर्ण किया ।

और फिर सब चुप हो गए, जैसे उन पर हिमपात हो गया हो !

## तू धीरे-धीरे आ !

३२

रेशमाँ आजकल फिर 'मिर्जा-साहिबाँ' की कहानी पढ़ रही थी। साहिबाँ मिर्जे के साथ चल पड़ी, शहर से निकलकर मिर्जा जंड के नीचे सो गया। दूर से अपने भाइयों के घोड़ों की उड़ाई हुई धूल देखकर साहिबाँ न बार-बार अनुनय-विनय की,—“ऐ मिर्जा, भाग चल !” किन्तु उसकी नींद बहुत गहरी थी। और अब जब घोड़े सामने आ गए, उस समय भी मिर्जा सोया पड़ा था। साहिबाँ ने उसका तूणीर जंड के ऊपर फेंक दिया। मिर्जे के अचूक निशाने ने उसके माँ-जाए भाइयों के एक-एक करके तीरों से सीने बीच देने थे, और पराए पूतों ने निहत्थे मिर्जे की बोटी-बोटी उड़ा दी.....पढ़ते-पढ़ते रेशमाँ ने गरदन मोड़कर नेकाँ से पूछा—“बहन नेकाँ, तुझे साहिबाँ कैसी लगती है ?”

और नेकाँ को आगे से मीन देखकर रेशमाँ ने उसे बताया कि उसकी सम्मति में साहिबाँ मूर्ख स्त्री थी, जिसे अपने हृदय का कुछ ज्ञान नहीं था। भाइयों को छोड़कर पहले अपने प्रेमी के साथ भाग खड़ी हुई और फिर भाइयों के प्यार में अपने प्रेमी को मरवा डाला।

“किन्तु वह बहन के रूप में कितनी महान् थी ?” रेशमाँ ने एक ऐसी भावुकता से कहा, जो किसी के हृदय की गंभीरताओं में छिपी होती है। और नेकाँ ने रेशमाँ की आँखों में आये आँसू देखकर अनदेखे कर दिए।

जब पढ़ने से उसका मन ऊब जाता, तो रेशमाँ क्रोशिया लेकर बैठ जाती। एक-एक घर, एक-एक ग्रन्थि, एक-एक कली बड़े चाव से बनाती, जमींदार की लड़की को क्रोशिये का क्या आकर्षण ? इनने बारीक काम से क्या लगाव ? नेकाँ बार-बार पूछती कि वह किसके लिए इतना परिश्रम करती थी, किन्तु रेशमाँ हर बार टाल जाती।

कभी-कभी नेकाँ विस्मित होती। अपना कमरा बन्द करके जैसे रेशमाँ भीतर किसी के साथ बातें कर रही हो। कई बार उसकी सिस-कियों के स्वर मुनाई देते, कभी उसकी आँखें लाल-लाल दीखतीं।

दोनों समय वह अत्यन्त श्रद्धा के साथ कलियाँ तोड़ती और उन्हें आल्मारी के एक खाने में रख देती। नेकाँ को इस बात का तनिक भी दुःख नहीं था, वह जानती थी कि वहाँ किस प्रतिमा की पूजा की जा रही थी।

किन्तु आजकल रेशमाँ की नीरवता, आजकल रेशमाँ का मानसिक-खिचाव, रेशमाँ का खोया-खोया-सा रहना नेकाँ को काफी परेशान कर रहा था। नेकाँ उसकी रग-रग को पहचानती थी। कुछ दिनों तक मौन रहने के पश्चात् उसने धीरे-धीरे रेशमाँ का दिल कुरेदना आरम्भ कर दिया। किन्तु जहाँ भी वह हाथ रखती, उसे पीड़ा, चीत्कार और आँसू ही मिलते और इन सब का कारण कहीं छिपा हुआ, खोया हुआ दृष्टिगोचर होता।

एक रात हवेली में कुहराम मच गया। रेशमाँ सायंकाल ही से विकल थी, उसके हृदय में खलबली-सी मची हुई थी। पता करने पर मालूम हुआ कि कोई व्यक्ति हवेली को आग लगाता हुआ पकड़ा गया था; अधिक जाँच-पड़ताल पर ज्ञात हुआ कि फर्मान को अस्तबल के रक्षक बाँध लाए थे। कहते थे कि उसके पास पेट्रोल की एक बोतल थी और दियासलाई की डिबिया। और वह हवेली के इर्द-गिर्द सन्देहपूर्ण-भाव से चक्कर लगाता रहा था।

नवाब पिछले दो दिनों से अपने गुंडों के साथ रावलपिंडी गया हुआ

था । पलक झपकते ही यह समाचार हवेली में चारों ओर फैल गया और फैलता-फैलता जमींदार के कानों तक पहुँच गया ।

जमींदार ने तत्काल फर्मान को अपने कमरे में बुला भेजा । अश्व-पालकों ने बयान दिया—अभी कठिनता से अँधेरा हुआ था कि फर्मान हवेली की ओर आया और इधर-उधर टहलने लगा, फिर प्रत्येक द्वार और प्रत्येक खिड़की के पास खड़े होकर देखता रहा और घूमता रहा, जैसे निर्णय कर रहा हो कि उसने अपना काम कहाँ से प्रारम्भ करना था और जब उनका सन्देह निश्चय में बदल गया तो प्रहरियों ने मिल कर उसे जा पकड़ा । फर्मान जमींदार के कमरे में अकेला खड़ा था, शेष सब कर्मचारियों को जमींदार ने बाहर भेज दिया । फर्श पर पड़े हुए कोमल कालीन में फर्मान के पाँव घँसते जा रहे थे । छतों से लटकते हुए झाड़ू-फानूसों में से निकलता हुआ मन्द-मन्द प्रकाश छन-छनकर सारे कमरे को सुन्दर रूप से आलोकित कर रहा था । दाएँ-बाएँ खिड़कियों में से धीमी-धीमी पवन ठुमक-ठुमककर आ रही थी । जमींदार के पलंग के समीप गुलाब की निरीह-कलियाँ सिर झुकाए श्रद्धाभाव में खड़ी थीं । जमींदार मौन था । फर्मान ने अभी उसके कमरे में चरण ही रखा था कि उसके सारे रोग जैसे कट गए हों, उसके अंगों का कम्पन रुक गया । दोनों नीरवता में जैसे एक-दूसरे से बातें कर रहे थे, लड़-झगड़ रहे थे । अभी तक उन दोनों की दृष्टि मिली नहीं थी और इस प्रकार कितनी ही देर खड़े-खड़े आखिर जब फर्मान ने जमींदार की ओर आँख उठाकर देखा तो वह बेसुध पड़ा था । क्षण-भर तक फर्मान की समझ में न आया कि वह क्या करे ।

सामने द्वार पर पर्दे फड़फड़ा रहे थे, जैसे उनके पीछे कोई और भी हो, जैसे भीतर से कोई मार्ग सुझा रहा हो । फर्मान ने पर्दे को हटाकर देखा । वहाँ कोई भी नहीं था । दाईं ओर की सीढ़ियों से निकलकर वह नीचे आ गया । आगे एक दालान था जिसके सामने एक और द्वार था और यह द्वार एकदम खुला था और फर्मान अत्यन्त विकलता से उसमें

से निकला, बाईं ओर बागीचा था। पलक-भपकते वह उसमें गायब हो गया। हवेली से दूर जाकर फर्मान ने झुड़कर देखा—केवल ऊपर के कमरे के अतिरिक्त सारी हवेली सूनी थी।

और ऊपर के कमरे में रेशमाँ घुटनों के बल रो-रोकर विनय कर रही थी, और नकाँ बाहर बैठी प्रतीक्षा कर रही थी, प्रतीक्षा किये जा रही थी। और यूँ प्रतीक्षा करते-करते सवेरा हो गया, अभी तक रेशमाँ की आँखों के आँसू सूखे नहीं थे।

रेशमाँ अभी तक अपने कमरे में थी, तभी कंदलाँ ऊपर आई। नव्वाब जिन दिनों बाहर होता, कंदलाँ अक्सर ऊपर आया-जाया करती, किन्तु वह आज तनिक सबेरे ही आ गई थी। उसे हँसती और मुस्कराती देखकर नेकाँ हक्की-बक्की रह गई। भीतर से रेशमाँ की आवाज सुन रही थी। उसने अपने-आपको तनिक सँभाल लिया।

“कहते हैं कोई चोर आया था रात को?” कंदलाँ ने आते ही बात की।

रेशमाँ मौन थी, उसकी आँखें लाल थीं, सूजी हुई थी, जैसे अब ओर अधिक नहीं रो सकती थी।

“कहते हैं”—कंदलाँ ने बात दुहरानी चाही—“कहते हैं कि चोर आया और स्वयमेव लौट गया?”

“वह कैसे?” सहसा रेशमाँ के मुँह से तीर की भाँति यह वाक्य छूट गया। उसे गहरी लज्जा आई और लाज के मारे उसका बदन तमतमा उठा, किन्तु पलभर का असंतोष उसकी सभी भावनाओं की विकलता को स्पष्ट कर गया।

और फिर कंदलाँ ने उसे सारी कहानी सुनाई कि उसने स्वयं जाकर उसके पैरों के निशान देखे थे और ये निशान जमींदार के कमरे के पिछ्छ-वाड़े से होते हुए बागीचे में से बाहर निकल गए थे, और रात भर हवेली के प्राचीर के साथ प्रहरी मोर्चे बनाकर परेशान होते रहे।

और फिर जितना समय कंदलाँ ऊपर रही, रेशमाँ और कंदलाँ हँसती

रहीं, खेलती रहीं और गाती रहीं ।

तू धीरे-धीरे आ ।

तेरे घोड़ों को मैं घास डालूंगी ।

और फिर वे बार-बार साईस की हँसी उड़ातीं । जी-ही-जी में कंदलाँ ने निर्णय कर लिया था कि घोड़े चाहे कुछ भी करें, वह साईसों के स्थान पर भी नये व्यक्ति रख लेगी । फिर वे गाने लगीं :

तू धीरे-धीरे आ ।

शीतल समीर बह रहा है !

एक स्वर और एक प्राण होकर जब रेशमाँ और कंदलाँ स्वर उठातीं, नेकाँ के हृदय में कुछ होने लगता । वह सोचती कि वह इतना कुछ कैसे पचा सकेगी, इतना वह कैसे सुरक्षित रख सकेगी—कहीं उसका अँचल न फट जाय; और भय के मारे वह काँपने लगी ।

मैंने लाहौरी शिविर लगाए हैं ।

अब मैंने पेशावरी शिविर लगाए हैं ।

इन शिविरों के ऊपर से मैं बताशो की वर्षा करूँगी ।

लड़कियाँ उन्हें छिप-छिपकर खाँयगी ।

तू धीरे-धीरे आ !

रेशमाँ और कंदलाँ अभी तक गा रही थीं ।

## पिता गर पूत

३३

जमींदार की दशा दिन-प्रति-दिन बिगड़ती जा रही थी, दो-दो दिम और कभी तीन-तीन दिन बेसुध पड़ा रहता । इतना समय निरन्तर लेटे रहने से उसकी पीठ में घाव हो गए थे । लाख इलाज किये गए, किन्तु उसकी चमड़ी गलने लगी, उससे भयानक दुर्गन्ध आने लगी ।

नव्वाब आजकल आमतौर से शहर ही में रहता, उसके साथ जमींदार के पिटू भी चिपटे हुए थे । फर्मान की उस घटना के बाद जब वह घरलौटा तो वह बात काफी ठंडी पड़ चुकी थी । फिर भी वह जमींदार के कमरे में जाकर काफी समय तक कूदता रहा, और बड़बड़ाता हुआ बाहर आ गया ।

उसके बाद नव्वाब कभी अपने पिता को देखने के लिए न गया । कई बार जमींदार ने उसे सन्देश भी भेजे, उसकी पत्नी ने भी उसे समझाया, किन्तु नव्वाब ने एक न सुनी ।

फिर जमींदार के शरीर के एक पूरे भाग पर अधरंग गिरा । सिर के दाईं ओर के बाल झड़ गए, खोपड़ी की खाल पीली पड़ गई । एक ओर की भुजा सूखने लगी, एक टांग सुन्न हो गई, दाईं ओर की पलक तक न भपकी जाती, नाक के दाहिने नथुने से साँस न लिया जाता ।

हकीम, वैद्य, डॉक्टर अपनी पूरी शक्ति दिखा चुके थे । किन्तु बुढ़ापे

के रोग का कोई इलाज नहीं था। अपने शरीर तथा अंग-अंग का जमींदार पूरा मोल ले चुका था, वह अपने प्रत्येक अंग को सामर्थ्य से अधिक प्रयोग में ला चुका था। और अब उस मशीन के पुर्जे घिस-घिसाकर, प्रयोग में आ-आकर बर्बाद हो चुके थे।

वह चाहता था कि नव्वाब को 'केवल इतना ही याद दिला दे—“तेरी भी यही दुर्दशा होगी !” किन्तु नव्वाब था कि उसने उसके कमरे में फिर चरण ही न रखा।

और प्रतिदिन जमींदार के पास ये समाचार पहुँचते कि नव्वाब ने आजकल क्या चाल पकड़ रखी थी, उसकी मित्रता किनके साथ गहरी होती जा रही थी, और सप्ताहों तक वह कहाँ गायब रहता था।

अनाज की भरी हुई कोठरियाँ खाली होती जा रही थी। घोड़े बिक रहे थे, कुत्तों की बहुत बुरी दशा होती जा रहा थी, कमरों के कालीन तक बाहर जाने लगे थे—और हवेली में कभी नई वस्तु नहीं आई थी। जमींदार को यँ ज्ञात होता कि उसका वैभव पानी की भाँति बहाया जा रहा था। इससे पहले कि वह अपनी आँखें मूँद ले, उसके हाथ में भिक्षा-पात्र होगा।

जमींदार प्रतिदिन अपने बाज मँगवाकर देखता, प्रत्येक को प्यार करता। कुत्ते बारी-बारी उसके कमरे में आते और कितनी देर उससे खेलते रहते। अपने कमरे के कालीन बदलवाता, अपने भाड़-फानूस बदलवाता, खिड़कियों और द्वारों के पर्दे बदलवाता, अपने कुल के आभूषणों तथा हीरों को तश्तरियों में रखकर देखता, सुन्दर और कीमती पात्रों में उसके लिए वस्तुएँ सजाई जातीं। सारी बन्दूकें, सारी राइफलें, सारी तलवारें जो उसने अपने जीवन में इस्तेमाल की थीं, उसके सामने लाकर रखी जातीं, एक दृष्टि में सारी वस्तुएँ देखकर जैसे उसे सन्तोष हो जाता, उसकी भूख मिट जाती। जमींदार का दिल चाहता कि वह एक-एक वस्तु अपने अंक में भर ले किन्तु उसकी एक भुजा तो हिल ही नहीं सकती थी, एक टाँग थी कि मुड़ नहीं सकती थी, एक आँख थी कि

देख नहीं सकते थे, एक भाग था कि उससे उठाया नहीं जाता था ।

जमींदार सोचता—काश, एक बार नवाब आकर उसे देख जाय, किन्तु नवाब अपने हठ पर डटा रहा ।

हठ से अधिक नवाब को आजकल दुर्बलता की अनुभूति होने लगी थी । उसे यूँ ज्ञात होता कि उसके चरण जैसे उखड़ रहे हों, जैसे प्रत्येक वस्तु पर उसकी पकड़ ढीली पड़ती जा रही हो, प्रत्येक आँख उसे निठल्ली और निर्लज्ज दिखाई देती । उसे यह अनुभव होता कि वह विवश था और किसी का कुछ नहीं बिगाड़ सकता था ; इस प्रकार की विवशता की अनुभूति उसे हर समय खाने को दौड़ती, तथा बार-बार मदिरापान में समययापन करता और नशे में सब-कुछ भुलाने की कोशिश करता ।

जमींदार सोचता कि क्या पूत इतना कपूत हो सकता था । नवाब वही कुछ था, जो कुछ जमींदार कभी हुआ करता था, बल्कि उससे भी कहीं बढ़कर ।

जमींदार सोचता कि वह क्या-क्या कुछ करता रहा, उसके समय में उसके हाथों से किस प्रकार लूट-खसूट की गई, और उसकी अपनी एक-एक करतूत आँखों में चित्रवत् घूम जाती । स्मृतियों के एक-एक चित्र पर जमींदार लाख बार मर-मर जाता । उसकी एक-ही निःशेष आँख रक्त के आँसू रोती, और यूँ विचारों में सोए हुए उसे एक आवाज सुनाई देती—“वह तेरा अपना बच्चा है, मुझे मेरे ईश्वर की सौगन्द ?” और स्मृतियों का घृणास्पद चित्रपट यहीं-का-यहीं रुक जाता—“वह तेरा अपना बच्चा है !” जैसे उसके मस्तिष्क में चोटें पड़ने लगतीं, और जमींदार अपनी आधी भुजा उठाकर अपने आधे मस्तक पर रख लेता ।

और नवाब जमींदार का लड़का सोचता कि उसका पिता इतना नम्रहृदय क्यों हो गया था । फर्मान—जिसको वह आकाश में दूँडता फिरता था, उसकी हवेली में आकर चला गया । उल्टा चोर कोतवाल

को डाँटे। उल्टा फर्मान आज जमींदार की हवेली को आग लगान की चिन्ता में है। दाँत पीस-पीसकर उसने होठ काट-काटकर सुजा लिये। उबल-उबलकर फिर उबलने लगता—किन्तु एक क्षण बाद ही नव्वाब को अपनी दुर्बलता अनुभव होने लगती, जैसे वह उस तूफान के सामने तिनका हो, जो तूफान सारे पोथोहार को अपनी लपेट में ले लेना चाहता था। जमींदार के विशेष पिट्ठुओं से गली-मोहल्ले में माथापच्ची बन्द हो गई थी। नव्वाब जब स्वयं उन गली-मोहल्लों में से निकलता, कई तो उठ खड़े होते और कई मुँह फेर लेते।

नव्वाब ने सोचा कि बाहर से सरकार की सहायता ली जाय। प्रयत्न करके उसने एक पुलिस-चौकी का प्रबन्ध कर ही लिया। सिपाहियों ने गाँव का भ्रमण आरम्भ कर दिया, किन्तु जो सिपाही भी आता वह लोगों का पक्षपाती हो जाता। फर्मान और फर्मान के साथियों में एक मोहिनी-शक्ति थी जो सब का मन मोह लेती। प्रत्येक कंकर और प्रत्येक पत्थर पर जमींदार के अत्याचारों के छिंटे पड़े थे और उससे प्रत्येक को घृणा थी।

पुलिस का जमींदार से पुराना वैर था। अपने जीवन-काल में एक बार जमींदार ने एक पुलिस वाले को एक पेड़ से लटकाकर फाँसी लगा दी थी। एक दूसरे को कत्ल करवा के उसकी लाश कहीं छिपा दी थी; और जब पुलिस वालों ने शोर मचाया तो उसने अफसरों से मिलमिलाकर चौकी ही वहाँ से उठवा दी, ताकि न रहे बाँस न बजे बाँसुरी।

रेशमाँ का जहाँ तक बस चलता, वह नव्वाब से बात न करती। वह उससे अपने जीवन में दो-चार बार मिली होगी, नव्वाब को अपना-आप मैला-मैला और बुरा-बुरा लगता, उसे बहन-ऐसे सम्बन्ध के सामने विकलता-सी अनुभव होती।

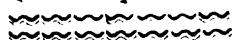
जितनी बार रेशमाँ नव्वाब से मिली न उससे खुलकर बात हुई, न एक-दूसरे की ओर उन्होंने आँख उठाकर देखा। नव्वाब की आजकल की करतूत देखकर, विशेष रूप से जब से जमींदार चारपाई पर पड़ा था.

रेशमाँ उससे बहुत डरती थी । सदैव नेकाँ से इस सम्बन्ध में बातें करती रहती । कंदलाँ के पास जब बैठती तो उससे भी इसी सम्बन्ध में वार्तालाप करती । कंदलाँ हैरान होती कि रेशमाँ एक देहाती लड़की इतनी सूक्ष्मदृष्टि वाली होती जा रही थी ।

कई बार रेशमाँ सोचती—नव्वाब से स्वयं बात करे, किन्तु उसे इस बात का साहस न होता । एक-दो बार उसे अवसर भी मिला किन्तु वह टाल गई । आखिर एक दिन उसने दृढ़-संकल्प कर लिया और एक शाम को जब नव्वाब रावलपिंडी शहर से लौटा, तो नीचे कमरे में जाकर उसने कंदलाँ के सामने समझाना आरम्भ कर दिया—सबसे विचारणीय बात, जिसपर रेशमाँ जोर देती, यह थी कि अपने समय में जमींदार जिस प्रकार रुपया बर्बाद करता था, अपने प्रदेश में ही करता था; और इस प्रकार घर का रुपया घर ही में रहता था, वह पूँजी फिर-फिराकर जमींदार के पास ही आ जाती थी । नव्वाब रावल-पिंडी जाया करता था, आठ-आठ, दस-दस दिन वहाँ रहकर अपनी पूँजी और अपनी सम्पत्ति बर्बाद कर रहा था और यहाँ लोग कौड़ी-कौड़ी को तरसते थे ।

नव्वाब विस्मित होता—रेशमाँ कैसी बातें कर रही थी । उसकी समझ में कुछ न आता और कंदलाँ की आँखों में जैसे लिखा होता—  
“मैंने कभी तुम्हारी बातों में टाँग ही नहीं अड़ाई ।”

## एक चाँदनी रात



३४

आमदनी वह पूंजी है, जो बाहर से आए अथवा जमींदार से छीनकर संचित की जाय ।

जंगल के बीच अत्यन्त सघन झाड़ी में एक चाँदनी रात का फर्मान और उसके साथी एकत्रित हुए । शीत धीरे-धीरे बिदा ले रहा था । फिर भी मैदान में बैठे हुए कँपकँपी चढ़ जाती, इसलिए उन्होंने एक अलाव जला रखा था । इस अलाव के गिर्द दूर-निकट से आए हुए पार्टी के सदस्य बैठे हँस रहे थे, खेल रहे थे, गा रहे थे ।

अभी तक फर्मान, जिसे व्याख्यान देना था, नहीं पहुँचा था ।

जो लोग बाहर से आए थे, वे पार्टी के लिए संचित की हुई पूंजी एकत्रित करा रहे थे । अपना-अपना हिसाब देते, बार-बार अपने साथियों से कौली भरकर मिलते, बार-बार हाथ मिलाते और एक-दूसरे को अपने अनुभव बताते ।

“मोटे-मोटे सूफियों पर भी भूत सवार हैं !” एक साथी ने दूसरे साथी को समझाते हुए कहा ।

“बुझन से पहले एक बार तो झड़क उठेंगे !” दूसरे ने अलाव की ओर देखते हुए कहा ।

आग दहक उठी थी, जब फर्मान वहाँ पहुँचा, सबसे गले लगाकर मिला, प्रत्येक अपनी रिपोर्ट देने के लिए विकल था, किन्तु सबसे अधिक

विकल स्कूल का अध्यापक था, जो एक युग से फर्मान से मिलना चाहता था। आज उसने आते ही फर्मान को घेर लिया। आखिर था भी तो वह एक बूढ़ा-खूँसट। उनमें से कई एक उससे पढ़ते रहे थे, बहुत-सों को उसकी शीशम की छड़ी ने मार पिलाई थी और उन्हें अभी तक याद था। अध्यापक फर्मान को पकड़कर एक ओर ले गया और चिन्तातुर भाव से उससे पूछने लगा—“तू जो कहता है, वह ठीक ही होगा, किन्तु……”

अध्यापक की केवल एक ही कठिनाई थी कि उसने सारी आयु जोड़-जोड़कर एक हजार रुपया संचित कर लिया था। और अब उसे भय लगता था—ये लोग जो चाहते थे कि निर्धन और भूखे लोग मौत का शिकार न हों, उनके तन पर वस्त्र हों, उनके रोगों का इलाज हो, उनके घर साफ-स्वच्छ हों, उनके बालकों को उच्च-शिक्षा मिले, तो फिर अध्यापक ऐसे अमीर व्यक्ति की क्या दशा होगी ? उसे तो कोई हानि नहीं पहुँचैगी।

“रुपया यदि चाहिए तो अभी सारे-का-सारा ले लो, किन्तु मुझे कुछ न कहिए ! और यदि मैं मर जाऊँ तो मेरी बूढ़ी पत्नी पर कोई विपत्ति न आए !” बूढ़े अध्यापक ने आखिर फर्मान से हाथ जोड़कर प्रार्थना की।

फर्मान खूब हँसा—हँस-हँसकर लोट-पोट हो गया। आखिर अपने-आपको वश में करके और अध्यापक के गले में बाँहें डालकर उसने कहा—“मौलवी साहब ! हम तो आपको एक हजार रुपया और देंगे, साथ ही घरती देंगे और ढोर डंगर भी……”

और फिर फर्मान ने अपने शेष साथियों से अध्यापक महोदय की इस विपत्ति की चर्चा की, और सबके पेट में हँसी के मारे बल पड़ गए।

और फिर अनाज से भरा हुआ एक छकड़ा उनके पास आ खड़ा हुआ, सब अल्लादाद और उसके बैलों को देखकर अवाक् रह जाते। न पहाड़ उनके मार्ग में ठहरते थे न दरिया उनका मार्ग काटते थे, न किसी सघन-वन में वे रुकते।

“इतनी बोरियाँ ?” एक साथी ने अल्लादाद से कहा ।

“मैं कहता हूँ, यदि हम दोनों हाथों से लुटाना भी आरम्भ कर दें तो भी हम भूखे न रहें !” अल्लादाद ने अपने स्वाभाविक अल्हड़पन से उत्तर दिया ।

फिर कितनी देर तक इधर-उधर की बातें होती रहीं । आखिर जब सब लोग हँस-खेल चके, खा-पी चुके, तो फर्मान ने उठकर अपना नया प्रस्ताव सबके सामने रखा; सुनते-सुनते सब साथी जैसे भौंचक्के-से रह गए । प्रत्येक को यह अनुभव होने लगा, जैसे सारी शक्ति उनके हाथ में थी । उम्रभर जमींदार से भय खाते रहे, हालांकि जमींदार को उनसे डरना चाहिए था ।

“राजकुमार जिन्दाबाद !”—के नारे बार-बार गूँजते और लोगों के मुँह से स्वयमेव निकल जाता—“बलिहारी उसकी, जिसने तुम्हें जन्म दिया है !”

भागभरी और उसकी सहेलियाँ खाने-पकाने से अवकाश पाकर उनमें आकर सम्मिलित हो चुकी थी । फर्मान का प्रस्ताव यह था कि जो फसल तैयार हो चुकी थी, आजकल उसे कोई हाथ न लगाए; और जिन खेतों में कुछ कटाई हो चुकी थी, उन्हें वैसा ही छोड़ दिया जाय, और जिन खेतों की फसल कट चुकी थी, वह खेतों ही में पड़ी सड़ती रहे । ढोर-डंगरों को खेतों में चरने से रोका न जाय, कुओं से पानी न निकाला जाय, रहट न चलाए जाय, और जो साथी सरकार के अस्तबल में, हवेली में काम कर रहे थे, वे एकदम काम छोड़ दें । किन्तु यह सब कुछ करने से पहले सबके घरों में दो सप्ताह के खाने के लिए अनाज अवश्य होना चाहिए । और सब यह जानते थे कि जिनके पास अनाज की कमी थी, उनकी आवश्यकता कहाँ से पूरी हो सकती थी । इन दो सप्ताहों में फर्मान ने समझाया कि प्रत्येक गाँव में जत्थे बनाकर सब साथी तख्तपड़ी में आएँ—‘जमींदारी मुर्दाबाद’ तथा ‘हमें हमारी धरती दो’ के नारे लगाएँ ।

‘जमींदारी मुर्दाबाद !’ भागभरी सोच रही थी ।

और उसके साथी की स्त्रियाँ हैरान होतीं कि जैसे उसका बेटा कहा करता था; यदि उन्हें जमींदार की हवेली में जाकर रहना पड़ा तो वे इतना भी नहीं जानती थीं कि इतनी बड़ी हवेली का क्या करेंगी ।

और फिर फर्मान ने उनको समझाया कि सम्भव है कि उन्हें पुलिस से टक्कर लेनी पड़े; सम्भव है उनमें कई द्रोह कर जाँय, सम्भव है कि उन पर लाठियाँ बरसाई जाँय, यह भी सम्भव है कि एकाध बार गोली भी चल जाय, किन्तु कोई साहस नहीं छोड़ेगा । जिस साहस के साथ उन्होंने आज तक अपने संगठन को दृढ़ रखा था, उसी साहस से एक प्राण होकर सबके-सब लड़ेंगे, संगठित होकर, सिर जोड़कर, यदि आवश्यकता पड़ी तो सबके-सब जान दे देंगे ।

“और ईश्वर न करे, यदि इस बार हम अपने उद्देश्य में असफल रहे तो हमारा नामोनिशान मिट जायगा……” अन्त में फर्मान ने कहा ।

और फिर ‘फर्मान जिन्दाबाद—राजकुमार जिन्दाबाद’ के नारों की गूँज में प्रत्येक ने प्रतिज्ञा ली कि वे फर्मान के बताए हुए मार्ग पर चलेंगे, चाहे मर ही क्यों न जाँय ।

दूर-दूर के गाँवों से आए हुए प्रतिनिधि बिखर गए और धीरे-धीरे सभी साथी चले गए । केवल चार साथी रह गए, जिनके हाथ में इस आन्दोलन की बागुडोर थी ।

फर्मान ने एक-एक को समझाते हुए बार-बार इस बात पर जोर दिया कि यह लहर अहिंसात्मक असहयोग की लहर थी । और वे इसी आन्दोलन से इस बात का निश्चय रखते थे कि शत्रु घुटने टेक देने पर विवश हो जायगा । इस प्रकार जत्थेबन्दी करके जब लोग आने आरम्भ हो जाँयेंगे, तो अनिवार्य था कि लोगों में उत्साह बढ़ेगा । और सम्भव है कि जरा-सा उकसाने पर वे किसी को हानि पहुँचाने पर तुल जाँय; बार-बार फर्मान इस बात पर जोर देता कि यदि लोगों ने कहीं भी तनिक-सी भूल की तो सारा काम चौपट हो जायगा, और फिर सारे-का-

सारा आन्दोलन नए सिर से आरम्भ करना पड़ेगा। सम्भव था कि विरोधी उन्हें जान-बूझकर ललकारने लगे, किन्तु किसी ने किसी पर हाथ नहीं उठाना। वह सारा कार्य शान्तिपूर्ण ढंग से करना चाहता था, मजदूरों ने अपना मूल्य आंकना था, श्रमिकों ने यह प्रमाणित कर दिखाना था कि उनका मूल्य क्या है; और विरोधी यदि उनके मूल्य पहचान जाय तो उसीमें सारे आन्दोलन की सफलता थी। फर्मान यह जानता था कि कोई उन्हें सरलता से धरती नहीं देगा, किन्तु यह उत्साह एवं प्रेरणा, जिसने इस आन्दोलन से जन्म लेना था, वह जमींदार और उसके ज्वायरियों के चरण लड़खड़ा देगी।

भागभरी सोचती कि उसका लड़का किसी से ऊँची आवाज से बातें नहीं किया करता था। भागभरी सोचती कि उसका लड़का किसी का बुरा नहीं चाहता था, जभी तो वह जमींदार की हवेली में आग नहीं लगा सका था। जमींदार की हवेली के बारे में यह बात उसके हृदय की विशालता थी, नहीं-नहीं यह उसकी दुर्बलता थी, भागभरी के लड़के की यह दुर्बलता थी। यह दुर्बलता थी उस नवयुवक नेता की, जिसे सब राजकुमार कहकर पुकारते थे। दुर्बलता थी...नहीं...नहीं...न...न...दुर्बलता सम्भवतः भागभरी की उपमा थी, दुर्बलता सम्भवतः माँ की थी जिसके कारण उसका लड़का विवश होकर रह गया था।

मेरी अपनी दुर्बलता—दो में से एक अवश्य बलवान होता है और एक अवश्य दुर्बल होता है। भारी यदि बहुत भारी हो, तो दुर्बल अधिक दुर्बल प्रतीत होता है। और भागभरी को अपने-आप में से सड़ाँद आने लगी, जैसे कूड़े का ढेर किसी ने बिखेर दिया हो। उसे यूँ अनुभव हुआ, जैसे उसके आसपास की धरती गन्दगी से भरी हो और सब लोग उसमें लिथड़े हुए हैं, खा रहे हैं, पी रहे हैं, खेल रहे हैं, काम कर रहे हैं, और कय में कुलबुलाते हुए कीड़े कभी काले पड़ जाते हैं और कभी लाल।

लौटते समय एक नदी पड़ी। भागभरी फर्मान से बोली—“बेटा ! मैं तनिक नहा न लूँ, सबेर तो हो ही रही है।”

## एक तूफानी रात !



३५

कल दिन-भर वर्षा होती रही, रात-भर वर्षा होती रही, आज सबेरे से वर्षा होती रही । और अब रात हो चुकी थी । बादल बरस-बरसकर फिर बरसने लगते, मूसलाधार मेंह पड़ रहा था । बादल गरजते, बिजली कौदती, भँभाएँ चलतीं, वर्षा एक पल एक घड़ी के लिए न रुकती, जो कोई भी जहाँ था, वहीं रुका था ।

रात मौन थी, फिसलती और चिकनी-सी, बार-बार सन्नाटा जैसे आकर शरीर से चिपट जाता और बरामदे में एक नारी थी, जिसकी चरण-चाप मूसलाधार वर्षा में भी दब न सकती । भँभा कभी-कभी मेंह की बूंदों को टिटहरी (एक पक्षी) की भांति घुमाकर भीतर ले जाती, किन्तु स्त्री के उखड़ते हुए और जमते हुए चरण बूंदों की टपाटप से भी जैसे अधिक तीव्र थे । बिजली की चमक में उस रात से अधिक घना काला दुपट्टा भी कभी दिखाई दे जाता, और कभी अंधेरे में अंधेरा और गहरा हो जाता ।

बरामदे की यह नारी विकल थी, मछली की भांति जैसे तड़प रही हो । संताप अधिक घना होता जा रहा था । बादल उमड़े आ रहे थे, जैसे धरती को छू रहे हों । काली घनघोर घटाओं में बिजली की कौद नागों के समान लपक-लपक कर उसने को दौड़ती—किन्तु चारों ओर

वर्षा-ही-वर्षा हो रही थी, और कुछ नहीं था। नारी की विकल चरण-चाप भी रुक गई थी। पिछले दो दिन से भूखी उस जवान लड़की के भीतर एक अलाव जल रहा था। एक भूखी जवानी, जिसकी अन्तर्ज्वाला को अटूट वर्षा व तेज हवा के बर्फीले झोंके कम नहीं कर सकते थे।

सोच-सोच कर बरामदे में टहलती हुई नारी अनुभव कर रही थी कि उसका मस्तिष्क फट जायगा।

“कल रात के बारह बजे टाली मूहरी के पुल पर……” जैसे अंधकार में से कोई उसके कानों में यह बात फूँक रहा था।

और कल आज बन चुका था।

टन्—टन्—टन्, हवेली के द्वारपाल ने घड़ियाल बजाना आरंभ किया और घने काले दुपट्टे वाली लड़की काँप उठी, दस बज चुके थे।

दस बज चुके थे और अब केवल दो घंटे शेष थे, दो घंटे जिनका आधा केवल एक घंटा होता है—और टालीमूहरी के पुल पर सफेद घोड़े पर जाते हुए सवार को ठंडा कर दिया जायगा। पूरे बारह बजे उसने उस पुल पर से निकलना था। पता देने वाले ने ठीक पता दिया था और उस पुल पर से गुजरने वाला व्यक्ति समय का पाबंद था। वर्षा चाहे दो घंटे तक होती रहे, चाहे आंधी आ जाय, चाहे तूफान आ जाय, चाहे पुल हो चाहे न हो, सफेद घोड़े वाला सवार अवश्य जायगा।

और टालीमूहरी के पुल पर राइफलें तान ली गई होंगी। दस बज चुके थे और राइफलों वाले आठ बजे से गए हुए थे। चार गुंडे, जिनके अंदर मदिरा की आग न वर्षा से भयभीत हुई न बादलों से सहमी, न बिजलियों से रुकी। दो दिन से निरंतर शराब पी-पी कर अकड़ाए हुए पट्टे, दो दिन की प्रेरणा का विष, घोर अंधेरी रात की स्तब्धता और मदिरा से मदमस्त आँखों की क्रूरता सफेद घोड़ा, सफेद साज उन्हें अवश्य दिखाई दे जायगा। सफेद घोड़े का गोरा चिट्ठा सवार उनके निशाने की लपेट में अवश्य आ जायगा।

“टन् . टन्……” दस बज चुके थे। घड़ियाल बजना बन्द हो

गया । वर्षा अधिक तीव्र हो उठी, गरजते हुए बादल अधिक दूर-दूर तक फैल गए और बिजली जैसे काले दुपट्टे को चीर-चीर जाती ।

“रात को पूरे बारह बजे टालीमूहरी के पुल पर !” फिर जैसे किसी ने उसके कानों में आ कर फूँका ।

रात को पूरे बारह बजे एक भूकम्प आयागा, रात के पूरे बारह बजे धरती फट जायगी, रात के पूरे बारह बजे प्रलय आ जायगी ।

और अब रात के दस बज चुके थे ।

घने काले दुपट्टे वाली नारी बरामदे में तड़प रही थी, उसके शरीर में से जैसे चिन्नारियाँ निकल रही हों, उसकी आरक्त हो रही आँखें जैसे फट कर बाहर आने को उद्यत हों, व्यग्रता में कभी उसका रोम-रोम काँपने लगता और कभी उसका शरीर झुँक जाता ।

तेज-तेज डग...अधिक तेज होते जा रहे थे । किन्तु उसका मस्तिष्क जैसे पथरा चुका हो, हिम की भाँति स्थिर और शीतल, अथवा उसकी आँच के कारण भस्म हो चुका था, जो उसके अंग-प्रत्यंग में दबी हुई थी ।

दो घंटे और—फिर चाँद कभी नहीं निकला करेगा । और दो घंटे—फिर फूल खिलना छोड़ देंगे । और दो घंटे—फिर अंधकार मिट जायगा । रात वहीं-की-वहीं रुक जायगी ।

घने काले दुपट्टे वाली लड़की ने अपने शरीर की चुटकी भरी, उसके नाखून मांस में खुभते गए, किन्तु उसने उस टीस को अनुभव न किया ।

बिजली अभी तक चमक रही थी, वर्षा अभी तक हो रही थी, बादल अभी तक गरज रहे थे, रात और भी भयानक होती जा रही थी ।

तिड़—तिड़—तिड़ !!! घने काले दुपट्टे वाली लड़की के कानों में जैसे गोलियाँ चल रही थीं, और उसे ज्ञात हुआ जैसे फूल टहनी से टूट कर आँधे मुँह गिर पड़ा हो । श्वेत घोड़े का सवार टालीमूहरी के पुल की दाईं ओर ढेर हो चुका था ।

तिड़—तिड़—तिड़—गोलियाँ बरस रही हैं और सारे-का-सारा प्रदेश जैसे भुना जा रहा हो। जैसे प्रत्येक बालक अनाथ कर दिया जाता है, हल चलाने वालों के हल जैसे वैसे-के-वैसे खड़े हों, खेतों की मेंदों पर पड़े हुए बीज जैसे बर्बाद हो रहे हों। कुएँ अन्धे हो चुके हों। बहती धारा रुक गई हो।

तिड़—तिड़—तिड़—एक नारी के सफेद बालों में धूल पड़ रही है। उसकी नग्नता का अपमान किया जा रहा है, उसकी बोटी-बोटी कुत्ते नोच रहे हैं।

तिड़—तिड़—तिड़—प्रत्येक युवती के सतीत्व पर आक्रमण किया जा रहा है।

“रात के पूरे बारह बजे टालीमूहरी के पुल पर”—किसी ने फिर उसके कानों में यह फूँका—“रात के पूरे बारह बजे”—काले दुपट्टे वाली नारी ने सोचा—“रात के पूरे बारह बजे—स्त्रियाँ चीख उठेंगी, बालक बिलबिलाने लगेंगे, बूढ़े दहाड़ें मार-मारकर पागल हो जाँयगे।

टन्—टन्—टन्—घड़ियाल फिर बजने लगा, बारह बज रहे थे। काले दुपट्टे वाली लड़की चौंक पड़ी। उसका शरीर पसीने से तर हो गया। घुप-अंधेरी रात में उसने आँखें फाड़-फाड़ कर देखा—बिजली एक बार फिर काँपी, जैसे उसके समीप आ कर मुसकरा रही हो।

और घने काले दुपट्टे वाली नारी एक अपरिमित तीव्रता के साथ बाहर निकल गई।

“पूरे बारह बजे” उसके कानों में यह ज्ञात गूँज रही थी, उसने स्त्रियों वाले वस्त्र उतार दिये और एक नवयुवक के वस्त्र पहन लिये।

“पूरे बारह बजे” उसके कानों में यह आवाज गूँज रही थी, वह लालटेन के प्रकाश में एक कागज के टुकड़े पर कुछ लिखने का प्रयत्न कर रही थी।

“पूरे बारह बजे” यह आवाज उसके कानों में गूँज रही थी, जब वह मूसलाधार वर्षा में अपने धड़कते दिल के साथ विलीन हो गई।

फिर उसने अस्तबल में से एक सफेद घोड़ा खोला, घोड़े पर काठी डाली, और फिर वह बागीचे के मार्ग से बाहर निकल आई। फिर बादल गर्जते रहे, बिजली कौंदती रही, मँह पड़ता रहा। घोड़े के पाँव धरती को न छूते, जैसे वह उड़ रहा हो, वर्षा से लड़ रहा हो, शीत से लड़ रहा हो।

“टालीमूहरी के पुल पर” कोई ऊँची आवाज में जैसे पुकार रहा था। और टालीमूहरी का पुल पाँच मील दूर था।

सफेद घोड़े के सुकोमल सवार को अपना शैशव याद आया—माता-पिता का दुलार, सेवकों का पालन, सखियों की छेड़-छाड़। एक बार ये खेलते-खेलते “चोर-चोर” का खेल खेली थीं, और अंगुली की बंदूक से उसने लकड़ी के घोड़े पर भागते हुए चोर को मार गिराया था। फिर उसको वे दिन याद आए—जब वह श्रेणियों के पश्चात श्रेणियाँ उत्तीर्ण करती गई और यूँ उछलते-कूदते हंसते-खेलते, कभी-कभी कोई उससे कहता कि कहीं वह मुँह के बल न गिर पड़े, और फिर उसकी माँ उसे सात-सात पर्दों में छिपाकर रखने का प्रयत्न करती। वह नौकरों से बात नहीं कर सकती थी, वह माली के बालक को दुलार नहीं सकती थी, किसान से उसकी पत्नी की दशा नहीं पूछ सकती थी। वह गाना सीख सकती थी, किन्तु किसी पराए के सामने गा नहीं सकती थी, नृत्य सीख सकती थी, किन्तु अपनी माँ के अतिरिक्त किसी के सामने नाच नहीं सकती थी। सखियाँ चाहे उसके घर आ जाँय, किन्तु वह सहेलियों के घर नहीं जा सकती थी—और इस प्रकार देखते-देखते वह भुँभुला उठी,—और बिल्कुल उसी प्रकार वर्षा हो रही थी, बिल्कुल उसी प्रकार बिजली कौंद रही थी, बादल गरज रहे थे—उसने सामने पलंग पर पड़ी हुई माँ को उस बार घूर कर देखा—और फिर धीरे से बाहर निकल आई। जब घर के बड़े द्वार में से निकली तो घर की घड़ी बारह बजा रही थी।

“पूरे बारह बजे” फिर उसे यह बात याद आई।

“पूरे बारह बजे—पूरे बारह बजे—पूरे बारह बजे” प्रत्येक श्वास के साथ उसके मुँह से यह शब्द निकलने लगते ।

घोड़ा सरपट दौड़ रहा था । ललकारता जा रहा था, गोरे सवार का सफेद घोड़ा उड़ता जा रहा था ।

टखनों तक पानी खड़ा था—गढ़े थे, पत्थर थे, पक्षी मरे पड़े थे, टहनियाँ टूटकर बिखरी पड़ी थीं, किन्तु घोड़ा इन सबको फलाँगता चला गया ।

घोड़े के सुकोमल सवार को अब अपने पिता की याद आई—वह सड़कों का बड़ा इंजीनियर था, वह सड़क, जिसके सीने पर आज इस अंधेरी रात में उसकी लड़की उड़ती जा रही थी, वह उसी की बनाई हुई थी ।

टालीमूहरी के दाईं ओर उसे ज्ञात था कि दो गुंडे एक ओर खाई में होंगे, दो गुंडे दूसरी ओर झाड़ी में छिपे होंगे, और पाचवाँ कहीं छिपा हुआ सब कुछ देख रहा होगा ।

सफेद घोड़े के सवार को पुरुषों-ऐसा वेष बनाकर अपने-आप पर भरोसा बढ़ गया था । वह सोचती, एक गोली पर्याप्त नहीं होगी, तब तो शायद वह दो गोलियाँ भी खा सके, और उसकी मुसकान तथा थपकियों पर पला हुआ तुरंग उसकी लाश को भी कहीं उड़ा कर ले जायगा । रकाब में पाँव जमाना तो उसने देर से सीख रखा था, टाँग से चाहे धड़ अलग हो जाय, किन्तु रकाब में से पाँव कर्मा न हिल पाए ।

बादल वैसे-के-वैसे बरस रहे थे, बिजली वैसी-की-वैसी कौंध रही थी, भ्रंभा अधिक तीव्र हो रही थी ।

“पूरे बारह बजे” फिर उसके कान में किसी ने फूँका ।

सफेद घोड़े को और एड़ी लगाई गई । वह अधिक तेज दौड़ा, सामने टालीमूहरी का पुल था ।

सफेद घोड़े के सवार की आँखों के आगे कोई गोरी-गोरी आकृति आ गई, बिल्ली की-सी आँखें, रेशम-ऐसे भूरे बाल, सुन्दर लम्बी काया ।

सामने टालीमूहरी का पुल था, घोड़ा अधिक तेज हो गया । वर्षा यूँ हो रही थी, जैसे सारा आकाश चू पड़ेगा और फिर शुष्क हो जायगा । झाँधी का एक थपेड़ा, और फिर तिड़-तिड़ गोलियाँ बरसने लगीं ।

एक—दो—तीन—चार—और फिर सवार औंधे मुँह गिर पड़ा ।

एक—दो—तीन—घोड़ा भी गिर पड़ा ।

बादल गर्जते रहे, बिजली कौंदती रही, वर्षा अपना जोर दिखाती रही ।

## हींग लगी न फटकड़ी !

३६

जमींदार की एक आँख बह चुकी थी। उसके गलते और सड़ते हुए शरीर के घावों में कीड़े कुलबुला रहे थे। कोई औषधि काम नहीं कर रही थी—नब्बाब उसके पास कभी नहीं आया था, अब उसके ये शब्द “मरता क्यों नहीं, अब और क्या चाहता है” उसके कानों तक पहुँच चुके थे।

जमींदार के कमरे में से भयानक दुर्गन्ध आ रही थी। प्रतिपल, प्रतिक्षण उसका तड़पते कटता, चीखते बीतता, कितनी-कितनी देर तक वह बेसुध रहता, हकीम नब्ज पकड़े बैठे रहते। मौलवियों ने कुरान-शरीफ के पाठ आरम्भ कर दिये। रेशमाँ और नेकाँ प्रतिदिन उसके हाथों दरिद्रों में अनाज और कपड़े बाँटवाती रहतीं।

फिर भी उसका पिंड नहीं छूटा था। रात भर जमींदार तड़पता रहा, दिन अत्यन्त कठिनाई से कटता। नौकर तंग आ चुके थे, हकीम-वैद्य तथा डॉक्टर भुँभलाने लगे थे। रेशमाँ हाथ जोड़-जोड़कर प्रार्थना कर रही थी—“हे ईश्वर, अब इन्हें और कष्ट मत दे।”

वे भुजाएँ, जिनके द्वारा भयानक-से-भयानक अत्याचार हुआ था, सूखकर काँटा बन चुकी थीं, वह वक्षस्थल जो अकड़-अकड़ तथा ऐँठ-ऐँठ जाता था, हड्डियों का पिंजर बन चुका था; वे टांगें, जो

काम-क्रोध और अभिमान के मार्ग पर चलती रहती थीं, आज कीड़ों से अटी पड़ी थीं ।

और जमींदार सोचता—वह, जिसके सामने कोई आयुपर्यन्त आँख उठाकर न देख सका, जिसके अत्याचारों की छानबीन का साहस नहीं होता था, आज वह अपने प्रत्येक पाप के लिए दस-दस बार दण्ड भुगत रहा था । मटके भर-भरकर पी हुई शराब आज किसी काम नहीं आ रही थी, मोतियों से भरपूर सन्दूक आज व्यर्थ ठुंसे पड़े थे. दुर्ग की भाँति सुदृढ़ हवेली आज उसे काट खाने को दौड़ती । घोड़ों का ध्यान, कुत्तों की चिन्ता, बाजों की बातें—सब उसे छेद रही थीं ।

जमींदार ने बार-बार क्षमा-याचना की—उन ज्यादतियों के लिए, जो कामातुर होकर करता रहा । उसने लाख-लाख बार अपने पाप कटवाए; उस क्रोधानल के लिए, लोभ के लिए, जिसने आयुभर उसे ऊँचा किये रखा, उसका प्रत्येक घमंड उसे अपमानित कर रहा था ।

दो दिनों की वर्षा के बाद धूप और भी चमकीली निकली । जमींदार ने नेक़ाँ को भी बुलवा भेजा, नेक़ाँ भागभरी के गाँव की रहने वाली थी ।

जमींदार ने नेक़ाँ से विनय की कि किसी प्रकार वह जाकर भागभरी को बुला लाए । उसे यँ ज्ञात होता था, जैसे उसके श्वास केवल इसलिए अटके हुए थे कि भागभरी के सामने हृदय चीरकर रख दे । उसने अपने आपको संयत किये रखा, किन्तु अब उससे न रहा गया । भागभरी, जो राजकुमार की माँ थी—भागभरी—जिसे सम्पूर्ण पोठोहार 'माँ' कहकर बुलाता था, भागभरी यदि उसे क्षमा कर दे तो शायद उसे आराम हो जाय; भागभरी यदि उसे क्षमा कर दे तो वह इस प्रकार घुलेगा नहीं, गलेगा नहीं, सड़ेगा नहीं ।

और भागभरी अब वह भागभरी नहीं रही थी । उसके दूध-ऐसे श्वेत केश हिम के समान झिलमिलाते, इस आयु में भी उसके कपोल दहकते, उसके चौड़े ललाट पर सत्य, श्रद्धा और प्यार की आभा झलकती रहती । फर्मान की माँ भागभरी अब किसी से नहीं डरती थी । नेक़ाँ

ने जाकर उसे जमींदार की दशा बताई और वह उसी समय उठकर उसके साथ हो ली ।

हक्की-बक्की नेकाँ ने भागभरी को जमींदार की अत्यन्त भयानक बीमारी के सम्बन्ध में बताया, उसके विनय-मिन्नतों के विषय में बताया, उसकी दवाओं के बारे में बताया, उसके दान की चर्चा की, कुरान शरीफ के पाठ के विषय में बताया ।

द्वार खुलते गए, मार्ग उसके चरणों पर बिछ-बिछ गए । भागभरी एक सुगंधि बिखेरती, एक शीतल-शीतल भीनी-भीनी पवन लिये जमींदार के कमरे में जा पहुँची ।

जमींदार को विश्वास नहीं आ रहा था कि उसके सामने और उसके अपने कमरे में भागभरी खड़ी थी । खदर के दूध ऐसे श्वेत वस्त्रों में जैसे गगन से उतरी हुई कोई देवी हो । एक दबी हुई आँख से उसने घूर-घूरकर देखा—कहीं उसे धोखा तो नहीं हो रहा था । किन्तु भागभरी उसके सामने खड़ी थी—जैसे शान्ति संतोष की कोई सजीव प्रतिमा, जैसे शीतलता का कोई स्रोत, जैसे सुगंधि में गुंथी हुई कोई नारी !

भागभरी का अंग-प्रत्यंग जमींदार को यूँ घूरता हुआ देख जैसे बोल पड़ा था—“तुझ पर ईश्वर का कोप हुआ है, निर्धनों पर अत्याचार का तुझे दण्ड मिल रहा है, जिसे तू अपने जीवन में करता आया है । ईश्वर की लाठी में आवाज नहीं होती, ईश्वर के समीप किसी निर्धन और धनाढ्य में अन्तर नहीं होता । परलोक का नरक, परलोक का स्वर्ग तो किसी ने देखा ही नहीं । मेरा लड़का कहता है कि अत्याचारों का फल व्यक्ति यहीं भोग लेता है । नरक भी इसी संसार में है और स्वर्ग भी, अपने किये का परिणाम यहीं निकल जाता है । फिर भी तू जमींदार है, हमने तेरा नमक खाया है, हम तेरी धरती पर रहते हैं, तेरी हवा में साँस लेते हैं, हमने तेरा पानी पिया है, मैंने तुझे क्षमा कर दिया, मैंने तुझे क्षमा कर दिया । मैंने तुझे बहादुर का खून भा, जिसे शायद कोई भी नारी क्षमा न कर सके, क्षमा कर दिया । वह सारी भूख, वह सारी

नग्नता, जिसका तू उत्तरदायी है, तेरे पिढ़ू उत्तरदायी है, क्षमा कर दिये। पोठाहार की बाढ़ तुझे क्षमा कर दी, जिसे तू यदि चाहता तो रोक सकता था। वे पुरुष-स्त्रियाँ और बालक भी तुझे क्षमा कर दिये, जो सोते में सदा की नींद सो गये, केवल तेरे अन्याय के कारण, तेरी उपेक्षा के कारण। मैं तुझे पोठाहार के सम्पूर्ण प्राणियों की ओर से क्षमा कर रही हूँ; नहीं तो तेरा साँस यूँही अटका रहेगा। मैं तुझे इसलिए क्षमा कर रही हूँ कि तू और तेरा शासन कुछ दिनों के अतिथि हैं, मैं तुझे क्षमा कर रही हूँ; इसलिये कि निर्धनों के हाथ में शक्ति आ चुकी है। किसान को उसका अधिकार मिलने वाला है, अब प्रत्येक किसान को स्वच्छ रहने का अधिकार मिलने वाला है, अब तो प्रत्येक किसान के रोग का इलाज हुआ करेगा। अब तो जो कोई जितना काम करेगा, उसे उतना ही खाने को मिलेगा; तेरी जमींदारी के पाँच अब उखड़ रहे हैं। अभी हड़ताल को पाँच दिन हुए हैं, पिछले दो दिनों की वर्षा में खेतों के खेत बर्बाद हो चुके हैं। क्या तू जानता है कि तेरी हवेली में अनाज का एक दाना नहीं रहा, और तीन दिन कटने दे—तेरे, नव्वाब और उसके गुंडों की नाक में दम आ जायगा। चारों ओर से नाका-बन्दी की जा चुकी है, मैं तुझे क्षमा करती हूँ—तू अब लड़ भी नहीं सकता।”

नेकाँ ने आगे होकर देखा—जमींदार की आँख वैसे-की-वैसे खुली थीं, किन्तु वह बेसुध पड़ा था, नब्ज जैसे कहीं गुम हो गई हो, अत्यन्त धीमा चल रही थी। कई जोड़-तोड़ किये गए, कई दवाएँ दी गईं, फिर कहीं जाकर होश आया।

जमींदार ने भागभरी से बैठने के लिए अत्यन्त नम्रता से कहा। नेकाँ से संकेत किया कि वह रेशमाँ को बुला लाए, इससे पूर्व कि रेशमाँ आती, उसने अपने तकिए के नीचे से एक कागज निकालकर भागभरी के हाथ में दे दिया, शांत-वित्त हो कर उसने ठंडी आह भरी, संतुष्ट होकर जैसे उसका सिर अत्यन्त कोमलता से तकिये पर जा गिरा।

रेशमाँ का जी नहीं चाहता कि वह भागभरी से गले मिलने के बाद विलग हो, उससे बार-बार चिमट जाती। जैसे उसे नशा चढ़ रहा हो, उस पर एक मादकता व्याप्त हो रही थी, एक सुगंध, जिसके लिए वह तरसती रही, माँ का हृदय, जिससे उसकी कल्पना तक अनजान थी, और जब वह उसके समीप बैठी तो उससे सटकर बैठने का प्रयत्न करती रही।

जमींदार के समीप कुछ समय के लिए बैठकर रेशमाँ भागभरी को अपना कमरा दिखाने के लिए ले गई, उससे छोटी-छोटी बातें करती रही जैसे पुत्रियाँ अपने माता-पिता से करती हैं। वह अपने हाथ से कढ़ी हुई चादरें दिखाती रही, अपने हाथ से लगाई हुई सब्जियाँ दिखाती रही।

और रेशमाँ भागभरी से इस प्रकार मिली कि जैसे जन्म-जन्मान्तर से उसे जानती हो, जैसे उसकी कोख से उसने जन्म लिया हो, जैसे युगों से बिछुड़ी हुई वह फिर मिल रही हो।

रेशमाँ नाचती हुई चलती, हँस-हँस कर दुहरी होती, फूली न समाती, जैसे उसके जीवन की रिक्तता भर चुकी हो, जैसे इसके अंत-स्तल का कोई उजड़ा भाग सहसा हरा-भरा हो गया हो।

रेशमाँ भागभरी को कंदलाँ के कमरे की ओर ले गई, किन्तु वह वहाँ नहीं थी, रेशमाँ हैरान थी कि कंदलाँ ने तो उसे बताए बिना घर से बाहर कभी चरण नहीं रखा था।

फिर रेशमाँ भागभरी को हवेली के दूसरे भागों में ले गई, उसने बागीचे का कोना-कोना उसे घूम कर दिखाया। अस्तबल में एक-एक घोड़े, एक-एक कुत्ते, एक-एक बाज और एक-एक जानवर उसे दिखाया। किसी को थपकी दी, किसी को प्यार से पुचकारा, किसी से बात की और वे कितनी देर तक यूँ ही घूमती रहीं।

भागभरी ने श्रमिकों और मजदूरों के क्वार्टर देखे, उनकी पत्नियों से, उनके बालकों से हँस-हँस कर मिलती रही, और प्रत्येक उसे रेशमाँ

से यूँ मिलता देखकर विस्मित होता ।

“क्यों वही बात हुई न जो मैं तुमसे कहती थी”—अभी रेशमाँ और भागभरी कठिनता से एक दालान में से निकल पाई थीं कि एक पड़ोसिन ने दूसरी पड़ोसिन से कहा ।

“हींग लगी न फटकड़ी, और यह तो चुपके से आ धमकी है,” दूसरी ने उत्तर दिया ।

“मे न कहती थी कि इसका बेटा बला का जादूगर है ।”

जहाँ-जहाँ भागभरी जाती—इस प्रकार की चर्चाएँ छिड़ जातीं और लोग फर्मान की प्रतीक्षा में व्याकुल होने लगे ।

## उसके नाम !



३७

इधर भागभरी जमींदार का दिया हुआ आदेशपत्र अपने वक्ष से लगाये रेशमाँ के साथ हवेली में इस प्रकार घूम रही थी, जैसे जमींदार से उसका कोई विरोध ही न हो, और उधर “ठल्लियाँ” की कँदराओं में फर्मान एक लाश के सिरहाने अपने साथियों को एक पत्र पढ़ कर सुना रहा था :

“—कल रात को द्वार के पीछे खड़ी थी जैसे सदैव रहती हूँ, और फिर मैंने सुना कि चँडाल-चौकड़ी ने निर्णय किया है कि अगले दिन रात को टालीमूहरी के पुल पर पूरे बारह बजे छिपकर बैठ जाँयेंगे। उन्हें ज्ञात था कि “अधवाल” के जलसे के बाद फर्मान, तू उसी समय लौटेगा—दो राइफलें सड़क की एक ओर, दो राइफलें सड़क की दूसरी ओर तेरी प्रतीक्षा कर रही होंगी। मैं अवाक् थी कि उन्हें इस बात का भी ज्ञान था कि तू रात को सफेद घोड़े पर आएगा और तेरे साथ तेरा कोई साथी भी नहीं होगा। लाख-लाख बार निर्णय करने वालों ने उसे फिर दुहराया, शराब पीकर वे इन प्रस्तावों को और भी दृढ़ करते रहे।

“और फर्मान तू जानता है कि कल से किस प्रकार वर्षा हो रही है, भँ भावात चल रहा है, बिजली कौँद रही है, बादल गरज रहे हैं, और

इनसे डरता हुआ तेरा कोई व्यक्ति मेरे पास न आया, और मैं भी कहीं बाहर न निकल सकी और भीतर तो अभी चँडाल-चौकड़ी एकत्रित थी। मैं तड़पती रही, तड़पती रही, रात बीत गई, दिन बीत गया; फिर रात आई, फिर भी तेरी ओर से कोई व्यक्ति न आया। वर्षा वैसी-की-वैसी हो रही थी, बिजली वैसी-की-वैसी कौद रही थी, बादल वैसे-के-वैसे गरज रहे थे।

“पूरे आठ बजे राक्षसों की भाँति मुँडासे बाँधकर थूकते-फुँकारते जाने वाले चले गए। मैंने अपनी आँखों से देखा कि बँदूकों में बारूद भरा जा रहा था। मैंने अपनी आँखों से देखा—बत्तीसियाँ भिंची जा रही थीं, होठ काटे जा रहे थे; और मेरे साथी ! कैसे वे तेरा नाम बार-बार लेते थे, ईश्वर उनकी जिह्वाओं में...।

“तेरी ओर से किसी के आने की प्रतीक्षा व्यर्थ थी, फिर भी मैं प्रतीक्षा करती रही, करती रही। मुझे पता था कि इतनी घनी-काली रात में और बादलों की इस प्रलय में किसी को भी नहीं ढूँड सकूँगी, फिर भी मैं बार-बार विकल हो उठती। घड़ी ने नौ बजाए, घड़ी ने दस बजाए, बादल अभी तक गरज रहे थे, प्रकृति उसी प्रकार प्रलय मचा रही थी, आकाश पर कोई आशा का सितारा नहीं दिखाई देता था।

“और अब मैं तुझे यह पत्र लिख रही हूँ, अब और प्रतीक्षा करना व्यर्थ है। हम मजदूरों के जीवन में कभी विचित्रताएं नहीं हुआ करतीं, प्रकृति अपना नियम कभी नहीं बदलती। मुझे विश्वास है कि तू ठीक बारह बजे पुल पर से गुजरेगा, मुझे विश्वास है कि अत्याचारियों की राइफलें अवश्य आग उगलेंगी, और फिर...और फिर...।

“मेरे भाई ! ले, अब मैं तुझे बताती हूँ कि मैं क्या करने वाली हूँ। यह पत्र लिखकर मैं पुरुषों के से वस्त्र पहनूँगी, तुझे पता है कि मेरे पास ऐसे वस्त्रों के कई जोड़े पड़े हैं, मैं इन वस्त्रों में सदा पुरुष दिखाई देती हूँ; वैसे ही वस्त्र जो तू मुझे भेजता रहता है। और फिर इस घोर-अँधेरी रात में, इस वर्षा में अस्तबल से सफेद साज लेकर निकल जाऊँगी,

और इससे पूर्व कि तू पुल पर से निकले, मैं निकलूंगी—कंदलाँ ! वे गोलियाँ जो मेरी आँखों के सामने तेरे लिए भरी गई, वे मेरे सीने में उतरेंगी !

“मेरे साथी ! जीवन में अपने आदर्श तक पहुँचने के लिए, अन्य कुछ करने के लिए, जिसकी विकलता हम दोनों में है, तुझे सेवाओं के अधिक अवसर प्राप्त हुए हैं; प्रत्येक विपत्ति एवं प्रत्येक दुःख के समय तू जान तोड़कर परिश्रम किया करता था, हम शेष साथी तेरे साथ चलते रहे। हम तेरे बलिदानों तथा तेरी सेवाओं का देख-देखकर दंग रह जाते थे। हमें हमारे जीवन ने कभी ऐसा अवसर नहीं दिया था और आज यदि इस अवसर को मैं यूँही न जानूँ तो मेरी ओर से ज्यादाती न होगी।

“और यदि आज मैं अपने नारी के सीने में तेरे लिए भरी गई गोलियाँ खा सकी, तो मैं तुझ पर कोई एहसान नहीं करूँगी। मैं अपने प्राण इसलिये नहीं त्याग रही कि फर्मान बच जाय, मैं तो यही चाहती हूँ कि वह कार्य, वह लगन, वह आदर्श, जो हमारा सबका साभा आदर्श है—कहीं पूर्ण होते-होते हमारे हाथों से निकल न जाय। हमारी भंजिल कितनी समीप आ चुकी है, हमारा लक्ष्य सर्वथा सामने दिखाई दे रहा है, और यदि आज मेरे साथी, तू हमारे बीच में से उठ जायगा तो हम फिर वही पहुँच जाँयगे जहाँ से हम चले थे।

“यह पत्र पढ़ते हुए मैं देख रही हूँ कि तेरी आँखों में आँसू डबडबा रहे हैं, शेष साथी भी आँसू बहा रहे हैं, किन्तु फर्मान मैं रक्त में नहीं लिथड़ी हुई। मेरे वक्ष में कोई छेद नहीं है, मैं तो हँसती-खेलती अपने मार्ग पर चलती हुई अपना कार्य करती हुई सन्तुष्ट हो चुकी हूँ !

“अब मैंने यह निर्णय करते हुए इतना समय भी नहीं लिया, जितना मैंने मोटरों वाले पिता के बँगले में से निकलते हुए लिया था। यह निर्णय करते हुए मैंने इतना समय भी नहीं लिया, जब पार्टी के आदेशानुसार नव्वाब ऐसे चंडाल की पत्नी बनकर मुझे पोठीहार में आना पड़ा।

मेरे साथी, यह कोई बड़ी बात नहीं, जिसका सामना करने लिए मैं आज जा रही हूँ; ऐसी मौत तो मैं लाख बार मर चुकी हूँ।

“कभी उसके सामने गाना, जिसे कोई एक दृष्टि न देख सके, कभी उसके सामने नाचना जिसके रोम-रोम में से दुर्गन्ध आ रही हो, उसके हाथों को चूमना, जिनको सड़क की कुतिया चाटती रही हों, उन वस्त्रों को छूना, जिनमें गन्दी से-गन्दी नालियों की गंदगी चिमटी हुई होती, एक आँख से हँसना, एक आँख से रोना, एक होंठ से मुस्कराना और एक होंठ काटना, हम-ऐसे लोग तो पग-पग पर मरते हैं, प्रत्येक चरण पर हमें भँभोड़ा और नोचा जाता है।

“टालीमूहरी के पुल पर गरम-गरम जल में नहाई हुई जब पूरे बारह बजे तेरे घोड़े का ठोकर लगेगी, जब तू नीचे उतरकर मुझे पहचान लेगा, यदि मुझ में रक्ती भर भी जान हुई तो मैं अपने हाथों से तुझे यह पत्र दूँगी ? वरना, तू यह पत्र मेरी जेब में से निकाल लेना। यह वही कोट है, तू जिसे कई बार पहनता रहा है।

“अच्छा फर्मान—मेरा अन्तिम नमस्कार ! तुझे और अन्य साथियों को, और उन सबको मेरा अन्तिम नमस्कार, जो हमारे मार्ग पर चलते रहे हैं ! उन खेतों को मेरा अन्तिम नमस्कार जिनमें सोने-ऐसी गेहूँ होती है ! उन कुओं को मेरा अन्तिम नमस्कार, जिनमें दूध-ऐसा जल होता है ! पोठोहार की पहाड़ियों को मेरा अन्तिम नमस्कार, जिन पर हमने चट्टान-ऐसे सुदृढ़ संकल्प किये ! मेरा अन्तिम नमस्कार उन तारों को, जिनकी छाया में बैठकर हम सरगोशियाँ किया करते थे। मुझे क्षमा कर देना मेरे नेता, मैं यह कदम उठाते हुए किसी से परामर्श न ले सकी ! मुझे अपने सारे साथियों से भी क्षमा करवा देना, मैं उनमें से किसी-किसी से भी मिल नहीं सकी हूँ, यदि मेरे होने का भेद आज तक छिपाया गया तो इसका छिपाया जाना ही भला था।

“और मैं तुमसे अलग थोड़े हो रही हूँ, मैं प्रत्येक चरण पर तुम्हारे साथ रहूँगी। वे चरण, जो तुम मंजिल की ओर ले जाओगे, आर

वह मंजिल जो हमारा सबका साक्षात् आदर्श है, मेरे कंधों में इतनी शक्ति है कि मैं इनसे काम ले सकूँ, मैं तुम्हारे साथ रहूँगी। जब जमींदारी मर रही होगी, मैं तुम्हारे साथ हूँगी। जब प्रत्येक किसान अपने खेत का स्वामी स्वयं होगा, जब धरती बाँटी जा रही होगी, मैं तुम्हारे साथ हूँगी, जब तुम हँसोगे, जब तुम खेलोगे, जब तुम गाओगे, मैं उस किसान के साथ आ खड़ी हूँगी, जो पहली बार अपने खेत में अपने हाथ से अपने बैलों से हल चलाएगा। किसानों की उस मुस्कराहट में मेरी मुस्कान भी सम्मिलित होगी, जब वह अपने खेतों को हरा-भरा और लहलहाता देखेगा। मैं गाँव-गाँव पर उड़कर देखूँगी, मोतियों-ऐसी पोथोहार की लाल-लाल गंदम किसानों को अपने घरों में ले जाती हुई। मैं किसानों की पत्नियों के साथ मिलकर गंदम की छान-फटक करूँगी। मैं उस गंदम को जाट-पत्नियों की लम्बी-लम्बी भुजाओं के साथ पीसूँगी, और फिर मैं अपने स्वप्नों के पोथोहार में जन्म लूँगी, जहाँ 'सुहाँ' को सिधाया जायगा और चप्पे-चप्पे पर पानी दिया जायगा। जहाँ हट्टे-कट्टे बैल, थलथलाती हुई गायें और फुकारती हुई भैंसें घूमा करेंगी। अभी मैंने जी भर के पोथोहार के 'माहिया'-ऐसे लोकगीत नहीं सुने, अभी मैंने जी भर के अपने साथियों से पोथोहार की मीठी भाषा नहीं सुनी, अभी सरू-सी लम्बी आकाश से अवतीर्ण अप्सराओं की भाँति पोथोहारनों के साथ मैं अधिक उठी-बैठी नहीं, मैं फिर अवश्य आऊँगी।

“मैं उस समय आऊँगी, जब पोथोहार का प्रत्येक गाँव साफ-स्वच्छ होगा, जब नालियों में गंदगी नहीं होगी, जब कोई एक-दूसरे के साथ झगड़ा नहीं करेगा, जब पंचायत के हाथ में शासन की बागडोर होगी, जब घर-घर चर्खे गूँज रहे होंगे, जब लोग सत्य को अपना सबसे महान् शासन समझेंगे।”

पढ़ते-पढ़ते फर्मान कहीं-कहीं रुक-रुक जाता, उसका कंठारोष हो जाता। उसके समक्ष उसकी सारी पार्टी अपने आँसुओं को रोकने का

व्यर्थ-प्रयास कर रही थी ।

अभी पत्र समाप्त नहीं हुआ था कि नवाब अपने गुंडों तथा अपने कर्मचारियों को लिये वहाँ दाखिल हुआ और फर्मान को सामने खड़ा देख कर उनके हाथों के तोते उड़ गए । किसी के मुँह से बात नहीं निकलती थी, और धीरे-धीरे जब वे आगे बढ़े तो उन्होंने देखा कि सामने कंदलाँ की लाश पड़ी हुई थी, रक्त-चिह्न, जिन पर चलते-चलते वे उस स्थान पर पहुँचे थे । उन्होंने देखा कि यह कंदलाँ के सीने का रुधिर था, कल रात जो गोलियाँ उन्होंने चलाई थीं, कंदलाँ का सीना पार करके छन गई थीं । अभी तो कंदला हवेली में कहीं नहीं थी ।

किसी की समझ में कुछ नहीं आ रहा था ।

## युगयुग जीवन !



३८

भागभरी ने हवेली का कोना-कोना देखा । रेशमाँ घूम फिरकर एक बार फिर जमींदार के कमरे की ओर आई, जमींदार की नजरें जैसे देहली पर स्थिर होकर रह गई थीं ।

रेशमाँ प्रसन्न थी—अब फिर कितने समय के बाद जमींदार के चेहरे पर काँति झलक रही थी ।

और अभी रेशमाँ और भागभरी कमरे में आकर खड़ी ही हुई थी कि बाहर एक कोलाहल-सा सुनाई दिया, घोड़ों के सरपट दौड़ने की आवाज आई । रेशमाँ ने झाँककर देखा—नव्वाब और उसके गुंडे फर्मान तथा उसके साथी हवेली में प्रविष्ट हो चुके थे और इससे पूर्व कि रेशमाँ तथा भागभरी कहीं छिप जातीं, वे सब-के-सब वहाँ आ पहुँचे ।

नव्वाब ने यह दोषारोपण किया था कि उसकी पत्नी कंदलाँ को फर्मान और उसके साथियों ने बहकाकर मार डाला है, उसकी लाश उनके कब्जे से मिली थी और रक्त का प्रतिशोध रक्त होना चाहिए ।

रेशमाँ और भागभरी हिमवत् निश्चल हो गई । फर्मान ने कंदलाँ के हाथ का लिखा हुआ पत्र निकाला और फिर उसमें से आवश्यक भाग पढ़ कर सुनाए । फर्मान ने बताया कि कैसे नव्वाब और उसके साथियों ने फर्मान के लिए जाल बिछाया, और वे स्वयं ही उसमें फँस गए थे ।

कैसे यदि वह पाँच मिन्ट पहले टालीमूहरी के पुल पर से गुजरता, तो नव्वाब के सेवकों ने उसे गोली का निशाना बना दिया होता ।

फर्मान को केवल सत्य पर भरोसा था और उसे विश्वास था कि साँच को कभी आँच नहीं, किन्तु अपनी माँ को हवेली में देखकर उसके मन में एक टीस-सी उठ रही थी । कहीं जाल चारों ओर न फैला दिया गया हो, इसलिए उसने कुछ समय पश्चात् हवेली के बाहर देखा—भीड़ एकत्रित हो रही थी और 'राजकुमार जिंदाबाद' के नारे लगने लग गए थे ।

क्षणाभर में यह समाचार गाँव-गाँव में फैल गया था कि नव्वाब और उसके गुंडे फर्मान तथा उसके साथियों को बंदी बना कर ले गए थे, और जिसके हाथ लाठी लगी वह लाठी उठा लाया, जिसके हाथ छुरी लगी, वह छुरी लेकर दौड़ पड़ा । बहुत से नेजे पकड़े हुए थे, बहुत-सों ने फावड़े उठाए हुए थे, और जहाँ तक दृष्टि पहुँचती हवेली के चारों ओर लाठियाँ-ही-लाठियाँ, नेजे-ही-नेजे, छुरियाँ-ही-छुरियाँ दिखाई दे रहीं थीं । यूँ जान पड़ता, जैसे एक बाढ़ उमड़ आई हो, गरज रही हो । लोग सोचते कि वे उस हवेली की ईंट-से-ईंट बजा देंगे, देखते-देखते उसकी ऊँची मुँडेरों को धरती से मिला देंगे, जैसे नव्वाब और उसके साथियों की बोटी-बोटी उड़ा देंगे और उनका चिह्नमात्र न रहने देंगे । भीड़ दाँत पीसती रही, उसके पट्टे ऐंठते रहे, बार-बार नारे लगते रहे—“राजकुमार जिन्दाबाद !”

इस कोलाहल से गगन कंपायमान हो रहा था ।

देखने वाले खिड़की में से यह देख रहे कि क्या हो रहा है और ज्यों-ज्यों देर होती गई त्यों-त्यों भीड़ मुख्य द्वार की ओर बढ़ने लगी । फिर कुछ युवक ऊँचे-ऊँचे और भारी-भारी द्वार के पट को धक्का देने लगे, बेलचे और फावड़े वाले सोचते कि वे तो इस हवेली की नींव खोद कर रख देंगे । युवकों की एक टोली कह रही थी कि वे कितनों को धक्का दे-दे कर धरती पर लिटा देंगे ।

ऊपर के कमरे में भागभरी तड़प रही थी—कोई आकृति देखकर बताए कि रक्त किस-किस की आँखों में उतरा हुआ है, राइफलें और पिस्तौलें कौन उठाए फिर रहे हैं, क्या कभी लाठियाँ भी गोशियाँ उगलती ह ?

और फर्मान बार-बार माँ को मौन रहने का संकेत कर रहा था । वह नहीं चाहता था कि वह उन चंडालों के मुँह आए, अपने-आप पर, अपने साथियों पर तथा अपने सत्य पर उसे पूरा भरोसा था । सारे समय फर्मान दृढ़ता, शांति और साहस के साथ निश्चल खड़ा रहा, खड़ा रहा ।

कितनी देर तक नव्वाब बोलता रहा, झूठ के पुल बाँधता रहा । फिर उसके प्रत्येक गुंडे ने लाख-लाख झूठी सौगंद उठाई, नई-नई विचित्र-से-विचित्र तथा भयानक-से-भयानक कहानियाँ रचीं ।

जमींदार का हृदय डोलने लगा । वह सोचता — नव्वाब जो कुछ कह रहा था वह कहीं सत्य न हो, फिर वह सोचता — नव्वाब के साथी जो कुछ कह रहे थे वही सत्य न हो ।

यदि वे मासूम थे तो इसमें भी कोई भेद था, इसमें भी कोई बड़ी बेईमानी छिपी होगी, किन्तु कंदलाँ का चरण जमींदार के लिए कितना प्राणदायक था । जब वह आई तो उसकी पहली बीमारी दूर होने लग पड़ी थी—अब उसके कमरे में से घुंघुआँ की भंकार नहीं आयगी, अब कभी काकली स्वर उसके कानों में नहीं गूँजेगा ।

नव्वाब कहता—कंदलाँ को पढ़ना-लिखना नहीं आता था, वह पत्र जो फर्मान के हाथ में था । उसका अपना लिखा हुआ था, और जमींदार को यह बात सत्य जान पड़ती—वह सोचता—कहीं उसका हृदय झूठी साक्षी न दे रहा हो, किन्तु जब नव्वाब ने दोबारा पत्र की चर्चा की, तो रेशमाँ टूटकर आगे आई और कहने लगी कि यह सब झूठ था, यह सब छल था, किन्तु भागभरी ने उसे रोक लिया ।

रावल कहता—पिछली रात उसने बागीचे में से घोड़ों की टापों की आवाज सुनी थी, किन्तु वर्षा के कारण वह बाहर नहीं निकल सका था ।

जुम्मा कहता — उसने अपनी आँखों से फर्मान को सफेद धोड़े पर जाने देखा था ।

शेरा कहता—उसकी पत्नी ने शहर में ऐसी अफवाह सुनी थी कि फर्मान मारधाड़ पर लोगों को उकसा रहा था कि पहला बार वे नव्वाब पर करेंगे ।

फर्मान मौन था, फर्मान के साथी मौन थे, उनके पास केवल एक प्रमाण था और वह था पत्र, जिसे नव्वाब ने भुठला दिया था । इसका प्रमाण वह गाँव था, जहाँ जलसे में वह सम्मिलित हुआ था । किन्तु उस जलसे की चर्चा क्योंकर की जाय, और फिर उस गाँव के साथियों की बात कौन मानता । फर्मान ने मौन में ही भलाई समझी ।

“इधर देखो, इधर देखो, इधर देखो !”

जहाना चीखता-चिल्लाता कमरे में दाखिल हुआ, सबकी दृष्टि उस पर लगी हुई थी । जहाना के बाल बिखरे हुए थे, उसके वस्त्र फटे हुए थे, उसकी आँखें लाल थी, जैसे फट कर बाहर आ रहेंगी । अपने दोनों हाथों से अपनी गरदन दबोचे हुए वह फटी-फटी आवाज में चीख रहा था—“इधर देखा, नव्वाब की पत्नी ने आकर मुझे पकड़ लिया है, नव्वाब की पत्नी से मुझे बचाओ । मैं कहता हूँ कि उसे मेरी गोली लगी और ये कहते हैं कि उसे इनकी गोली लगी । अब बताओ—उसने गरदन आकर किसकी पकड़ ली है, मुझे क्या ज्ञात था कि वह नव्वाब की पत्नी है, हम तो ससुरे राजकुमार की खोंज में गए थे, ऐसे गला घोंट-घोंटकर न मार !” और जहाने ने फिर इतने जोर से स्वयं अपना गला दबाया कि उसका दम घुट गया ।

नव्वाब और उसके साथी, सभी हक्के-बक्के रह गए, उनका भेद खुल गया । फर्मान और उसके साथियों के चेहरों पर गौरव झलकने लगा । नव्वाब ने डबडबायी आँखों से एक बार ऊपर की ओर देखा—बादलों के पीछे सितारों के संसार में कोई अवश्य था—वह यह अनुभव कर रहा था । नव्वाब के साथी खिसकने लगे, नव्वाब भी दाँत भींचता-

फुंकारता सिर हिलाता बाहर जाने लगा। किन्तु जहाना द्वार में खड़ा हो गया। “अब कहाँ भाग रहे हो, पहले मेरे प्राण बचाओ।” अभी तक अपनी गरदन वह अपने हाथों से दबोचे हुए था।

हवेली के बाहर भीड़ आपे-से बाहर हो रही थी, असन्तुष्ट हुए जा रही थी, ‘राजकुमार जिंदाबाद’ के नारों-पर-नारे लग रहे थे। यूँ जान पड़ता कि शताब्दियों की खड़ी दीवारों को लोग धक्का देकर तोड़-फोड़ देंगे। भीड़ का कोलाहल बढ़ता जा रहा था। बार-बार लाठियाँ उछलने लगती, बार-बार छड़ियाँ चमकने लगतीं। वे लोग नागों की भाँति बल खाते—फावड़े, बेलचे, तेसे, आरे, चिमटे, हथौड़े, मूसल, बेलन, बट्टे, पत्थर कुछ-न-कुछ प्रत्येक के हाथ में था, कोई हाथ खाली नहीं था। बालक तस्तिरियाँ लेकर दौड़ आए। बूढ़ियाँ चर्खों की सलाखें लेकर भागती आई, लोग जैसे इस प्रतीक्षा में थे कि संकेत-मात्र हो और वे टूट पड़े, हवेली में से एक हाथ हिले और वे जमींदार तथा उसके पिट्टुओं का नामोनिशान तक उड़ा दें।

अन्तिम द्वार पर खड़े हुए युवक ने ‘राजकुमार जिंदाबाद’ कहकर हल्ला बोल दिया और द्वार किड़किड़ाता हुआ दूर जा पड़ा, तथा भीड़ भीतर दाखिल हो गई।

ऊपर कमरे में जमींदार की काँपती हुई भुजा तकिये के नीचे गई, तकिये से नीचे एक और कागज था, जो उसने निकाला और फर्मान के हाथ में दे दिया।

नब्बाब और थर्थर काँपते हुए उसके पिट्टू भागने का व्यर्थ प्रयत्न करते रहे, भीड़ नीचे दालान तक पहुँच चुकी थी।

क्षण भर के लिए जमींदार का जी चाहा—काश, उसमें उठने की शक्ति होती और वह उन लोगों को देख सकता जो यूँ मस्त होकर नारे लगा रहे थे।

जमींदार के दिये हुए कागज को पकड़े भागभरी, रेशमाँ और फर्मान छज्जे पर जा खड़े हुए। भीड़ ने उन्हें देखा, तो नारों-पर-नारे

लगाने आरम्भ कर दिये, ऊँचे, और भी ऊँचे, आकाश जैसे फट जायगा । फर्मान ने कई बार हाथ खड़ा किया, किन्तु उसके साथियों का उत्साह कम न होता, लाख प्रयत्न करने पर भी वे रुक न सके ।

फिर फर्मान के शेष साथी भी सामने आ गये और उन्होंने हिला-हिलाकर अत्यन्त कठिनता से लोगों को चुप कराया ।

और फिर फर्मान ने चिरपरिचित स्वर में अपने साथियों को बताया कि उस क्षण से, जो धरती जिसके पास थी, वह उसका पूरी तरह मालिक था, पोठोहार में जमींदारी समाप्त हो चुकी थी ।

“राजकुमार जिंदाबाद” के नारे आकाश को कँपा रहे थे कि फर्मान ने एक जोरदार नारा लगाया :

“बीबी कंदलाँ जिंदाबाद !

किसान-साथी जिंदाबाद !!”















